एम.ए. लोक प्रशासन (प्रथम समेस्टर)

M.A. Public Administration

Semester – I

Paper Code – 20PUB21C3

भारतीय प्रशासन

(Indian Administration)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

विषय–सूची

इकाई 1 1–39

भारतीय प्रशासन का विकास एवं सामाजिक–आर्थिक व राजनीतिक विकास में भूमिका
(Evolution of Indian Administration and its Role in Socio-Economic and Political Development)

इकाई की रूपरेखा (Structure of Unit)

1.0 परिचय (Introduction)

1.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

1.2 प्राचीनकालीन प्रशासन (Ancient Period Administration)

1.3 मुगल प्रशासन (Mughal Administration)

1.4 ब्रिटिश प्रशासन (British Administration)

1.5 भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं (Features of Indian Administration)

1.6 भारतीय प्रशासन की सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में भूमिका (Role of Indian Administration in Socio-Economic and Political Development)

1.7 सारांश (Summary)

1.8 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

1.9 अपनी प्रगति जांचिए (Check your Progress)

1.10 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1.11 पठन सामग्री सूची (Further Reading List)

इकाई 2 40–84

मुख्य कार्यकारी संस्थाएं (Chief Executive Institutions)

इकाई की रूपरेखा (Structure of Unit)

2.0 परिचय (Introduction)

2.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

2.2 राष्ट्रपति की शक्ति, स्थिति व भूमिका (Power, Position and Role of President)

2.3 प्रधानमंत्री की शक्ति, स्थिति तथा भूमिका (Power, Position and Role of Prime Minister)

2.4 प्रधानमंत्री कार्यालय का संगठन, कार्य व भूमिका (Organization, Functions and Role of Prime Minister Office)

2.5 मंत्रीमण्डल सचिवालय की संरचना व कार्य (Organization, and Functions of Cabinet Secretariat)

2.6 केन्द्रीय सचिवालय का संगठन एवं कार्य (Organization and Functions of Central Secretariat)

2.7 सारांश (Summary)

2.8 मुख्य अवधारणाएं (Key Concepts)

2.9 अपनी प्रगति जांचिए (Check Your Progress)

2.10 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

2.11 पठन सामग्री सूची (Further Readings List)

इकाई 3 85—122

केन्द्रीय स्तर के मंत्रालयों का संगठन व कार्य : गृह मंत्रालय, वित्त मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय एवं कार्मिक, लोक शिकायत व पेंशन मंत्रालय

(Organization and Functions of Central Level Ministeries: Home affairs Ministry, Finance Ministry, Defence Ministry and Ministry of Personnel, Public Grievances and Pension)

इकाई की रूपरेखा (Structure of Unit)

3.0 परिचय (Introduction)

3.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

3.2 गृह मंत्रालय (Home Ministry)

3.3 वित्त मंत्रालय (Finance Minsitry)

3.4 रक्षा मंत्रालय (Defence Ministry)

3.5 कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय (Personnel, Public Grievances and Pension Ministry)

3.6 सारांश (Summary)

3.7 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

3.8 अपनी प्रगति जांचिए (Check your Progress)

3.9 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

3.10 पठन सामग्री सूची (Further Reading list)

इकाई 4 123—160

लोक सेवाऐं (Civil Services)

इकाई की रूपरेखा (Structure of Unit)

4.0 परिचय (Introduction)

4.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of Unit)

4.2 लोक सेवाऐं एवं भूमिका (Civil Services and Role)

4.3 भारत में स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms in India since Independence)

4.4 अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाऐं (All India and Central Services)

4.5 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ विवाद (Generalist and Specialist Controversy)

4.6 सारांश (Summary)

4.7 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

4.8 अपनी प्रगति जांचिऐ (Check your Progress)

4.9 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

4.10 पठन सामग्री सूची (Further Readings List)

ईकाई–1

भारतीय प्रशासन का विकास एवं सामाजिक–आर्थिक व राजनीतिक विकास में भूमिका

(Evolution of Indian Administration and its Role in Socio-Economic and Political Development)

1.0 परिचय (Introduction)

भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था उतनी ही पुरातन है जितनी भारतीय सामाजिक व सांस्कृतिक व्यवस्था। प्रत्येक अध्ययन विषय की नींव उसके व्यवहारिक पहलू पर रखी हुई है, अर्थात् किसी भी विषय के अध्ययन से पहले उसकी व्यवहारिक वस्तु स्थिति का जन्म हुआ। इसी प्रकार भारतीय प्रशासन भी पहले व्यवहार में आया फिर अध्ययन क्षेत्र का भाग बना। जिस प्रकार से सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं के व्यवहारिक पक्ष के बाद अध्ययन क्षेत्र का विकास हुआ और इन सभी व्यवस्थाओं के संचालन व प्रबंधन के लिए प्रशासनिक संरचनाओं व संगठन की आवश्यकता पड़ी। प्रशासन सभी व्यवस्थाओं का केन्द्र बिन्दू है। भारतीय प्रशासन का उत्थान प्राचीन काल से ब्रिटिश काल तक व्यवहारिक रहा और उसके पश्चात् अध्ययन विषय का रूप ले पाया। इस इकाई में मुख्य रूप से भारतीय प्रशासन के व्यवहारिक पहलू से संबंधित उत्थान की समीक्षा के साथ विश्लेषण पर ध्यानाकर्षित करेगें। इसमें प्राचीन काल में भारतीय प्रशासन की विशेष कार्य व्यवस्थाओं का अध्ययन करेंगें। इसी प्रकार मुगल प्रशासन के संगठन तथा ब्रिटिश काल की प्रशासनिक व्यवस्था व प्रणालियों के भारतीय प्रशासन पर प्रभावों को स्पष्ट किया जाएगा। इस इकाई में वर्तमान भारतीय प्रशासन की विशेषताऐं तथा इसकी सामाजिक–आर्थिक व राजनीतिक विकास से संबंधित भूमिका का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है।

1.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :–

- भारतीय प्रशासन के विकास का अध्ययन करना।
- प्राचीन काल के भारतीय प्रशासन के प्रमाणों व कार्य व्यवस्थाओं को जानना।
- मुगलकालीन भारतीय प्रशासन की विशेषताओं को समझना।
- ब्रिटिशकाल के भारतीय प्रशासन के मूल तत्वों व प्रभावों की जानकारी ग्रहण करना।
- वर्तमान भारतीय प्रशासन की विशेषताओं व आवश्यकताओं का विश्लेषण करना।
- सामाजिक–आर्थिक तथा राजनैतिक विकास में भारतीय प्रशासन की भूमिका का मूल्यांकन करना।

1.2 प्राचीनकालीन प्रशासन (Ancient Period Administration)

यद्यपि स्वतन्त्र अध्ययन शास्त्र के रूप में लोक–प्रशासन का विकास उन्नीसवीं शदी में हुआ, परन्तु वास्तव में यह विषय उतना ही प्राचीन है जितनी मानव सभ्यता। प्राचीनकाल में राजनीतिक व्यवस्थाएं भी लोक प्रशासन के माध्यम से ही शासन कार्य संचालित करती थी। भारतीय लोक प्रशासन अपने वर्तमान स्वरूप में विरासत एवं निरंतरता का परिणाम है। अतः परम्परागत लोक प्रशासन की नींव पर आज के लोक प्रशासन का भवन खड़ा हुआ है। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से भारतीय प्रशासन की सुविधानुसार प्राचीन काल, गुप्त काल, राजपूत काल, सल्तनत काल, मुगल काल, ब्रिटिश काल और स्वातन्त्र्योत्तर काल में बांटा जा सकता है। अतः भारतीय लोक प्रशासन का विकास

अनेक शताब्दियों के विकास का परिणाम है यद्यपि इस विकास के सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्ट विवरण का अभाव है।

प्राचीन काल में विभिन्न प्रकार के प्रशासन प्रचलित रहे हैं। भारतीय प्रशासन का प्रारम्भ सिंधु घाटी से भी अधिक प्राचीन है तथा हमारी सिन्धु–घाटी सभ्यता काल के प्रशासन के विषय में हमारा ज्ञान अधिकतर अनुमानों और कल्पनाओं पर आधारित है। खुदाई में प्राप्त अवशेषों से विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के साम्राज्य व्यवस्थित थे। पुरोहित लोग शासन करते थे जो सुमेर और अकांत के पुरोहित राजाओं के समान थे। राज्य का स्वरूप केन्द्रीकृत था और नगरपालिका शासन से लोग अपरिचित थे। हण्टर नामक विद्वान के अनुसार काल की शासन व्यवस्था लोकतांत्रात्मक थी।

ऋग्वैदिक काल (Rigvaidic Period)

इस काल में भारतीय प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। राज्य और राजा को जन–कल्याण–साधक माना जाता था। प्रजा–धर्म के विरूद्ध कार्य करने वाले राजा और पदाधिकारी पदच्युत किए जा सकते थे। राजा अपने विभिन्न मंत्रियों के परामर्श से शासन चलाता था। मंत्रियों में सबसे प्रमुख स्थान पुरोहित का था। राजदरबार में गांव और उनके निवासियों का प्रतिनिधित्व 'ग्रामीण' नामक पदाधिकारी द्वारा किया जाता था। सभा और समिति नामक जन–संस्थाएं भी विद्यमान थीं। समिति सम्पूर्ण प्रजा की संस्था थी जो राजा का निर्वाचन करती थी। सभा समिति से छोटी संस्था थी जिसकी सहायता से राजा दैनिक राज्य–कार्य करता था। इस संस्था के माध्यम से ही वह अभियोगों का नियंत्रण करता था। इन दोनों संस्थाओं का राजा के ऊपर नियंत्रण था जो आगे चलकर शिथिल हो गया। न्याय की दिव्य प्रणाली प्रचलित थी, जिसमें गरम कुल्हाड़ी, अग्नि तथा जल का प्रयोग किया जाता था।

उत्तर–वैदिक काल (Uttarvaidic Period)

इस काल में राजा का पद पैतृक अथवा वंशानुगत हो गया था। इस काल में राजा बहुत कुछ स्वच्छद होते हुए भी निरंकुश नहीं था। इस काल में राजा के निर्वाचन का सिद्धान्त समाप्त नही हुआ था और उसके उत्तराधिकारी पर राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों का प्रभाव और नियंत्रण रहता था। शासन के संचालन में राजा प्रतिष्ठित मंत्रियों की एक परिषद् की सहायता लेता था प्रधानमंत्री को मुख्यामात्य कहा जाता था। सभा, समिति और मन्त्रि–परिषद् का राजा पर प्रभाव था। राज्य की शासन व्यवस्था को सुविधाजनक बनाने के लिए अनेक विभागों की रचना की गई थी, जैसे– वित्त विभाग, निरीक्षण विभाग, संरक्षण विभाग और सेना विभाग। स्थानीय शासन का कार्यभार एक विशेष मंत्री द्वारा वहन किया जाता था। उसका मुख्य कार्य ग्राम और विषय के अधिकारियों पर नियंत्रण रखना और उनके पारस्परिक झगड़ों का निपटारा करना था। न्याय व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था तथा उसकी सहायता के लिए अन्य अधिकारी भी होते थे।

महाकाव्य काल (Mahakavya Period)

रामायण और महाभारत हमारे देश के अति प्राचीन महाकाव्य हैं। रामायणकालीन शासन का रूप राजतन्त्रीय था तथा प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी। प्रशासन का अध्यक्ष राजा होता था जिसे परामर्श और राज्य–कार्यों के संचालन में सहायता देने के लिए मन्त्री, सभासद आदि होते थे। राज्य का वास्तविक उद्देश्य धर्मपालन और सदाचार को प्रोत्साहन देना, प्रजा की सुख–समृद्धि को बढ़ाना तथा ज्ञान को संरक्षण प्रदान करना था। तद्नुसार राजा का कर्त्तव्य था कि वह धर्म का पालन करे, सत्य की रक्षा करे, अधर्म का नाश करे, विनम्र रहे, देश की रक्षा करे, जनता की सुख–समृद्धि को बढ़ाये आदि। रामायण से यह स्पष्ट होता है कि प्रशासन कार्य में 'मन्त्रणा' का विशेष महत्त्व और प्रचलन था। सभा या परिषद् महत्वपूर्ण संस्था थी और महत्वपूर्ण अवसरों पर नियंत्रण के लिए आमन्त्रित की जाती थी। सभा में अमात्य तथा चारों वर्णों के प्रतिनिधि सदस्य होते थे। रामायण से पता चलता है कि अमात्यों के अतिरिक्त और भी अनेक राज्याधिकारी होते थे। प्रशासन अनेक विभागों में विभाजित था। न्याय निष्पक्ष था। मंत्रिपरिषद् में 37 मंत्री होते थे जो प्रत्येक वर्ण से चुने जाते थे। सभा में 18 सदस्य होते थे जो विभिन्न विभागों के

अध्यक्ष होते थे।

महाभारत में राज्य को 'सप्तांगी' कहा गया है। इस युग में राजतन्त्र को ही प्रमुख शासनतन्त्र माना गया है। राजा उच्च आदर्शों एवं कर्त्तव्यों का प्रतीक था। राजा का धर्म था कि वह मन, वचन और कर्म से न्याय करें, गरीबों पर अत्याचार न करें, अपराधी को दण्ड दे प्रजा के कष्टों का निवारण कर आदि। सामान्यतः राज्याधिकारी वंशानुगत होता था। महाभारत में शासन की अनिवार्यता को स्पष्टतः घोषित किया गया है। शासन ही राजा को सुरक्षित रखता है और राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना है। शासन के संगठन की दृष्टि से महाभारत में दो बातों का मुख्य रूप से विवेचन है– शासन के अधिकारियों और कर्मचारियों का तथा उनकी योग्यताओं का। शासन का अध्यक्ष राजा होता था। उसके परामर्श के लिए अन्य मंत्रिगण होते थे। मन्त्रियों के अतिरिक्त उच्चाधिकारी भी होते थे। महाभारत–काल में विधि, दण्ड और न्याय का पर्याप्त महत्त्व था। संक्षेप में, रामायण तथा महाभारत–काल में प्रशासन का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है।

महाकाव्य–काल में कुछ गणतन्त्रों का अस्तित्व था परन्तु प्रमुखतः राजतन्त्र ही विद्यमान थे। राजा सर्वोच्च अधिकारी होता था तथा लोक–कल्याण के कार्य व प्रजा की रक्षा करना उसके प्रमुख कर्त्तव्य थे। सम्राट को प्रशासन में सहायता देने के लिए दो संस्थाएं मन्त्रिपरिषद् व सभा होती थी। प्रशासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य को विभिन्न इकाइयों में विभाजित किया गया था। सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी।

बौद्ध–साहित्य में महात्मा बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व एवं उनके समय में 'महाजन' पदो ंके अस्तित्व का पता चलता है। महात्मा बुद्ध के समय अनेक गणतन्त्रात्मक राज्य थे किन्तु चार राजतन्त्र भी थे– मगध, अवन्ति, वत्स और कौशल। बौद्ध–साहित्य में बौद्धकालीन गणतन्त्रों का वर्णन है। बौद्धकालीन गणराज्यों में प्रशासन की वास्तविक शक्ति 'सभा' में निहित थी जो 'सभागार' में होती थी तथा छोटे–बड़े समान रूप से उसके सदस्य होते थे। राज्य का एक अध्यक्ष होता था जिसे राजा कहते थे जिसे चुनाव के द्वारा एक निश्चित समय के लिए नियुक्त किया जाता था। इस प्रकार बुद्ध के युग में राज्यों पर वंशानुगत राजा बल्कि गणसभाओं के प्रति उत्तरदायी व्यक्ति शासन करते थे।

मौर्य प्रशासन (Maurya Administration)

मौर्य प्रशासन में राजा ही साम्राज्य का प्रमुख होता था और कार्यकारी, न्यायिक एवं विधायी शक्तियां सब उसी में निहित थी। इस काल में चन्द्रगुप्त मौर्य (322 ईसा पूर्व – 298 ईसा पूर्व) एक कुशल सेनानायक और विजेता होने के साथ ही एक उच्चकोटि का शासन भी था। चन्द्रगुप्त के शासन का स्वरूप प्रबुद्ध राजतंत्र था। पूरी सत्ता राजा के अधीन थी किन्तु राजा का लक्ष्य प्रजा का अधिक से अधिक जनकल्याण करना था। प्रजा के कल्याण में राजा अपना हित समझा था। राजा की आज्ञा अथवा आदेशों को सर्वोच्च माना जाता था। राजा अकेला राज्य नहीं संभाल सकता था। अतः उसकी सहायता के लिए मंत्रि–परिषद् तथा सुनियोजित अधिकारी वर्ग होता था। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने राजा के परामर्शदाताओं में– मन्त्रिगण, न्यायधीश, सेनापति एवं कोषाध्यक्ष का उल्लेख किया है। कौटिल्य (चाणक्य) ने राज्याधिकारियों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। उसके अर्थशास्त्र में 18 तीर्थों (उच्चाधिकारियों) का उल्लेख है– (1) मंत्री–राजा का सर्वोच्च परामर्शदाता; (2) पुरोहित–यह भी राजा के राज्य–कार्यों तथा धार्मिक कार्यों में परामर्श देता था; (3) सेनापति–सेना का अध्यक्ष; (4) युवराज–राजा का उत्तराधिकारी तथा परामर्शदाता; (5) दौवारिक–मुख्य स्वागत अधिकारी तथा द्वार–रक्षक; (6) अन्तर्वेशिक–अन्तपुर; (7) प्रशस्ति (राष्ट्रपाल)– पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी; (8) समाहर्त्ता–आय संग्राहक; (9) सन्निधाता–कोषाध्यक्ष; (10) प्रदेष्टा–क्षेत्रीय अधिकारी अथवा दण्डनायक; (11) नायक–पैदल सेना का मुख्य अधिकारी अथवा नगरी कोतवाल; (12) व्यवहारिक–न्यायधीश; (13) नगर निरीक्षक–स्थानीय निकायों का अधिकारी; (14) व्यापाराध्यक्ष–उद्योग तथा व्यापार का अधीक्षक; (15) अन्तपाल–सीमा सुरक्षा संबंधी अधिकारी; (16) कर्मान्तक–खानों का अध्यक्ष; (17)

महापौर–नगर का सर्वोच्च अधिकारी और (18) आटविक–वन विभाग का अध्यक्ष।

इनमें से उपर्युक्त प्रथम चार अधिकारी मंत्रिमंडल के अन्तरंग सदस्य थे जिनसे राजा महत्वपूर्ण विषयों पर परामर्श लेता था और अन्य 14 विभागाध्यक्ष थे, इनमें भी राजा समय–समय पर परामर्श लेता था। इन सभी को उच्च वेतन दिये जाते थे। सम्पूर्ण राज्य प्रान्तों में विभक्त था। क्षेत्र का मुख्य अधिकारी प्रवेष्टा कहलाता था। वह सामान्य प्रशासन, कर–वसूली तथा शान्ति एवं सुरक्षा की देखभाल करता था। उसको दण्डनायक के अधिकार भी प्राप्त थे। क्षेत्र ग्रामों में विभक्त थे। ग्राम का अधिकारी 'गोप' होता था। 10 ग्रामों का संग्राहक तथा 200 ग्रामों का एक 'खार्वटिक' होता था, 400 ग्रामों का अधिकारी 'द्रोणमुख' कहलाता था तथा 800 ग्रामों पर एक 'स्थानीय' होता था। ग्राम प्रशासन की इकाई थे तथा गोप प्रशासन की रीढ़ था। गोप ग्राम की जनगणना करता था जिसमें जाति तथा आय–व्यय के साधनों का उल्लेख होता था। वह अधिकारी वर्तमान पटवारी के समकक्ष था।

मौर्यकालीन नगर–व्यवस्था की विदेशियों तक ने प्रशंसा की है। पाटलीपुत्र की नगर–पालिका का प्रशासन 30 सदस्यों की 'एक परिषद' के हाथ में था जो छः समितियों में विभक्त थी। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। पहली समिति उद्योग और शिल्प की तथा दूसरी विदेशियों की देखभाल करती थी, तीसरी समिति सम्पत्ति का लेखा–जोखा और जनगणना की व्यवस्था करती थी। चौथी समिति व्यापार पर नियंत्रण रखने, माप–तौल का नियमन करने और बिक्री की वस्तुओं पर राज्य की मोहर लगाती थी। यह एक प्रकार से बिक्री का लाइसेंस था। पाँचवीं समिति व्यापारियों द्वारा तैयार माल का निरीक्षण करती थी तथा छठी विक्रय–कर वसूल करती थी। सब समितियां अपना–अपना कार्य पृथक–पृथक रूप से करती थी, किन्तु कुछ कार्य विभिन्न समितियों के सहयोग तथा परामर्श से भी होते थे, जैसे सार्वजनिक भवनों की देखभाल, बाजार, बन्दगाहों तथा धर्म स्थानों की रक्षा का कार्य आदि। इस काल में प्रशासन की सुविधा के लिए नगर को वार्डों में विभक्त किया जाता था।

गुप्तकालीन प्रशासन (Gupta Period Administration)

गुप्त–राजाओं ने अपने पूर्व–प्रशासकों के शासन–प्रबन्ध को अपनाते हुए उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर समय के अनुकूल बनाया। इस अवधि में राजतन्त्रात्मक शासन–प्रणाली विचलित थी। राजा को प्रशासनिक कार्यों में सहायता देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होती थी। संपूर्ण केन्द्रीय शासन अनेक विभागों में संगठित था जिसका प्रबंध मंत्री अमात्य, कुमारामात्य आदि अधिकारी करते थे। देश में आन्तरिक शान्ति एवं सुरक्षा के लिए पुलिस विभाग था। इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी 'दण्डपाशिक' होता था। शासन की सुविधा के लिए गुप्त–साम्राज्य अनेक इकाईयों में बंटा हुआ था। सबसे बड़ा विभाग प्रान्त था जिसको देश या 'भक्ति' कहते थे। प्रान्तीय शासक 'भोगपति' कहलाते थे। प्रान्तों के बाद 'क्षेत्र प्रदेश' आता था जो आज की कमीशनरी के बराबर होता था ओर यह छोटा विभाग 'विषय' कहलाता था जो जिले के समकक्ष होता था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' थी जिसका अधिकारी 'ग्रामिक' होता था। ग्रामिक की सहायता के लिए एक समिति होती थी जिसे 'ग्रामसभा' कहते थे।

संक्षेप में गुप्त–शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था उच्चकोटि की थी और उन्होंने अपने विशाल साम्राज्य का सुचारू रूप से शासन किया। डॉ॰ अल्तेकर ने गुप्त–प्रशासन की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "गुप्तकालीन शासन–प्रणाली तथा उसकी उपलब्धियों के विषय में हमारे पास विस्तृत सामग्री है जिसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह केन्द्र व प्रान्त दोनों में अत्यन्त सुव्यवस्थित थी।"

राजपूतकालीन प्रशासन (Rajput Period Administration)

राजपूत काल में गणतंत्रों के समाप्त होने से राजतंत्रात्मक शासन–व्यवस्था का बोलबाला था। राजपद वंशानुगत होता था। राजा को परामर्श देने के लिए मंत्रिमंडल की व्यवस्था थी। मंत्री अपने–अपने विभागों का प्रबन्ध करते थे। मंत्री पद भी वंशानुगत हो चले थे। केन्द्रीय शासन सुगठित नहीं था क्योंकि प्रान्तीय शासन पर उन सामन्तों का ही अधिकार होता था जो प्रायः स्वतंत्र रूप से शासन करते थे। जागीर–प्रथा के प्रचलन से सामन्तों के अधिकारों में

भारी वृद्धि हुई। प्रायः युवराज और राजकुल के व्यक्तियां को ही प्रान्तीय शासक बनाया जाता था। प्रान्तीय शासक अनेक विभागों में विभक्त होता था। प्रत्येक विभाग का एक अधिकारी होता था जिसके अधीन बहुत कर्मचारी होते थे। ग्राम पंचायतों पर सामन्तों का अधिकारी होने से उनका महत्व कम हो गया था। साम्राज्य प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त था। इस प्रकार ये शासन–पद्धति गुप्तकालीन शासन पद्धति के आधार पर विकसित हुई थी। शासन के मुख्य विभाग कों का ढाँचा मुख्यतः गुप्तकालीन था, किन्तु उनमें कही–कहीं अव्यवस्था और विश्रृंखला आ गई थी। शासन की सुविधा हेतु समितियों का निर्माण किया जाता था। उन्हें विविध कार्य सौंपे जाते थे। नगर–प्रबन्ध के लिए पदाधिकारी होता था जिसे उन सभी कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता था जो आधुनिक नगरपालिका के प्रशासक करते हैं। इस काल में केन्द्रीय, प्रान्तीय, जिला तथा ग्रामीण प्रशासन का विकास हुआ।

सल्तनतकालीन प्रशासन (Sultanat Period Administration)

सल्लनतकालीन प्रशासन (1206–1526 ई॰) मूलतः सैनिक था और सुल्तान निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी थे। फिर भी शासन का सम्पूर्ण कार्य कोई शासक अकेला नहीं कर सकता था। उसे दूसरों की सहायता तथा परामर्श की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिए सुल्तानों को अपने शासन के प्रारम्भ से ही अधिकारियों के एक व्यवस्थित शासनतंत्र की व्यवस्था करनी पड़ी। सल्तनत–काल में सुल्तान का पद सर्वोच्च था और उसे राजनीतिक, कानूनी तथा सैनिक अधिकार प्राप्त थे। वह शासन तथा न्याय–व्यवस्था के प्रति उत्तरदायी था। सुल्तान अपने पदाधिकारियों से परामर्श करता था किन्तु उनकी सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था।

1.3 मुगल प्रशासन (Mughal Administration)

बाबर की विजय के साथ सल्तनत–काल के स्थान पर मुगल–शासन का प्रारम्भ हुआ। बाबर का शासन केवल चार वर्ष तक रहा। उसके पुत्र हुमायूँ के रूप में उत्तराधिकारी तो मिला परन्तु उसे अफगानों के विरूद्ध बड़े युद्ध का सामना करना पड़ा। हुमायूँ की मृत्यु 1556 में हो गयी। उसका अवयस्क पुत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाहत की गद्दी पर बैठा। मुगल–काल का वास्तविक संस्थापक यही बालक था जो बाद में भारत के बड़े हिस्से का बादशाह बना। मुगलों में अकबर के बाद जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब प्रसिद्ध बादशाह रहे। औरंगजेब के बाद जो मुगल बादशाह बने, वे निर्बल व असहाय सिद्ध हुए। सन् 1707 के बाद से ही विशाल मुगल–साम्राज्य छिन्न–भिन्न होने लगा था। ईस्ट इंण्डिया कंपनी ने अपने पैर पसारने शुरू कर दिये थे। अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर थे जिन्हें 1858 में गद्दी से उतार कर कारावास में डाल दिया गया जहां उनकी मृत्यु हो गई। यहां हम संक्षेप में मुगल–शासन की प्रमुख विशेषताओं का निम्नलिखित शीर्षकों में अध्ययन करेंगेः–

मुगल प्रशासन की विशेषताएं (Features of Mughal Administration)

मुगलों ने प्राचीन राजनीतिक तथा प्रशासनिक परम्पराओं को बनाए रखा। मुगल बादशाह एक सर्वथा स्वेच्छाचारी शासक था और प्रशासन "केन्द्रीयकृत स्वेच्छाचारी राजतंत्र" था। राजा राज्य का प्रतीक तथा सभी प्रकार की शक्ति और प्रभुत्व का केन्द्र था। प्रांतीय सरकारें प्रशासनिक माध्यम मात्र थी। मुगल अविभाजित तथा सर्वसत्ता सम्पन्न, निरंकुशता स्थापित करने में सफल रहे।

यदि मौर्यों से तुलना करें तो मुगल अधिकारी केन्द्रीकरण की ओर बढ़ रहे थे। मौर्यों ने नैतिकता, स्वास्थ्य और कल्याण कार्यों पर विशेष ध्यान दिया था पर मुगलों ने स्वास्थ्य तथा कल्याण जैसी सामाजिक संस्थाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु मुगलों की नागरिक सेवा बहुत कुशल थी। उन्होंने गुण ग्राहकता का परिचय दिया तथा हिन्दु बुद्धिजीवियों को उच्च सिविल पदों पर लगाया। उसकी यही एक कमजोरी थी कि वह भूमि–आधारित था अर्थात् उस समय राजस्व सम्बन्धी कार्यों को ही प्रधानता दी जाती थी तथा यह एक "अत्यधिक शहरीकृत संस्था" थी।

मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive)

मुख्य कार्यपालिका शक्तियां राजा में निहित थी। प्रशासन वैयक्तिक था। इसे पैतृक कहना उचित ही है। समस्त प्रशासकीय तंत्र राजा के इर्द–गिर्द घूमता था। वह प्रजा द्वारा "पितातुल्य या स्वेच्छाचारी" समझा जाता था। अधिक्तः बादशाह को प्रजा की भलाई करने वाले, हितैषी स्वेच्छाचारी शासक के रूप में माना जाता था। उस समय जो सिद्धांत माना जाता था, यह था कि निरंकुश राजतंत्र दैवी अधिकारी पर आधारित है। जनता के लिए बादशाह ही सब कुछ था। वह सर्व–शक्तिमान और सर्वोपरि था। सभी अधिकार उसके हाथ में होते थे तथा वही न्याय का स्त्रोत था। प्रशासन पद्धति अत्यधिक केन्द्रीयकृत तथा वैयक्तिक थी इस प्रकार सभी कुछ राजा के चरित्र तथा उसकी व्यक्तिग विशेषताओं पर निर्भर था।

नौकरशाही (Bureaucracy)

प्रशासनिक तंत्र अस्थिर था। वह राजा की इच्छा पर निर्भर था। भर्ती का आधार जाति, रिश्तेदारी, आनुवांशिकता तथा राजा के प्रति–व्यक्तिगत वफादारी था। प्रशासन का आधार शक्ति का डर था। अधिकारी, राजा के नाम पर लोगों के मनों में दशहत फैलाते थे। प्रजा के बीच उनका बड़ा आदर तथा आतंक था। अफस मुख्यतया शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने, आतंरिक बगावत और विद्रोहों से राजा के हितों की रक्षा करने, साम्राज्य की सीमा (सरहद) बढ़ाने और उसकी रक्षा करने तथा अन्य कर तथा राजस्व वसूल करने में लगे रहते थे।

राजा के प्रत्येक कर्मचारी की नियुक्ति किसी मनसब या ओहदे और मुनाफे के लिए होती थी और उसे राज्य की सैनिक सेवा के लिए एक निश्चित संख्या में सैनिकों की व्यवस्था करनी पड़ती थी। इस प्रकार नौकरशाही अपनी प्रकृति में मुख्यतया सैनिक थे। अधिकारी या मनसबदार तैंतीस (33) श्रेणियों में विभक्त थे जो 10 से लेकर 10,000 सैनिकों तक के कमांडर होते थे। प्रत्येक श्रेणी को एक निश्चित दर से वेतन मिलता था जिसमें से उसे एक निश्चित संख्या में हाथी तथा घोड़े जुटाने पड़ते थे। राज्य सेवाएं आनुवांशिक उत्तराधिकार नहीं थी न ही उनमें वे कोई अन्य विशिष्टता थी। अफसरों को वेतन, धन या अस्थायी समय के लिए जागीर के रूप में दिया जाता था।

सैनिक प्रशासन (Military Administration)

मनसबदारी प्रथा का संबंध मुख्यतः सेना व्यवस्था से था। इसके अतिरिक्त कुछ अतिरिक्त सैनिक तथा एक विशिष्ट श्रेणी के कुलीन सैनिक भी होते थे और जो राजा के प्रति अनन्य निष्ठा रखते थे। सेना में घुड़सवार भी थे जो सेना की सबसे अधिक महत्वपूर्ण टुकड़ी थी, पैदल सवार थे जिनमें किसान तथा नागरिक होते थे तथा तोपखाना था जिसमें तोपें तथा नौ सेना शामिल थीं।

मुगल सेना राष्ट्रीय न होकर विभिन्न तत्वों का मिश्रण थी। जैसे–जैसे यह संख्या में बढ़ती गई, यही इतनी विषम जातीय हो गई कि इसे संभालना दूभर हो गया। सैनिक सीधे सम्राट के प्रति निष्ठावान न होकर अपने भर्तीकर्ता अफसरों से अधिक जुड़े हुए थे। शीघ्र ही अनुशासनहीनता व्याप्त हो गई और सेना के स्तर में गिरावट आ गई जो कि जहांगीर के समय में स्पष्ट दिखाई देता है। मुकाबला करने में मुगल समर्थ नहीं रह पाए और शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने युद्ध क्षेत्र में मुगलों के छक्के छुड़ा दिए।

पुलिस प्रशासन (Police Administration)

ग्रामीण क्षेत्रों में गांव के मुखिया तथा उसके अधीनस्थ चौकीदारों द्वारा पुलिस की तरह नियंत्रण रखा जाता था। यह व्यवस्था उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही। शहरों तथा कस्बों में यह काम कोतवाल करते थे। कोतवाल के अनेक कर्तव्यों में चोरों को पकड़ना, जान–माल की रक्षा करना, मूल्यों तथा नाप तोल पर भी नियंत्रण रखना था। उन्हें गुप्तचर नियुक्त कर उनके कामों का निरीक्षण करना पड़ता था तथा गुमशुदा लोगों या मृतकों की संपत्ति की सूचि बनानी पड़ती थी। कोतवाल का मुख्य काम शहरी क्षेत्रों में शांति और सुव्यवस्था बनाए रखना था। जिलों में फौजदार

शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने का काम करते थे।

केन्द्रीय प्रशासन (Central Administration)

सामान्य प्रशासन की ही भांति केन्द्रीय प्रशासन भी व्यक्तिगत तथा पितृवत था। जब तक राजा का नियंत्रण रहता था, व्यवस्था–सुचारू रूप से चलती रहती थी। जहां उसका नियंत्रण कमजोर पड़ा कि पूरी व्यवस्था ही अस्त–व्यस्त हो जाती थी जैसा कि शाहजहां और औरंगजेब के शासनकाल में दिखाई देता है।

"वकील और वजीर" दो सर्वोच्च अधिकारी होते थे जिनमें से "वकील" का पद ऊँचा था। वह राज्य के प्रति संरक्षण के रूप में काम करता था और उस पर राज्य की देखभाल का पूरा भार था। "वजीर या उच्च दीवान राजस्व विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसे "वजीर" तो वास्तव में उस समय कहते थे जब वह प्रधानमंत्री का काम करता था।

राजस्व की वसूली और खर्च की देखभाल मुख्य दीवान करता था। वह सरकार के प्रशासन का मुख्य होता था सभी उच्च अधिकारियों पर नजर रखता था। वह प्रांतीय दीवानों पर नियंत्रण रखता तथा उन्हें निर्देश देता रहता था और वे अपने मातहतों सहित उससे संपर्क बनाए रखते थे। सभी प्रकार के दस्तावेज को प्रमाणीकरण करने के लिए वह उन पर अपने हस्ताक्षर करके अपनी मुहर लगा देता था।

मुगल के कई दीवान होते थे। उच्च दीवान "दीवाने आला" के नीचे "दीवाने तान" था जो वेतनादि का कार्यभार संभालता था तथा "दीवाने खालसा" था जो राज्य की भूमि का प्रबंध करता था। मुस्तौफी आय–व्यय का लेखा–जोखा रखते थे तथा "वाक्रिया नवीस" सभी प्रमुख किसानों का अभिलेख रखते थे।

अन्य कर्मचारी "खानसामा" या उच्च खाद्य प्रबंधक जो राजकीय व्यय की देखभाल करता था, मीर बख्शी जो साम्राज्य का वेतनाधिकारी होता था तथा "सद्रे–सुदूर" धार्मिक विभाग का प्रमुख होता था। केन्द्रीय सरकार के मुख्य अधिकारियों के अलावा अन्य छोटे–मोटे बहुत से कर्मचारी थे जो व्यवस्था चलाने में सहायक थे। शासन पद्धति नियमों, परंपराओं तथा परिपाटियों पर आधारित थी।

प्रांतीय प्रशासन (Provincial Administration)

मुगल प्रशासन की प्रवृत्ति केन्द्रीयकरण तथा वैयक्तिकरण की होने के कारण प्रांतीय अधिकारी केन्द्र के मात्र प्रशासनिक एजेंट थे।

साम्राज्य सूबों या प्रांतों में विभाजित था। प्रांत का मुखिया सूबेदार होता था। उसकी नियुक्ति शाही फर्मान द्वारा होती थी तथा उसे पद का अधिचिह्न तथा अनुदेश–पत्र दिया जाता था जिसमें उसकी शक्ति तथा जिम्मेदारियां दर्ज होती थी। प्रांत के प्रशासनिक कर्मचारियों का प्रमुख होने के नाते वह प्रांत में शांति और व्यवस्था बनाए रखता था। स्थानीय सिविल तथा आसूचना कर्मचारियों के साथ सख्ती का व्यवहार करता था तथा अपने मातहत स्थानीय मुखियों से प्रशंसा भी पाता था। वह स्थानीय जमींदारों पर भी नियंत्रण रखता था और राजनीतिक प्रभाव भी प्राप्त था।

शाही जीवन प्रांतीय दीवान का चयन करता था। यद्यपि वह सूबेदार से नीचे होता था फिर भी स्वतंत्र रूप से काम करता था तथा शाद दीवान का अधीनस्थ होता था। वह प्रांत का राजस्व संभालता था और क्रोरी तथा तहसीलदार नियुक्त कर रैयत को सरकार को समय पर बकाया अदा करने के लिए प्रेरित करता था। दीवान लेखापरीक्षण का भी काम करता था। तथा जनता के व्यय पर पूरा नियंत्रण रखता था। उसके कार्यालय में सुपरिटेडेंट, मुख्य लेखापाल, खजांची तथा क्लर्क होते थे।

प्रांतीय बख्शी, केन्द्रीय बख्शी के समान ही भूमिका अदा करता था वह सेना के रख–रखाव तथा नियंत्रण के

लिए जिम्मेदार होता था सभी अफसरों के वेतन और परिलब्धियों का उनके "मनसब" के अनुसार लेखा–जोखा रखता था।

प्रांतीय स्तर पर "सद्र" या काजी अफसर होते थे। यद्यपि इन दोनों के अधिकार क्षेत्र अलग–अलग होते थे फिर भी कभी एक ही व्यक्ति दोनों हो सकता था। "सद्र" एक सिविल जज होता था पर वह सारे सिविल मामले नहीं संभालता था। साधारण रूप से काजी सभी दिवानी मामले तथा फौजदारी मामलों को भी संभालता था।

जिला तथा स्थानीय प्रशासन (District and Local Administration)

सूबा या प्रांत सरकारों में विभाजित था जो दो प्रकार के थे– कुछ तो बादशाह द्वारा नियुक्त अफसरों द्वारा शासित होते थे और कुछ करदाता राजाओं के मातहतों द्वारा प्रत्येक सरकार का मुख्य प्रशासक "फौजदार" होता था। प्रांतीय गर्वनरों के मातहत होने पर भी वे शाही सरकार से सीधे संपर्क रख सकते थे। नियुक्ति के समय फौजदार को नीति तथा आचरण संबंधी हिदायतें दी जाती थी। वह सैनिक बल का भी प्रभारी होता था और विद्रोहों के दमन तथा अपराधों की छानबीन करता था।

'फौजदार' के अतिरिक्त सरकार का दूसरा अध्यक्ष "अमलगुजार" होता था। वह राजस्व का प्रबंध करता था। इन दोनों के अपने–अपने अलग अधीनस्थ कर्मचारी होते थे।

"कोतवाल" नगर तथा उसके आस–पास के इलाकों पर पुलिस की भांति नियंत्रण रखता।

"सरकार" परगनों में विभक्त थी। प्रत्येक "परगने" में एक "शिकदार" एक "आमिल" और एक "काजी" होता था। "शिकदार" मुख्य प्रशासक होता था तथा "फौजदार", "कोतवाल" तथा "सरकार" सभी के काम करता था। शांति, व्यवस्था, दंड, न्याय तथा सामान्य प्रशासन उसके सुपुर्द था। "आमिल" के कर्त्तव्य "अमलगुजार" जैसे तथा "काजी" के अदालती होते थे।

"परगने" चकलों में विभाजित थे। राजस्व इक्ट्ठा करने तथा उनकी वसूली आसानी से करने के लिए चकलों का निर्माण हुआ था तथा चकलादार की भांति उनके अपने स्थानीय अफसर होते थे। प्रत्येक कर्मचारी अपने ऊपर के अफसर के प्रति उत्तरदायी होता था।

राजस्व प्रशासन (Revenue Administration)

भू–राजस्व, परंपरागत रूप से राज्य की आय का प्रमुख स्त्रोत् होने के कारण इसका सूक्ष्म अध्ययन करने की आवश्यकता है। राज्य तथा किसान इस समझौते के दो पक्षकार थे। राज्य को भूमि से प्राप्त पैदावार का एक निश्चित भाग लेने का अधिकार, अति प्राचीन काल से अर्थव्यवस्था का एक सिद्धांत माना जाता रहा है। प्रत्येक का यह भाग कितना–कितना हो, यह समय–समय पर विवादास्पद रहा है और इसका निर्णय समय–समय पर किया जाता रहा। प्राचीन काल में कानून के दावेदारों ने राज्य का अंश बारहवां, आठवां या चौथाई भी माना था पर लिया छठा भाग जाता था। चौदहवीं शताब्दी में राज्य आधा भाग ले लेता था, अकबर ने इसे घटाकर तिहाई कर दिया था।

भारत में तीन प्रकार की पट्टेदारी प्रथा थी। जमींदार प्रथा, संयुक्त स्वामित्व एवं रैयतवाड़ी। बंगाल में जमींदार प्रथा प्रचलित थी जो अंग्रेजों के समय में मद्रास के कुछ भागों तक फैल गई थी। बिचौलियों के रूप में जमींदार एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

भूमि पट्टेदारी प्रत्येक स्थान पर भिन्न तथा काफी उलझी हुई थी। इन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता था।

1. स्वामित्वहीन पट्टेदारी में भूमि जोतने वाले किसान पट्टेदार तथा किरायेदार की हैसियत से काम करते थे।

वे विभिन्न शर्तों पर जमीन जोतते थे तथा धन या अनाज के रूप में उन्हें उत्पादन का कुछ भाग मिलता था। यद्यपि सिद्धांत वे स्वामी द्वारा बेदखल भी किए जा सकते थे परन्तु जब तक वे किराया अदा करते थे। रिवाज के अनुसार उनके किरायेदार होने का अधिकार माना जाता था।

2. एक मिश्रित वर्ग द्वारा श्रेष्ठ पट्टेदारी धारण की जाती थी। ये लोग पुराने मुखियो, अभिजात वर्ग, मुख्य सेनापति, मध्यस्थों या अधिन्यासियों के प्रतिनिधि या वंशज होते थे। इनमें वंशानुगत अफसर तथा महत्वपूर्ण स्थानीय लोग भी शामिल होते थे जो राज्य को एक निश्चित भेंट या राजस्व अदा करने के पश्चात् उत्पादन के सरकारी हिस्से के अस्थायी या स्थायी मालिक समझे जाते थे। ये लोग साधारणतया सरकारी भाग का दसवां भाग लेते थे तथा भूमि–सुधार, शांति व्यवस्था तथा न्याय प्रशासन के लिए भी जिम्मेदार होते थे। इन्हीं विभिन्न प्रकार के अधिन्यासियों द्वारा समाज के सामंतवादी ढांचे का गठन होता था। अकसर वे अपनी भूमि दूसरों से भी जुतवाते थे और भूराजस्व कृषि की यह व्यवस्था किसानों के लिए बड़ी उत्पीड़नकारी थी।
3. पहली दोनों पट्टेदारियों के बीच अधीनस्था स्वामित्व पट्टेदारी आती है। सर चार्ल्स मेटकॉफ तथा होल्ट मेकैंजी की छानबीन के पश्चात् ये तथ्य सामने आए थे कि स्वामित्व वाले समुदाय उत्तर–पश्चिम भागों में अधिक थे और उनके प्रतिरूप पंजाब, बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसा में भी फैले थे।

चूंकि राज्य की अधिकांश आय भू–राजस्व से प्राप्त होती थी। इसलिए राजस्व के प्रशासन का बहुत महत्व था। उसे वसूल करने की मशीनरी बहुत फैली हुई थी और उसमें छोटे–बड़े कर्मचारियों की अनेक श्रेणियां थी। राजस्व वसूली करने के लिए नौकरशाह अधिकारियों के अतिरिक्त अनेकानेक बिचौलिए होते थे। फलस्वरूप किसान वर्ग का शोषण किया जाता था और उन्हें सताया जाता था। वे नोच–खसोअट किए जाने के कारण बुरी तरह त्रस्त थे पर उन्हें केवल यह लाभ था कि उन्हें एक हद तक इस बात की सुरक्षा थी कि भुगतान न करने पर भी उन्हें जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकता था। अकबर के शासन काल में जब टोडरमल को दीवाने–अशरफ नियुक्त किया गया तब कुछ प्रमुख सुधार हुए। टोडरमल ने राजस्व वसूल करने की एक मानक प्रणाली स्थापित की जिसकी मुख्य विशेषता भूमि की पैमाइश तथा सर्वेक्षण, भूमि का वर्गीकरण तथा दरों निर्धारण करना था। इसलिए राजस्व व्यवस्था की कुल मिलाकर सफलता या विफलता, राजा तथा केन्द्रीय प्रशासन के स्तर और स्वरूप पर निर्भर होती थी। अकबर को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने अपनी भू–राजस्व व्यवस्था को वैज्ञानिक ढंग से संगठित किया था। वह अठारहवीं शताब्दी तक चलता रहा किन्तु धीरे–धीरे इसका जोर कम होता गया और यह किसानों के हितों के लिए हानिकारक बन गया। साम्राज्य सूबों में, सूबे सरकारों में तथा सरकारें परगना में विभाजित थी। अमालगुजार जिले का मुख्य राजस्व समाहर्ता होता था। उसकी सहायता के लिए अनेक अधीनस्थ कर्मचारी होते थे। अन्य अफसर कानूनगो, राजस्व का लेखा–जोखा रखता था, लेखपाल तथा जिला खचांजी थे।

न्याय प्रशासन (Judicial Administration)

दीवानी न्याय प्रशासन (Civil Judicial Administration)

मुगल राज्य, मुसलमान राज्य होने के कारण कुरान के नियमों पर आधारित था। मुन्सिफ कुरान के आदेशों, प्रतिष्ठित विधिवेत्ताओं द्वारा दिए गए पहले के फतवों या धार्मिक नियमों/निर्वचनों का अनुपालन करते थे। वे प्रथागत कानून की अवहेलना नहीं करते थे तथा समानता के नियमों का पालन करते थे। बादशाह का निर्वाचन तभी माना जाता था जब यह धार्मिक कानून के खिलाफ न हो। न्याय प्रदान करने के लिए दो प्रकार के दण्ड थे। मुख्य काजी तथा अधीनस्थ काजी होते थे जो दीवानी तथा फौजीदारी दोनों के लिए इस्लाम के कानून को मानते थे। दूसरा धर्मनिरपेक्ष अफसर "मीर अदल" था, जो दोनों संप्रदायों के उन मामलों का फैसला करता था जिसके लिए दोनों संप्रदायों के कानूनों में कोई विशेष व्यवस्था की गई है बादशाह मूल तथा अपील अधिकार क्षेत्र का सर्वोच्च न्यायलय था। "मीर अदल" का कार्यालय बड़े शहरों तथा नगरों तक ही सीमित था जहां मिश्रित जनसंख्या तथा उन्नत

वाण्ज्यि के कारण ऐसे मामलों की संख्या बढ़ गई थी जो कुरान के नियमों के अंतर्गत नहीं आते थे। यहां भी बेईमानी तथा सत्ता के दुरूप्योग के अनेक अवसर थे। जहां "मीर अदल" और "काजी" दोनों मौजूद होते थे वहाँ "मीर अदल" पर, जो उसके मातहत कानून अधिकारी (Law officer) के रूप में काम करता था, सामान्य नियंत्रण अधिकारी माना जाता था।

फौजदारी न्याय प्रशासन (Criminal Judicial Administration)

फौजदारी न्याय के लिए मुसलमान तथा गैर–मुसलमान दोनों के लिए कुरान मार्ग दर्शन करता था। मुस्लिम कानून के अनुसार जुर्म तीन प्रकार के होते थे– 1) ईश्वर के प्रति किया गया जुर्म, 2) राजा के प्रति किया गया जुर्म, 3) किसी सामन्य व्यक्ति के प्रति किया गया अपराध। नियम जिनके अंतर्गत जुर्मों की सजा दी जाती थी। वह भी तीन प्रकार से थी–1) हूदा अथवा कुरान द्वारा निर्धारित की गई सजायें, जिनमें कोड़े मारने तथा मौत की सजा आदि आती थी। 2) "किसास" या प्रतिकार जो मनुष्य के अधिकार के रूप में होती थी, 3) "ताजीर" या जज के द्वारा दी गई सजा, जिसकी कानून के अंतर्गत परिभाषा नहीं दी गई हो। इसके अंतर्गत तिरस्कार, जनसमुदाय के सामने बेईज्जती, देश निकाला, कोड़े मारना आदि आता था। न्याय के आधुनिक दृष्टिकोण से सजाएं बड़ी ही सख्त तथा बर्बर थी। कोड़े मारकर जान लेना आम था। ध्यान देने योग्य बात है कि पूरी अदालत व्यवस्था कार्यपालक सत्ता के अधीन काम करती थी तथा न्यायलयों का कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य क्षेत्र अथवा श्रेणी विभाजन नहीं था। मुगल सत्ता के विघटन तथा साम्राज्य का पतन होने पर न्यायिक संस्थाएं बहुत बुरी तरह प्रभावति हुई और नियमित कचहरियों के काम मुख्य नगरों तक ही सीमित रह गए यहां प्रांतीय गर्वनरों को कुछ हद तक स्वायत्तता प्राप्त रही।

भारतीय प्रशासन पर मुगलों के प्रभाव (Impact of Mughals on Indian Administration)

विकास की प्रक्रिया में इतिहास के अनुभव का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। निसंदेह भूतकाल के अवशेषों पर ही भविष्य का निर्माण होता है यद्यपि मुगलों ने प्रशासनिक मशीनरी की स्थापना में कोई नवीनता नहीं दिखाई (क्योंकि मुगल प्रशासन में हिन्दु, मुगल एवं पर्शियन तत्व विद्यमान थे) और न ही उन्होंने राजनीतिक एकता और राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया तो भी मुगल प्रशासन का भारतीय प्रशासन पर निम्न प्रभाव है।

1. **प्रशासन में एक रूपता के तत्वः**–मुगलों ने सर्वप्रथम अपने प्रशासन तंत्र के माध्यम से भारत के शासन संचालन में एक रूपता के तत्व स्थापित किए। देश के सभी सुबों में एक जैसा प्रशासन तंत्र, प्रक्रिया, कार्यालय भाषा एवं मुद्रा का प्रचलन किया। किसी भी प्रांत का वासी किसी भी अन्य प्रांत में अपने को विदेशी अनुभव नहीं करता था। व्यापारी एवं यात्री देश के किसी भी शहर एवं प्रांत में सुविधापूर्वक आवागमन कर सकते थे और इस विशाल देश में एकरूपता का अनुभव करते थे।

2. **कर्मिक प्रशासन एवं मानव संसाधन विकास के तत्वः**–मुगल काल में कुछ–कुछ कर्मिक प्रशासन के आरंभिक मुगल काल के तत्वों को भी देखा जा सकता है। यद्यपि पूर्ण रूप से स्थापित एवं विकसित नहीं थे। जैसे कार्य विशेषीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नती, पेंशन इत्यादि। यद्यपि इन व्यवस्थाओं के विषय में निश्चित कानूनों का अभाव था।

3. **लोक प्रशासन के सिद्धान्तः**–मुगल काल में लोक प्रशासन के कुछ स्थापित सिद्धान्त भी दृष्टिगोचर होते थे जैसे श्रम–विभाजन, विकेन्द्रीयकरण (यद्यपि स्थानीय स्वायत्तता का अभाव था) पदसोपन, संचार–तंत्र आदि।

4. **दस्तावेज का संग्रह एवं संहिताकरणः**–मुगल प्रशासन के विभिन्न महत्वपूर्ण दस्तावेजों के संग्रह एवं संहिताकरण की प्रथा विकसित हुई।

5. **सचिवालयः**– मुगल काल में एक बड़े सचिवालय या पत्र विभाग का ब्यौरा भी मिलता है जिसे दार–उल–इंशा कहा जाता था जिसके पत्र वर्तमान में भी विद्यार्थियों, इतिहासकारों के लिए विशेष महत्व

रखते है। क्योंकि यहां महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध हैं।

6. **अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धः**–मुगल शासकों ने अन्य एशियन राष्ट्रों के साथ सांस्कृतिक व्यापारिक एवं धार्मिक सम्पर्क स्थापित किये।
7. **सैनिक प्रशासनः**–मुगलकालीन सेना प्रबन्ध आकार एवं प्रशिक्षण की दृष्टि से, केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दोनों स्तरों पर हिन्दूकाल प्रबन्ध की अपेक्षा उत्तम था।
8. **ग्रामीण प्रशासनः**–यद्यपि मुगल प्रशासन शहरा–मुख था परन्तु उन्होंने ग्रामीण प्रशासन को भी यथावत बनाए रखा।
9. **भूमि प्रबन्ध एवं भूसुधारः**–सुल्तान अकबर के समय में राजा टोडरमल के परामर्श पर कई भूमिसुधार भी किये गए जैसे भमि नापने की अधिक सही व्यवस्था–तंत्र। इसी प्रकार उपजाऊ पन के आधार पर भू–राजस्व निश्चित करने की प्रथा।
10. **धर्म निरपेक्ष–प्रशासनः**–सुल्तान अकबर के समय ही दीन–ए–इलाही धर्म स्थापित किया गया। जिसके सब धर्म धर्म की अच्छी बात शामिल की गई इसके साथ ही राजा टोडरमल, बीरबल आदि हिन्दू विद्वान मुगल–प्रशासन को महत्वपूर्ण पदाधिकारियों में विशेष स्थान व सम्मान रखते थे।

इस प्रकार मुगल प्रशासन का भारतीय प्रशासन पर संरचनात्मक एवं व्यवहारात्मक दोनों प्रकार के अत्याधिक महत्वपूर्ण एवं विविधता पूर्ण प्रभाव है।

1.4 ब्रिटिश प्रशासन (British Administration)

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का निष्पक्ष अध्ययन किया जाए तो प्रतीत होगा कि अधिकांशतः भारत में ब्रिटिश शासन की विरासत है। भारत में सन् 1858 तक ब्रिटिश प्रशासन मुख्य रूप से ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन रहा। यद्यपि ब्रिटिश सरकार समय–समय पर अधिनियम पास करके हस्तेक्षप करती तथा कम्पनी के शासन पर नियंत्रण रखती थी। सम्राट ने 1858 में कम्पनी को पूर्णतः अपने अधिकार में ले लिया। यद्यपि प्रारम्भ कम्पनी का कार्य विशुद्धतः व्यावसायिक था लेकिन इसने धीरे–धीरे सरकार या शासक निकाय का दर्जा प्राप्त कर लिया। जब अंग्रेजों ने सन् 1600 से व्यापारिक कार्य शुरू किये तब पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी जैसी विदेशी शक्तियां पहले से ही व्यापार में लगी हुई थी।

इस प्रकार पूर्व के व्यापार पर अधिकार पाने के लिए अंग्रेजों को दूसरी यूरोपीय शक्तियों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी। इसके बाद ही उन्होंने प्रादेशिक आधिपत्य प्राप्त करने की भी चेष्टा की। मुगल साम्राज्य के समाप्त होने और राजाओं तथा नवाबों के बीच विध्वंसात्मक लड़ाइयों के कारण ऐसा संभव हो सका। उदाहरण के लिए कर्नाटक युद्ध के बाद अंग्रेजों ने उत्तरी सरकारों पर कब्जा कर लिया जो इससे पहले फ्रांस के अधिकार में थी। सन् 1757 में प्लासी युद्ध जीतने के बाद और इलाहाबाद की संधि के द्वारा उन्होंने सन् 1765 में बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली। साथ ही उन्हें इन प्रांतों पर प्रशासन और राजस्व की वसूली का अधिकार भी मिल गया। वस्तुतः सन् 1757 के प्लासी युद्ध और सन् 1857 के सैनिक विद्रोह के बीच, इन सौ वर्षों में अंग्रेजों ने पूरे भारत पर अधिकार कर लिया था और इस प्रकार शीघ्र ही भारत ब्रिटिश राजमुकुट में एक बहुमूल्य हीरे के रूप में सुशोभित हो गया।

ब्रिटिशकालीन प्रशासन का वर्गीकरण (Classification of British Period Administration)

सुविधानुसार ब्रिटिश कालीन भारतीय प्रशासन के विकास को निम्नलिखित कालों में आंबटित किया जा सकता है।

1. **1600 से 1765 तक** –भारत में ब्रिटिश शासन का इतिहास काल 1600 ई॰ से प्रारम्भ होता है। उन दिनों

इंग्लैण्ड में भारत की अपार धन सम्पत्ति की चर्चाएं होती थी। धन प्राप्त करने और समुन्द्री यात्राओं की उमंग ने अंग्रजों को भारत की ओर आकर्षित किया। सन् 1600 में एक राजलेख (चार्टर) द्वारा महारानी एलिजाबेथ ने एक कंपनी की स्थापना की जो 'ईस्ट इंडिया कंपनी' कहलाई। इस राजलेख द्वारा कंपनी को विदेशों में व्यापार करने की स्वीकृति प्रदान की गई। भारत में मुगल बादशाह जहांगीर से अनुमति प्राप्त करके ईस्ट इंडिया कंपनी ने सूरत में अपना प्रथम व्यापारिक केन्द्र स्थापित किया। शनैः शनैः कंपनी ने भारत में अन्य व्यापारिक स्थानों पर अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापति किये। भारत में अंग्रेज एक व्यापारी के रूप में आए थे। कालान्तर में वे साम्राज्य स्थापित करने की सोचने लगे।

सन् 1725 के राजलेख द्वारा कलकत्ता–बम्बई–मद्रास प्रसीडेन्सियों के राज्यपाल एवं उनकी परिषद् को कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। साथ ही इस राजलेख ने भारत स्थिति कंपनी की सरकार सपरिषद् गवर्नर जनरल को नियम, उपनियम और अध्यादेश पारित करने का अधिकार प्रदान किया। इस समय भारत में मुगल साम्राज्य का द्रुत गति से पतन हो रहा था। उसकी क्षीण होती शक्ति का अंग्रेजों ने फायदा उठाया और 1757 में वे मुगल वंशज के अंतिम नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हराकर बंगाल प्रान्त के वास्तविक शासक बन गये। प्लासी की जीत से ही वास्तविकता में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की नींव पड़ी। सन् 1765 में मुगल बादशाह आजम ने कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का दीवान बना दिया। जिसके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों की मालगुजारी वसूलने से लेकर दिवानी न्याय प्रशासन तक का उत्तरदायित्व कंपनी पर आ गया।

2. **1765–1858** – बंगाल, बिहार और उड़ीसा का वास्तविक प्रशासन कंपनी के हाथों में आ जाने से कंपनी के अधिकारी स्वच्छन्द हो गए। कंपनी के कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था जिसके कारण वे अनैतिक तरीकों से धन एकत्रित करने लगे। इससे कंपनी घाटे में चलने लगी। फलतः कंपनी ने ब्रिटिश सरकार से ऋण की मांग की। ब्रिटिश सरकार और राजनीतिज्ञों को कंपनी के कुप्रशासन का आभास हो गया। तब ब्रिटिश संसद ने कंपनी के क्रिया–कलापों की गहराई से जाँच करने के लिए गोपनीय समिति गठित की। गोपनीय समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप ब्रिटिश संसद में 1779 ई॰ में रेग्युलेटिंग एक्ट पारित करके कंपनी ने प्रशासन में अनेक परिवर्तन किये।

रेग्युलेटिंग एक्ट 1773 –इस एक्ट के द्वारा समस्त ब्रिटिश भारत के लिए एक अखिल भारतीय सरकार की स्थापना की गई। इस व्यवस्था में भारत सराकर के प्रधान के रूप में गवर्नर जनरल और चार सदसीय परिषद् की स्थापना की गई गवर्नर जनरल को परिषद् की कुछ विधायी शक्तियां दी गई। इस एक्ट द्वारा कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई जिसके निर्णयों के विरूद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील का प्रावधान था। रेग्युलेटिंग एक्ट ने प्रशासन में केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की।

1781 में सैटिलमैण्ट एक्ट बनाकर कलकत्ता सरकार को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के लिए विधि बनाने का अधिकार प्रदान किया गया। एक्ट ऑफ सैटिलमैण्ट के प्रभावी होने के बावजूद कंपनी के प्रबन्ध में सुधार न होने पर ब्रिटिश संसद ने कंपनी पर प्रभावी नियत्रंण के लिए 1784 में पिट्स इण्डिया एक्ट पारित किया। इस एक्ट द्वारा कंपनी के व्यापारिक तथा राजनीतिक कार्यों को पृथक कर दिया। कंपनी ने व्यापारिक कार्य निदेशकों के तथा राजनीतिक कार्य बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के हाथों में कर दिया। 1793 में चार्टर एक्ट द्वारा कंपनी के व्यापार को 20 वर्ष की अवधि के लिए बढ़ा दिया गया। 1813 में चार्टर एक्ट द्वारा कंपनी के सर्वाधिकार को समाप्त करके समस्त ब्रिटिश लोगों के लिए भारत में व्यापार के द्वार खोल दिए गये। इस चार्टर द्वारा कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के कारखानों द्वारा बनाई गई विधियों का ब्रिटिश संसद द्वारा अनुमोदन अनिवार्य कर दिया गया। 1833 के चार्टर द्वारा बंगाल के गवर्नर जनरल को सम्पूर्ण भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया। गवर्नर जनरल की परिषद् में एक सदस्य (विधि विभाग) की वृद्धि की गई तथा मद्रास और बम्बई परिषदों की विधि

निर्माण की शक्ति को समाप्त करके यह शक्ति गवर्नर जनरल को सौंपी गई।

1853 में चार्टर का निर्माण करके इसके तहत भारत के लिए एक पृथक विधान परिषद् की स्थापना की गई जिसका मुख्य कार्य देश के लिए कानून बनाना था। भारतीय विधान परिषद् में क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस परिषद् को कानून बनाने का अधिकार दिया। लेकिन इसमें अंतिम स्वीकृति गवर्नर की थी। तभी यह कानून बन सकता था। कंपनी के निदेशकों के अधिकारों में कमी की गई। इस प्रकार यह पहला अधिनियम था जिसके तहत भारत के लिए एक विधान–मण्डल की स्थापना की गई तथा कार्यपालिका और विधायी शक्तियों को पृथक करने का एक ठोस कदम उठाया गया।

3. **1858 से 1919 तक –** 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन तथा कंपनी की अप्रभावी तथा अकुशल कार्य पद्धति के कारण 1858 में एक्ट को दी बैटर गवर्नमैण्ट ऑफ इण्डिया नाम से पारित करके भारत में शासन को कंपनी से हस्तांतरित करके ब्रिटिश सम्राट को सौंप दिया गया। गवर्नर जनरल को अब 'वायसराय' के नाम से जाना जाने लगा। भारतीयों की देखरेख के लिए राज्य सचिव की नियुक्ति की गई जो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सदस्य होता था। राज्य सचिव के कार्यों में सहायता के लिए तथा उसे नियंत्रित रखने के लिए 15 सदस्यीय 'भारत परिषद्' की स्थापना की गई। इस परिषद् में भारतीयों को प्रातिनिधित्व नहीं दिया गया। यह राज्य सचिव ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था।

1861 में उपरोक्त एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए भारत परिषद् अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा बहुत ही अल्प लेकिन लोक प्रतिनिधित्व का श्रीगणेश हुआ। प्रांतीय विधान सभाओं को विधि निर्माण करने का अधिकार दिया गया तथा प्रान्तीय स्वायत्तता की नींव डाली गई। गवर्नर जनरल को विधानसभा में भारतीयों को नामांकित करने की शक्ति प्रदान की गई तथा गवर्नर जनरल की परिषद् में सदस्य संख्या बढ़ाई गई। कुछ सुधारों के बावजूद अधिनियम में अनेक कमियां थी। इस अधिनियम में जहां गवर्नर जनरल को असीमित अधिकार प्राप्त हुए थे वहीं दूसरी ओर परिषद् के सदस्यो को कोई विशेष अधिकार नहीं मिले। ये विधेयकों पर प्रश्न तक नहीं पूछ सकते थे। सन् 1885 में सर ए॰ओ॰ ह्यूम द्वारा 'अखिल भारतीय कांग्रेस' का गठन किया गया। जिसका उद्देश्य भारतीयों को प्रशासन तथा विधि–निर्माण में अधिक प्रतिनिधित्व दिलाना था। स्थिति में सुधार के लिए सन् 1892 में भारतीय अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियिम द्वारा भारतीय विधान परिषद् द्वारा नाम निर्देशित होने लगे। प्रान्तीय परिषदों के गैर–सरकारी सदस्य, विश्वविद्यालय, जिला बोर्ड, नगरपालिका आदि द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाने लगे। परिषदों को राजस्व और व्यय के वार्षिक बजट पर विचार–विमर्श करने और कार्यपालिका से प्रश्न पर भी शक्ति प्रदान की गई। इस अधिनियम ने भारत में प्रतिनिधि सरकार की नींव डाली, फिर भी इसमें अनेक कमियां थी। निर्वाचन की पद्धति अन्यायपूर्ण थी तथा निर्वाचित व्यक्ति वास्तव में जनता की प्रतिनिधित्व नहीं करते थे।

नवम्बर 1906 में लॉर्ड कर्जन के स्थान पर लॉर्ड मिन्टो को भारत का वायसराय बनाया गया और जॉन मार्ले को भारत का राज्य सचिव नियुक्त किया गया। मार्ले उदारवादी विचारों के थे और भारतीय प्रशासन में सुधारों के समर्थक थे। मिन्टो मार्ले के विचारों से सहमत थे। इनके द्वारा किये गए सुधारों को मार्ले–मिन्टों सुधार के नाम से जाना जाता है। मार्ले–मिन्टों सुधार भारतीय परिषद् अधिनियम, 1909 में लागू किये गये। केन्द्र की विधान परिषदों के आकार में वृद्धि की गई और उसमे कुछ गैर–सरकारी सदस्यों को सम्मिलित किया गया जिससे शासकीय बहुमत समाप्त हो गय। इस अधिनियम द्वारा विधानसभा परिषद् के विचार–विमर्श सम्बन्धी कार्यों में वृद्धि की गई। पहली बार मुस्लिम समुदाय के लिए पृथक प्रतिनिधित्व का उपबन्ध किया गया। इसी से भारत में पृथकवाद का बीजारोपण हुआ। मार्ले–मिन्टो सुधार उपयोगी था, लेकिन यह भारतीयों की आकॉंक्षा को पूर्ण न कर सका।

4. **1919 से 1947 तक –** 1917 में भारत के नये सचिव मोंटेग्यू ने भारत में और अधिक सुधारों का समर्थन किया। इसके लिए मोंटेग्यू ने ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ भारत का भ्रमण किया और भारत की प्रशासनिक तथा राजनीतिक समस्याओं का अध्ययन किया। 1918 में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जो मॉंटफोर्ड योजना के नाम से जानी जाती है। इसमें भावी सुधारों की योजना थी। इस प्रतिवेदन पर आधारित 'गवर्नमैण्ट ऑफ एक्ट, 1919' पारित किया गया। जो भारत सरकार अधिनियम– 1919 के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थी–

   I. प्रान्त में दोहरे शासन को स्थापित करके एक आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई। प्रशासन के विषयों को दो भागों में बांटा गया–केन्द्रीय विषय और प्रान्तीय विषय। केन्द्रीय विषयों पर केन्द्र तथा प्रान्तीय विषयों पर प्रान्तीय सरकार कानून बनाती थी। प्रान्तीय विषयों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया–रक्षित विषय और हस्तान्तरित विषय।

   II. केन्द्रीय विधान मण्डल को पहली बार द्वि–सदनीय बनाया गया। उच्च सदन को 'राज्य परिषद्' तथा निम्न सदन को 'विधानसभा' नाम दिया गया। उच्च सदन में 60 सदस्य(उपनिर्वाचित) तथा निम्न सदन में 144 (104 निर्वाचित) थे। स्त्रियों को न तो मताधिकार प्रदान किया गया और न ही परिषद् की सदस्या बनने का अधिकार दिया गया।

   III. केन्द्रीय विधान मण्डल की अपेक्षा गवर्नर जनरल का वर्चस्व बनाए रखा गय।

   IV. केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थी न कि केन्द्रीय विधान परिषद् के प्रति, लेकिन कुछ सीमा तक प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय विधानमण्डलों के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। गवर्नर जनरल की परिषद् की सदस्य सीमा समाप्त कर दी गई तथा भारतीय सदस्यों की संख्या 3 कर दी गई। यह कार्यपालिका शक्तियां गवर्नर जनरल में निहित थी।

1919 का अधिनियम भारतीयों की आकॉंक्षाओं को संतुष्ट न कर सका जिससे भारतवासी अधिक क्रुद्ध हो गए और गॉंधी जी के नेतृत्व में आंदोलन प्रारम्भ किया। इससे प्रभावित होकर सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक साइमन कमीशन गठित किया गया। इस गोलमेज के आधार पर एक श्वेत पत्र तैयार किया गया जिसकी जॉंच ब्रिटिश संसद की एक संयुक्त प्रवर समिति द्वारा की गई। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर भारत शासन अधिनियम – 1935 पारित किया गया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थी।

- संघात्मक सरकार की स्थापना करना।
- केन्द्र और प्रान्तों के मध्य शक्तियों का विभाजन तीन सूचियों को बनाकर किया गया केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची, समवर्ती सूची।
- संघीय न्यायलय (दिल्ली) की स्थापना।
- प्रान्तों में द्वैष शासन को हटाकर केन्द्र में लागू किया गया।
- प्रान्तों में स्वायत्त शासन स्थापित किया गया।
- केन्द्रीय विधान मण्डल में सदस्यों की सख्या बढ़ाई गई।
- प्रान्तीय कार्यपालिका गवर्नर और मंत्रिमण्डल द्वारा गठित की गई।
- प्रान्तों में द्वि–सदनीय विधान मण्डल की स्थापना की गई।
- निर्वाचन साम्प्रदायिक आधार पर किया जाना तय हुआ।

1935 के अधिनियम की सभी दलों ने आलोचना की, लेकिन 1937 के चुनावों में सभी दलों ने हिस्सा लिया। कई प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत मिला। 1938 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। ऐसी स्थिति में भारतीयों को खुश करके उनका युद्ध में सहयोग लेने के लिए भारत में क्रिप्स मिशन भेजा गया। इस मिशन के प्रस्तावों को सभी राजनीतिक दलों ने अस्वीकार कर दिया। भारतीयों की मांगों की अवहेलना होने पर भारतीय नेताओं ने अपना धीरज खो दिया। 1942 में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' छेड़ दिया। इस स्थिति से निपटने के लिए 1946 में ब्रिटिश सरकार ने संविधान के निर्माण के लिए भारतीय नेताओं से बातचीत करने हेतु कैबिनट मिशन भेजा। इस मिशन ने निम्नांकित सिफारिशें प्रस्तुत की–

- भारत पर ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता समाप्त की जानी चाहिए।
- ब्रिटिश रियासतों और प्रान्तों को मिलाकर एक भारत संघ बनाना चाहिए।
- भारतीय रियासतों को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वे संघ में सम्मिलित हो या स्वतंत्र रहे।
- एक अन्तरिम सरकार का गठन किया जाये जिसे देश के सभी राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त हो।
- देश का संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा का शीघ्र गठन किया जाए।

कैबिनेट मिशन का कार्य योजना सभी भारतीयों को स्वीकार्य थी। कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव पर जुलाई 1946 को संविधान सभा का गठन किया गया। 2 सितम्बर, 1946 को एक अंतरिम सरकार गठित की गई।

भातीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947

वर्ष 1947 में भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया गया जिसमें निम्नांकित उपबन्ध थेः–

- 15 अगस्त, 1947 को भारत एवं पाकिस्तान दो स्वतंत्र राज्यों की स्थापना होगी।
- प्रत्येक स्वतंत्र राज्य में एक गवर्नर जनरल पद स्थापित होगा जिसकी नियुक्ति इंग्लैण्ड का सम्राट करेगा।
- दोनों राज्यों की संविधान निर्मात्री सभाओं को संविधान का अधिकार होगा।
- 14 अगस्त, 1947 के बाद दोनों राज्यों पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण समाप्त हो जाएगा।
- नये संविधान के निर्माण तक दोनों राज्यों का प्रशासन भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत चलेगा।
- भारत राज्य सचिव का पद समाप्त करके उसके स्थान पर राष्ट्रमण्डल सचिव की नियुक्ति की जायेगी।
- भारतीय प्रान्तों पर ब्रिटिश प्रभुसत्ता का नियंत्रण समाप्त हो जायेगा।

15 अगस्त, 1947 को इस अधिनियम के प्रभावी होने से भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बना तथा 26 जनवरी 1950 को भारत में नया एवं स्वतंत्र संविधान लागू हुआ जिसमें भारत को लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया।

भारतीय प्रशासन ब्रिटिश काल की विरासत (Indian Administration Legacy of British Period)

वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश शासन की विरासत मानी जाती है क्योंकि सन् 1947 में सत्ता हस्तान्तरण के समय हमने ब्रिटिश प्रशासनिक ढाँचे को यथावत स्वीकार किया था जिसमें बहुत कम संशोधन या परिवर्तन किये गये हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी तथा ब्रिटिश कानूनों से नियंत्रित भारतीय प्रशासन लगभग 200 वर्ष तक निरन्तर विकसित तथा परिवर्तित किया जाता रहा। इस दौरान जो प्रक्रियाएं या परम्पराएं विकसित हुइ उनका प्रभाव आज भी भारतीय प्रशासनिक तंत्र पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो निम्नानुसार हैंः–

- **भारतीय लोक सेवाएं (Indian Civil Services) :–**ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में प्रशासन संचालित करने के लिए 'इण्डियन सिविल सर्विस' इण्डिया पुलिस तथा अखिल भारतीय लोक सेवाओं की शुरूआत की गई थी।

लार्ड कार्नवालिस को भारत में लोक सेवाओं का जनक माना जाता है। इन सेवाओं के अधिकारी भारत में कहीं भी नियुक्त किए जा सकते हैं। प्राधिकार की दृष्टि से भी ये अधिकारी अधिक सुदृढ़ हैं। विशेषज्ञ सेवाओं तथा राज्य सेवाओं के अधिकारी इनके अधीन कार्य करते हैं। स्वतंत्रता के बाद भी अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था जारी रखी गई तथा वर्तमान में तीन अखिल भारतीय सेवाएं यथा–भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.), भारतीय पुलिस सेवा (I.P.S.) तथा भारतीय वन सेवा (I.F.S.) कार्यरत हैं। यह सेवाएं ब्रिटिश राज का मुख्य आधार स्तंभ थी। स्टील फ्रेम अर्थात् इस्पात के समान मजबूत कवच के नाम से प्रसिद्ध आई॰ए॰एस॰ के अतिरिक्त अन्य लोक सेवाओं का विकास भी ब्रिटिश शासन की देन हैं। लोकन सेवाओं में राजपत्रित तथा अराजपत्रित का भेद, योग्यता आधारित भर्ती, चार वर्गो में कर्मिकों का वर्गीकरण, वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट, उच्च अधिकारी को अधिक वेतन तथा सुविधाएं एवं उच्च लोक सेवाओं में शहरी तथा उच्च जातियों को प्रमुखता इत्यादि ब्रिटिश परम्पराओं का परिणाम है। उच्च अधिकारियों की आवासीय कॉलोनी आम जनता के आवासों से दूर 'सिविल लाईन्स' के रूप में बसाने की परम्परा अंग्रेजों द्वारा विकसित की हुई है। 1772 में जिला कलेक्टर का कार्यालय बनाया गया। वारेन हास्टिंगस भारत के पहले जिला कलेक्टर थे।

- **सचिवालय व्यवस्था (Secretariat System) :–**सचिवालय वह उच्च प्रशासनिक संगठन है जिसमें राजनीतिक मंत्री या सचिव (विभाग का प्रशासनिक अधिकारी) तथा उसके अन्य कार्मिक पदस्थापित रहते हैं। सचिवालय अर्थात् सचिवों का घर, नामक यह व्यवस्था संघीय स्तर पर केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य सचिवालय के रूप प्रवर्तित है। अंग्रेजी शासन काल में विकसित सचिवालय आज भी नीति, कानून तथा कार्यक्रम निर्माण एवं नियंत्रण का महत्वपूर्ण अंग हैं जो मुख्यतः मंत्रियों को उनके कार्यों में परामर्श देने के लिए बनाया गया। सचिवालय द्वारा निर्मित नीति एवं कानूनों को व्यावहारिक स्तर पर क्रियान्वित करने हेतु अन्य कई प्रकार के कार्यकारी संगठन जैसे– निदेशालय, बोर्ड, आयोग तथा निगम इत्यादि संगठित किये गये हैं।

- **कठोर नौकरशाही (Rigid Bureaucracy) :–**प्रशासनिक कृत्यों की पूर्ति हेतु कानूनों, नियमों तथा प्रक्रियाओं की कठोर कार्यप्रणाली और 'फाईल व्यवस्था' की शुरूआत ब्रिटिशकाल में हुई। चूंकि अंग्रेज अधिकारी आम भारतीय को झूठा, गंवार तथा जटिल व्यक्ति कहकर प्रताड़ित करते थे। अतः प्रत्येक प्रशासनिक कार्य में लंबे चौड़े फार्म, शपथपत्र, चरित्र प्रमाणपत्र, राजपत्रित अधिकारी से प्रमाण पत्र लेने इत्यादि की प्रक्रियाएं निर्धारित की गई थी जो आज भी भारतीय लोक प्रशासन में यथावत जारी है। लोक सेवकों में जनता से श्रेष्ठ, पृथक तथा स्वामी समझने की प्रवृत्ति अंग्रेजी प्रशासन का परिणाम कही जाती है। स्वतंत्र भारत में इस गुलाम मानसिकता के अतिरिक्त नौकरशाही में अन्य कई दोष विद्यमान हैं। 'साहब संस्कृति' तथा 'बाबूराज' की शुरूआत भी ब्रिटिश प्रशासन की ही देन हैं जो आज सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन की विशिष्ट पहचान बन चुकी है।

- **एकात्मक तत्वों सहित संघात्मक व्यवस्था (Unitary and Federal System) :–**इसमें कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजों ने विशाल भारत को एकसूत्र में पिरोने का सफल प्रयास किया था। इस प्रयास में एक समान कानून कठोर, अनुशासन, सामाजिक सुधार तथ अखिल भारतीय सेवाएं इत्यादि सहायक रहे हैं। शासन संचालन को केन्द्र तथा प्रान्तीय स्तर पर विभक्त करके संघीय ढाँचे की शुरूआत ब्रिटिश शासन में हो चुकी थी। इसी प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा तथा एकता के महत्वपूर्ण कार्य जैसे– सेना, विदेशिक सम्बन्ध, रेलवे, डाक तार एवं दूरसंचार इत्यादि केन्द्र सरकार को सौंपे गए थे ताकि प्रान्तीय स्तर पर असमानता के कारण खतरा उत्पन्न न हो। प्रशासनिक कार्यों या विषयों को संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त किया गया है जो सन् 1935 के अधिनियम से प्रभावित हैं। यद्यपि भारत संघीय शासन व्यवस्था वाला देश है फिर भी इकहरी

नागरिकता, राज्यपाल का केन्द्र द्वारा मनोनयन तथा केन्द्र के अधिक अधिकार विचित्र संघीय व्यवस्था को सिद्ध करते है।

- **प्रशासनिक अनामिकता (Administrative Anonymity and Secrecy) :–**लोक प्रशासन में निष्पादित होने वाला कोई भी कार्य कर्मचारी या अधिकारी का निजी कार्य नहीं बल्कि सरकार कार्य होता है अतः अनामता का सिद्धान्त प्रचलित है। लोक सेवक न तो सरकारी सम्पत्ति को अपना समझते हैं और न ही पद से अधिक स्वयं के नाम को महत्व दे सकते हैं। अंग्रेजों द्वारा प्रतिपादित इस प्रशासनिक अनामता के अतिरिक्त प्रशासनिक गोपनीयता भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

- **समिति व्यवस्था (Limited System) :–** भारत में शासकीय, प्रशासनिक कार्यों को पूरा करने, जाँच करने, संशोधन तथा अनुशंसाएं सुझाने इत्यादि कार्यों के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों से युक्त कमेटी बनाने की प्रणाली ब्रिटिश परम्पराओं का परिणाम है। संसद तथा राज्य विधानमंडलों, मंत्रिमण्डलों, मंत्रालयों, कार्यालयों तथ संगठनों में आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार की छोटी–बड़ी, स्थायी–अस्थायी समितियां गठित की जाती हैं। भारत में कमेटी प्रणाली किसी भी दृष्टि से प्रभावी सिद्ध नहीं हो सकी है। समिति प्रणाली से दुखी होकर ब्रिटिश प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल ने कहा था– "मुझे लगता है कि अब मुझे इन समितियों की स्थापना का विरोध करना चाहिए क्योंकि ये समितियां हमें इतना अधिक संचालित एवं प्रताड़ित करती हैं जितना कि आस्ट्रेलियावासी खरगोशों द्वारा होते हैं।" (किसी समय में आस्ट्रेलिया में खरगोशों की अधिक संख्या एक राष्ट्रीय समस्या थी)।

- **जिला प्रशासन (District Administration) :–**ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल में शाह आलम से दीवानी अधिकारी प्राप्त करते ही राजस्व एकत्रण की ओर ध्यान केन्द्रित किया। सर्वप्रथम वारेन हेस्टिंग्स ने सन् 1772 में बंगाल में कलेक्टर (संग्रह करने वाला) पद सृजित किया जिसे सन् 1773 में समाप्त कर सन् 1781 में पुनजीर्वित किया। सन् 1787 में राजस्व एकत्रणकर्ता कलक्टर को दण्डनायक शक्तियां भी प्रदान कर दी गई। शनैः शनैः जिला कलक्टर का पद भारतीय लोक प्रशासन में महत्वपूर्ण हो गया। स्वतंत्रता के पश्चात् जिला प्रशासनिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई बन गया जो विकास, शांति एवं व्यवस्था, विभागीय सेवाओं, संसदीय क्षेत्र (लगभग) तथा तहसील एवं राज्य सरकार के मध्य मुख्य समन्वयक के रूप में निर्णायक भूमिका निभाता है। केन्द्र एवं राज्य सरकार के सभी जनोपयोगी विभागों के कार्यालय जिला स्तर पर कार्यरत हैं जो न केवल विकेन्द्रीयकृत प्रशासन के पर्याय हैं बल्कि प्रशासनिक कृत्यों के निर्वहन की मूलभूत व्यावहारिक इकाईयां भी हैं।

- **राजस्व प्रशासन (Revenue Administration) :–**प्रशासनिक तंत्र को संचालित करने के लिए 'वित्त' महत्वपूर्ण संसाधन है अतः सरकार द्वारा आरोपित राजस्व (कर) को संग्रहित करने तथा राजस्व प्रशासन को संचालित करने के लिए अंग्रेजों ने सर्वप्रथम भूमि एवं कृषि से सम्बन्धित राजस्व एकत्रण की व्यवस्था संचालित की। सन् 1786 में सर्वप्रथम बंगाल में राजस्व मंडल की स्थापना की हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् अधिकांश राज्यों में राजस्व मंडल वैधानिक एवं स्वतंत्र निकाय के रूप में कार्यरत हैं। जिला कलेक्टर, तहसीलदार, काननगो तथा पटवारी के माध्यम से भू–राजस्व एकत्रण तथा भूमि कानूनों का क्रियान्वयन किया जाता है। अन्य प्रकार के राजस्व जैसे– आयकर, बिक्रीकर, सीमा शुल्क इत्यादि की प्रशासनिक संरचनाएं पृथक से कार्यरत हैं जो ब्रिटिश शासन के दौरान गठित संगठनों का परिवर्तित एवं विकसित स्वरूप कही जा सकती हैं।

- **पुलिस प्रशासन (Police Administration) :–**अंग्रेजों द्वारा भारत पर शासन के दो मुख्य उद्देश्य थे। प्रथमतः भारत में राजस्व एवं कच्चा माल संग्रहित कर इंग्लैण्ड भेजना तथा दूसरा भारत पर शासन करने के

लिए शांति–व्यवस्था बनाए रखना। अतः 1808 में पुलिस अधीक्षक का पद सृजित किया गया। सन् 1860 के पुलिस आयोग की अनुशंसा पर 'पुलिस अधिनियम 1861' पारित हुआ। सेना एवं पुलिस कार्यों को पृथक करते हुए पुलिस अधीक्षक को जिला कलक्टर के अधीन पदस्थापित कर पुलिस महानिरीक्षक (I.G.P.) का उच्च पद सृजित किया गया। कार्नवलिस द्वारा दरोगा प्रणाली की शुरूआत की गई। वर्तमान भारतीय पुलिस तंत्र, कार्यप्रणाली तथ संगठनात्मक व्यवस्था इसी अधीनियम पर आधारित है जो न्याय प्रशासन से भी जुड़ा हुआ है।

- **वित्त प्रशासन (Financial Administration) :–**आय तथा व्यय के वार्षिक लेखे–जोखे को बजट कहा जाता है। भारत में बजट या वित्तीय वर्ष की अवधि 1 अप्रैल से 31 मार्च तक निश्चित की जाती है। बजट निर्माण की प्रक्रिया, सरकारी लेखों का संधारण, बजट की स्वीकृति तथा निष्पादन एवं अंकेक्षण की प्रक्रियाएं ब्रिटिश परम्पराओं पर आधारित हैं। सन् 1833 के अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को प्रान्तों की लोक सेवाओं के पदों, वेतन, भत्तों इत्यादि की स्वीकृति के लिए अधिकृत किया गया था, साथ ही प्रान्तों द्वारा एकत्र राजस्व भी संघ सरकार की निधि होता था। लार्ड मेयो द्वारा सन् 1870 में जेल, पुलिस, चिकित्सा, मुद्रण तथा पंजीकरण इत्यादि कार्यों हेतु प्रान्तों को उनके द्वारा एकत्रित राजस्व को उपभोग में लाने तथा केन्द्रीय अनुदान देने की व्यवस्था शुरू की गई। इसी प्रकार सन् 1887 में स्ट्रेचे योजना के अन्तर्गत भूमिकर, चुंगी, स्टाम्प एवं स्टेशनरी इत्यादि प्रान्तों के पूर्ण अधिकार में हो गई। सन् 1882 में समस्त राजस्व का केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा विभाजित तीन भागों में विभक्त किया गया। कालान्तर में सन् 1935 के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों को स्वयत्तता प्राप्त हुई। सन् 1919 में राष्ट्रीय स्तर पर ऑडीटर जनरल तथा प्रान्तों में महालेखाकार पद सृजित किए ताकि वित्तीय लेखों पर नियंत्रण रखा जा सके।
- **स्वशासन (Self Government) :–** भारत में संघीय तथा प्रान्तीय शासन व्यवस्था के अतिरिक्त स्थानीय स्वशासन अर्थात् नगरपालिकाओं तथा शासकों ने सन् 1864 में बम्बई तथा मद्रास प्रेसीडेन्सियों में पंचायतों को न्याय पंचायत का वैधानिक अधिकार प्रदान किया। 12 मई, 1882 को लार्ड रिपन जो भारत में स्थानीय स्वशासन के जनक माने जाते हैं, ने ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं में निर्वाचित प्रतिनिधियों की व्यवस्था की। सन् 1909 के 'विकेन्द्रीयकरण आयोग' ने ग्राम, तहसील तथा जिला स्तर पर त्रिस्तरीय स्थानीय शासन की अनुशंसा की थी। सन् 1919 के अधिनियम के द्वारा स्थानीय शासन प्रान्तीय सरकारों का कार्यक्षेत्र कर दिया गया। यद्यपि प्रथम नगर निगम सन् 1687 में मद्रास में तथा इसके पश्चात् सन् 1726 में कलकत्ता एवं बम्बई में स्थापित हो गए थे तथापि अन्य नगरों में नगरपालिकाओं की स्थापना लार्ड रिपन की नीति के पश्चात शुरू हुई। स्वतंत्रता के पश्चात् 2 अक्तूबर 1959 से भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन के त्रिस्तरीय ढाँचे की शुरूआत हुई जिसे 1992–93 में संवैधानिक स्तर प्रदान कर दिया गया है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण की पर्याय ये संस्थाएं आधुनिक भारत के विकास के महत्वपूर्ण अंग है।

इसके अतिरिक्त न्याय प्रशासन में दीवानी एवं फौजदारी मामलों का पृथक्करण, सर्वोच्च, उच्च जिला तथा अधीनस्थ न्यायलयों की व्यवस्था पर भी ब्रिटिश शासन की छाप है जो भारत में आज भी विद्यमान है।

इस संदर्भ में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भारतीय प्रशासन के विकास का इतिहास उसकी वर्तमान संरचना एवं प्रशासनिक कार्यविधि पर एक निर्णायक प्रभाव छोड़ सका है। ये प्रशासनिक विरासतें भारतीय प्रशासनिक यथार्थ से इस प्रकार जुड़ी हैं कि उन्हें वर्तमान भारतीय प्रशासन से पृथक नहीं किया जा सकता। शताब्दियों के अन्तराल में भारतीय प्रशासकों की आदत का अन्तर बन जाने के कारण ये विरासतें प्रभावी हैं और प्रशासन को निरन्तरता देती है। आज भी ब्रिटिश प्रशासनिक प्रभाव को भारतीय प्रशासन के विविध आयामों में देखा जा सकता है। भारतीय प्रशासन के जिन क्षेत्रों में यह प्रभाव देखने को मिलता है उनमें ये प्रमुख हैं– सचिवालय–व्यवस्था, जिला एवं क्षेत्रीय प्रशासन, लोक–सेवाएं, कार्य–प्रक्रिया, संसदीय प्रणाली, न्याय–प्रणाली, स्थानीय स्वशासन आदि।

1.5 भारतीय प्रशासन की विशेषताएं (Features of Indian Administration)

विकास के संदर्भ में विश्व के देशों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं, विकसित एवं विकासशील। निसंदेह भारत विकास की प्रक्रिया में अग्रसर है परन्तु विकसित देशों की श्रेणी में शामिल होने के लिए सतत् एवं गहन प्रयास की आवश्यकता है और इस प्रयास में प्रशासन की भूमिका सर्वोपरि है। अतः भारतीय प्रशासन के अध्ययन में प्रशासनिक विशेषताओं का अध्ययन अहम है क्योंकि किसी प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषताएं उसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू हैं, इसी के माध्यम से हम उस समाज के प्रशासन की प्रकृति, शासन–व्यवस्था, सामाजिक–परिवेश, साहित्य, कला संस्कृति, नैतिकता के नियम, जन–कल्याण के साथ–साथ प्रशासनिक कार्य–पद्धति एवं मुख्य उद्देश्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान भारतीय प्रशासन का निर्माण भूतकाल के अवशेषों पर हुआ हो जो सिंधु घाटी की सभ्यता से लेकर मौर्य, गुप्त, राजपूत, सल्तनत, मुगल प्रशासन से होते हुए ब्रिटिश काल तक फैला हुआ है। जिस प्रकार प्राणी शरीर से कुछ विशेषताएं जन्म से विरासत रूप में मिलती है तथा कुछ बाद में अर्जित की जाती है उसी प्रकार भारतीय प्रशासन में भी कुछ विशेषताएं जन्म से विरासत रूप में मिलती है तथा कुछ बाद में अर्जित की गई है। स्वतंत्रता के समय भारतीय प्रशासन के समक्ष अनेक चुनौतियां थी जैसे कमजोर अर्थव्यवस्था, सामाजिक अव्यवस्था और एक तरह से प्रशासनिक कार्य–अक्षमता, इत्यादि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था एक विशेष राजनीतिक ढांचे में कार्य करती है और प्रत्येक राजनीतिक ढांचा दूसरे भिन्न होता है। जैसे संसदीय एवं अध्यक्षात्मक। भारत में स्वतंत्रता के समय इनके राजनीतिक ढांचे एवं प्रशासनिक व्यवस्था में सही संतुलन का अभाव था। अतः उपरोक्त समस्याओं के समाधान के लिए और भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था एवं राजनीतिक ढांचे में संतुलन के लिए भारतीय प्रशासन को लोकतंत्रीय विकासशील एवं उत्तरदायी बताया गया।

जैसा कि एस॰आर॰ माहेश्वरी का विचार है कि भारतीय प्रशासनिक विशेषताओं की सही संख्या की गणना सरल नहीं है क्योंकि यह अभी पूर्ण रूप से विकसित न होकर विकास की प्रक्रिया में है (भारत को स्वतंत्र हुए केवल 73 वर्ष हुए हैं) परन्तु कुछ विशेषताएं जो स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है :–

- केन्द्रीय प्रशासन की प्रान्तों के साथ कार्य क्षेत्र में हिस्सेदारी में अरूचि, विचारधारा एवं योजना निर्माण एवं क्रियान्वन में अंसतुलन एवं मूल्यांकन का अभाव।
- पदसोपन, पदस्थिति एवं वेतन की प्रधानता।
- विदेशी विशेषज्ञों में विश्वास।
- करनी की अपेक्षा कथनी में विश्वास।
- समर्पित नौकरशाही का अभाव।
- वृहद प्रशासन।
- प्रशासनिक सुधारों का दिखावा।
- प्रशासन के भ्रष्टाचार।

फैरल हैडी ने विकासशील देशों के प्रशासन की कुछ विशेषताएं बताई हैं, जो निसंदेह भारतीय प्रशासन में विद्यमान हैं जैसेः–

- विकासोन्मुख उद्देश्यों की प्रमुखता।
- सामाजिक विखण्डन, आर्थिक पिछड़ापन एवं राजनीतिक अस्थिरता।
- निर्वाचित प्रतिनिधियों के विचारों में भारी अन्तर (आधुनिक एवं परम्परागत के आधार पर)।
- अप्रशिक्षिता एवं अकुशल नौकरशाही।

- पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुमानों तथा कार्य निष्पादन में भारी अन्तराल।

पॉल एच॰एप्पलबी ने भारतीय प्रशासन में एकता एवं विघटन के तत्वों पर प्रकाश डाला है। जैसे संवैधानिक लचीलापन, केन्द्र एंव राज्यों से सम्बन्धित विवादों में केन्द्र की प्रमुखता, राज्य विधान पालिका कानून का केन्द्रीय कानून से विवाद की स्थिति में केन्द्र की निषेधाधिकार, आपातकाल में केन्द्र की प्रधानता आयकर व कष्टम ड्यूटी मे केन्द्र की प्रधानता, ग्रान्ट एवं ऋण पर केन्द्र की प्रधानता, केन्द्र व राज्यों की सांझी लोकसेवा, केन्द्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति, प्रधानमंत्री में निहित राष्ट्रीय नेतृत्व।

इसके अतिरिक्त भी अनेक विद्धानों भारतीय विशेषताओं का अध्ययन किया है जैसे के॰ अरोरा, सुरेन्द्र कटारिया, हरिश्चन्द्र शर्मा, पी॰डी॰ शर्मा आदि। जिसके अनुसार भारतीय प्रशासन की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं:–

भूतकाल की विरासत (Legacy of Past)

भारतीय प्रशासन का आधुनिक रूप चाहे मुख्यतः ब्रिटिश उपनिवेशीय शासन की देन है परन्तु वास्तव में यह एक लम्बे ऐतिहासिक विकास का परिणाम है। चूंकि भारत में सत्ता का हस्तान्तरण ब्रिटिश हाथों से भारत एवं पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों को दिया गया था अतः स्वाभाविक रूप से पूर्ववर्ती विशेषताएं आज भी दृष्टव्य हैं। जिस प्रकार मुगलकालीन फारसी भाषा का आज भी राजस्व तथा न्याय प्रशासन में प्रभाव दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार अंग्रेजों द्वारा विकसित कानून, नियम, प्रक्रियाएं भारतीय लोक प्रशासन में परिलक्षित होती है। अखिल भारतीय एवं अन्य लोक सेवाएं, सचिवालयी व्यवस्थाएं, नौकरशाही की कठोर कार्यप्रणाली, संघीय व्यवस्था एवं राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक अनामता तथा गोपनीयता, कमेटी प्रणाली, जिला प्रशासन, राजस्व प्रशासन, पुलिस प्रशासन, वित्तीय प्रशासन तथा स्थानीय प्रशासन इत्यादि ब्रिटिश शासन के मुख्य प्रभाव हैं जो आज भी भारतीय प्रशासन में दिखाई देते हैं।

प्रशासन में संघात्मक एवं एकात्मक तत्वों का मिश्रण (Blend of Federal and Unitay Elements)

भारत के संविधान के अनुच्छेद–1 के अनुसार "भारत राज्यों का एक संघ हैं"। अतः संघीय स्तर पर केन्द्र (भारत) सरकार तथा राज्यों में प्रान्तीय सरकारें कार्य करती हैं। संविधान की सातवीं अनुसूची (अनुच्छेद–246) में शासन के कार्यों को संघीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती सूचियों में विभक्त किया गया है। अतः आंवटित कार्यों के अनुसार लोक प्रशासन का संगठन तथा कार्यकरण निर्धारित किया हुआ है। रेलवे डाक–तार, दूरसंचार तथा विदेश नीति इत्यादि केन्द्र सरकार के कार्यक्षेत्र में हैं जबकि पुलिस, सिंचाई, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन इत्यादि राज्य सरकारों के अधीन है। यही कारण है कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में राज्य प्रशासन पूर्णतया एक समान नहीं हैं। राज्यों में अपनी लोक सेवाएं तथा प्रशासनिक संस्थाएं कार्यरत है। जो राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित अधिनियमों के अनुसार कार्य करती है।

परन्तु संघात्मक विशेषताओं के साथ केन्द्रीयकरण भी विद्यमान है। जैसे राज्यपालों की राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति, पदमुक्ति, केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों का दिशा–निर्देश, अनुच्छेद 352, 356, 360 के आदि में राष्ट्रपति भी संकटकालीन शक्तियां, केन्द्र द्वारा राज्यों के विवादों का निपटारा, अखिल भारतीय सेवाओं पर केन्द्र का नियंत्रण, राष्ट्रपति द्वारा विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां आदि, भारत में केन्द्र चूंकि बहुत शक्तिशाली है, इसलिए अधिकांश महत्वपूर्ण निर्णय दिल्ली में किये जाते हैं। निचले स्तर पर बैठे अधिकारी भी फैसले स्वयं न करके मामला उच्चस्तरीय अधिकारियों के पास भेज देते हैं। यहां से ये मामले और उँचे अधिकारियों और अन्त में केन्द्र तक पहुंच जाते है। इस प्रक्रिया में इतना समय लग जाता है कि कभी–कभी तो निर्णय तब लिए जाते हैं जब बाढ़ का पानी सूख जाए या फसल चौपट हो जाए या जिसे राहत दी जानी है वह स्वर्ग सिधार जाए।

उदार एवं धर्म निरपेक्ष–प्रशासन (Liberal and Secular Administration)

भारतीय प्रशासन धर्म–निरपेक्ष तथा उदारता के सिद्धान्तों पर आधारित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि धर्म–निरपेक्षता के सिद्धान्तों को भारतीय संविधान द्वारा स्वीकार किया गया है जिससे अभिप्राय यह है कि भारतीय सरकार का अपना कोई भी धर्म नहीं है, और न ही शासन का संचालन करतेसमय धर्म, जाति आदि के आधार पर किसी प्रकार का मतभेद ही किया जा सकता है। प्रशासन की दृष्टि में सभी धर्म समान है और सभी धर्मों की रक्षा करने की जिम्मेदारी प्रशासन पर है। प्रशासकीय दृष्टि से देश के सभी धर्म समान है और शासन का संचालन करते समय, सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति करते समय या समाज कल्याण सम्बन्धी योजनाओं को लागू करते समय किसी धर्म के लोगों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। यद्यपि संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को सरकारी सेवाओं तथा विधानमण्डलों में विशेष प्रतिनिधित्व तथा दूसरी सुविधाएं दिए जाने की व्यवस्था की गई है तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि यह धर्म–निरपेक्षता के सिद्धान्तों के विपरीत है। ये सुविधाएं केवल अल्पकाल के लिए दी गई हैं तथा इनका उद्देश्य उन लोगों को दूसरों वर्गों के लोगों के समान करना हैं।

लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी प्रशासन (Democratic and Welfare Administration)

आधुनिक विश्व में लोकतंत्र तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणाएं सर्वत्र न्यूनाधिक मात्रा में व्याप्त हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जनता जनार्दन के हाथों में सत्ताधीशों का चयन तथा नियंत्रण की प्रणाली विकसित की गई है। भारत में संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा को अपनाया गया है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि न केवल विधायिका मे कानून निर्मित करते है, बल्कि कार्यपालिका में मंत्री के रूप में लोक प्रशासन का नेतृत्व भी करते हैं। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीयकरण को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए नगरों में नगरपालिकाएं इत्यादि तथा गांवों में पंचायती राज संस्थाओं का प्रवर्तन है। प्रजातांत्रिक समाजवाद के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शांतिपूर्ण न्यायपूर्ण तथा राज्यप्रभावी कदमों को प्रश्रय प्रदान किया गया है। वर्तमान प्रशासन को यह दायित्व दिया गया है कि वह देश में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार तथा संरक्षण में अपना योगदान प्रदान करें। आज के युग में राज्य को एक बुराई के रूप में नहीं बल्कि अनिवार्यता के रूप में देखा जाता है। यही कारण है कि आम व्यक्ति की समस्त मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रशासनिक संगठन कार्यरत है कहा जाता है कि आज का लोक प्रशासन जन्म से पूर्व (गर्भवती माता का टीकाकरण) से लकर मृत्यु के उपरांत (बीमा सम्पत्ति निपटारा) तक व्यक्ति के सर्वागींण विकास एवं कल्याण हेतु कार्य करता है। भारतीय लोक प्रशासन भोजन, वस्त्र तथा आवास जैसी मूलभूत (न्यूनतम) आवश्यकताओं सहित शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, परिवहन, संचार, पेयजल, रोजगार तथा न्याय इत्यादि सेवाओं की व्यवस्था एवं संचालन करता है। राज्य के कल्याणकारी दायित्वों में हो रही आशातीत वृद्धि के कारण ही प्रशासनिक संगठनों एवं कार्यों का विस्तार हुआ है। संवैधानिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पिछड़े वर्गों को लोक सेवाओं में आरक्षण प्रदान किया गया है।

पद सोपानीय प्रशासन (Hierarchial Administration)

भारतीय प्रशासन पदसोपन के सिद्धान्त पर संगठित है। जैसे– संघीय, राज्य, जिला तथा स्थानीय प्रशासन–जिनका आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। स्थानीय प्रशासन पर जिला प्रशासन पर राज्य सरकार तथा राज्य सरकार पर संघीय सरकार का नियंत्रण होता है। इसके साथ सभी स्तरों पर विभागीय प्रशासन भी पदसोपान के नियमों के अनुसार चलाया जाता है। प्रत्येक विभाग, को डिवीजनों में और प्रत्येक डिवीजन को शाखाओं में, तथा प्रत्येक शाखा को सैक्शनों में एवं प्रत्येक सैक्शन को उप–सैक्शनों में विभाजित किया गया हैं। उच्च पद के अधिकारियों के कर्मचारियों को पृथक–पृथक पद प्रदान किये गए हैं। उच्च पद के अधिकारियों को नियमानुकूल आज्ञाएं एवं आदेश प्रदान करने की सत्ता प्राप्त है और निम्न श्रेणियों के कर्मचारी अथवा अधीनस्थ कर्मचारी उच्च पद पर आसीन पदाधिकारियों की आज्ञाओं का पालन करते हैं। देश का समस्त प्रशासन ऊपर से नीचे की ओर चलता है और इसी प्रकार शक्ति का वितरण भी किया गया है।

सिद्धान्त एवं व्यवहार में अन्तर (Gap between Theory and Practice)

भारतीय प्रशासन सैद्धान्तिक एवं व्यवहारात्मक रूप में अन्तर पाया जाता है। संविधान अनुसार राष्ट्रपति देश का मुख्य कार्यपालक है, देश का शासन उसके नाम पर चलाया जाता है। वह उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त करता है, राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता है तथा इसे लागू करता है, परन्तु व्यवहार में संसदीय प्रणाली को अपनाएं जाने के कारण राष्ट्रपति की स्थिति भिन्न हैं। वह केवल एक संवैधानिक मुखिया है तथा अपनी शक्ति का प्रयोग स्वयं नहीं करता। संविधान की धारा 74(1) के अनुसार उसकी सहायता तथा परामर्श के लिए मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की गई है जो देश की वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करती है। मंत्रिपरिषद द्वारा दिए गए परामर्श को राष्ट्रपति अस्वीकार नहीं कर सकता। सभी उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति मंत्रिमण्डल द्वारा की जाती है तथा राष्ट्रपति की केवल औपचारिक अनुमति ही ली जाती है। मंत्रिपरिषद ही राष्ट्रीय नीति का निर्माण करती है संसद द्वारा स्वीकृत किये जाने के पश्चात् इसे कार्यान्वित करती है तथा संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। उत्तरदायी प्रशासनः– प्रशासकीय कुशलता उत्तरदायी प्रशासन बिना असंभव हैं।

भारत में प्रशासनिक कृत्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिए कार्मिकों को पर्याप्त प्राधिकार या शक्तियां प्रदान की गई किन्तु ये प्राधिकार अनन्य नहीं है बल्कि उत्तरदायी भी निश्चित किए गऐ हैं। लोक प्रशासन में निम्नतम स्तर पर कार्यरत कार्मिक से लेकर मंत्री महोदय तक सभी को संविधान, जनता, कानून तथा व्यवस्था के प्रति जवाबदेह बनाया गया है क्योंकि विधि का शासन व्यक्ति के बजाए कानून को सर्वोच्चता प्रदान करता है। लोक प्रशासन का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए संसदीय, कार्यपालिका तथा न्यायिक नियंत्रण की अनेक प्रणालियां प्रभावी हैं। स्वतंत्र न्यायपालिका के द्वारा प्रशासनिक उत्तरदायित्व नियंत्रण को अधिक प्रभावी बनाया गया है।

विशिष्टीकरण (Specialization)

हमारे प्रशासन की एक और नवीनता यह हे कि केन्द्र तथा राज्य स्तर पर प्रशासन का बहुत सा भाग विशिष्टीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है और दिन–प्रतिदिन इसी आधार पर मंत्रालयों अथवा विभागों का निर्माण किया जा रहा है और सरकारी सेवाओं में तकनीकी कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। जैसे केन्द्रीय सरकार में 1947 में जब केवल 17 मंत्रालय थे अब लगभग 58 मंत्रालय और विभाग हैं। इनके अतिरिक्त सरकार के संगठन के अन्तर्गत अनेकों विशिष्ट तकनीकी, औद्योगिक एवं व्यावसायिक संस्थाओं की स्थापना की गई हे जो स्टाफ इकाईयों की भान्ति सामान्य प्रशासन की इकाईयों की सहायता करती है।

राजनीतिक तटस्थता (Political Neutrality)

भारत में लोक प्रशासन राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ है। प्रशासन–तंत्र के सदस्य सरकार की नीतियों को बिना किसी दलीय आसक्ति या स्वयं के आग्रह के, पूर्ण निष्ठा से क्रियान्वित करते हैं तथा सरकार की नीतियों के पालन में उनकी निष्ठा पर सरकार के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन की यह राजनीतिक तटस्थता वस्तुतः भारत की संवैधानिक व्यवस्था द्वारा ही निर्धारित की गई है।

सैनिक एवं असैनिक सेवाओं के लिए पृथ प्रशासनिक व्यवस्थाएं (Separate System for Civil and Non Civil Services)

कार्य सकुशल शाासन संचालन के लिए भारत में सैनिक एवं असैनिक प्रशासन की अलग–अलग व्यवस्था की गई हैं। सैनिक प्रशासन का उद्देश्य युद्ध बाहरी आक्रमण तथा आंतरिक गड़बड़ी से है, इसमें जल, थल, वायुसेना के नीति निर्णयों और प्रशासनिक पहलू जैसे भर्ती पदोन्नति नियुक्ति स्थानांतरण, आचार संहिता तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही शामिल है जो असैनिक प्रशासन से भिन्न हैं जिसका मुख्य उद्देश्य जन–सेवा, कानून व व्यवस्था, दैनिक कार्य संचालन तथा सरकार की सहायता करना आदि है। इन सेवाओं की आचार संहिता एवं अनुशासनात्मक

कार्यवाही के साथ–साथ भर्ती पदोन्नति स्थानांतरण एवं सेवा निवृत्ति नियम भी अलग है।

प्रशासकीय एकरूपता (Administrative Similarity)

भारतीय प्रशासन में सभी स्तरों पर एकरूपता पाई जाती है। केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर संसदीय सरकार का निर्माण किया गया है। जिस प्रकार केन्द्रीय स्तर पर कार्यपालिका की शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं उसी प्रकार राज्य के स्तर पर राज्यपाल कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। राष्ट्रपति और राज्यपाल दोनों ही संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करते हैं और उनके परामर्श के लिए मंत्रिपरिषदों की व्यवस्था की गई है। संसद की भांति राज्य विधानमण्डल और सर्वोच्च न्यायलय की भांति उच्च न्यायलय की स्थापना की गई है। सभी राज्यों का प्रशासकीय ढांचा समान है और उनके उच्च पदों पर अखिल भारतीय सेवाओं के पदाधिकारी काम करते हैं। राज्य असैनिक सेवाओं की नियुक्ति के लिए प्रत्येक राज्य में केन्द्र की भांति लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई है। सभी राज्यों का जिलों में विभाजन किया गया है तथा समस्त देश में जिला स्तर पर लगभग एक जैसा प्रशासकीय संगठन हैं। जिले का मुख्य अधिकारी जिलाधीश होता है चाहें उसे भिन्न–भिन्न राज्यों में भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है। स्थानीय स्वशासन के स्तर पर नगरीय क्षेत्र में म्युनिसिपल प्रशासन तथा ग्रामीण क्षेत्र में पंचायती राज की स्थापना की गई है। सारे देश में समान कानूनी व्यवस्था की गई है जिसके अनुसार शासन संचालित होता है।

विधि पर आधारित प्रशासन (Law based Administration)

वर्तमान भारतीय लोक प्रशासन राजशाही, तानाशाही या चमत्कारिक सत्ताओं पर आधारित नहीं हैं बल्कि संविधान के प्रावधानों के अनुसार संचालित है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों की भावनाओं तथा इच्छाओं का पर्याय संविधान, प्रशासन तंत्र को वैध तार्किक सत्ता प्रदान करता है। संविधान के अनुसार भारत में 'विधि का शासन' है अर्थात् कानून से बढ़कर कोई नहीं है। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के अनुसार "कानून, राजाओं का राजा है।" अतः भारतीय लोक प्रशासन के प्रत्येक कृत्य या गतिविधि का मुख्य आधार वे कानून होते हैं जो जनकल्याण, विकास, सुरक्षा, समानता तथा न्याय के मूलभूत सिद्धान्तों एवं लक्ष्यों की पूर्ति हेतु बनाए जाते हैं। राज्य के समस्त कार्यों की पूर्ति का दायित्व आज के प्रशासन के कंधों पर है अतः भारत को प्रशासकीय राज्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

गतिशील एवं परिवर्तनशील प्रशासन (Dynamic and Changeable Administration)

भारत का प्रशासन प्रगतिशील, गतिशील एवं परिवर्तनशील गुणों से युक्त हैं। मौर्य काल और गुप्त काल में जो प्रशासन था उसमें मुगल शासकों ने समयानुकूल परिवर्तन किए। ब्रिटिश काल का प्रशासन मन, अनुशासन, दक्षता और शोषण की विशेषताओं से युक्त था। स्वतंत्रता के बाद संसदीय प्रजातंत्र की परम्पराओं के अनुरूप प्रशासन के संगठन और मूल्यों से व्यापक परिवर्तन आएं। अब लोक प्रशासन से जनता के स्वामी के बजाये जनसेवक की भूमिका की आशा की जाती है। संसद, न्यायपालिका, समाचार–पत्र और यहां तक कि राजनीतिक दलों के माध्यम से भारतीय प्रशासन जनता के सीधे नियंत्रण का विषय बन गया है।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चयन प्रणाली (Independent and Impartial Selection Process)

भारत में प्रशासनिक अधिकारियों के चयन का आधार केवल योग्यता को ही माना गया है तथा इस योग्यता के समुचित मूल्यांकन व परीक्षण हेतु निश्चित प्रणाली की व्यवस्था की जाती है। प्रशासनिक सेवा में भर्ती हेतु भारत में योग्यता व उपयुक्तता के अतिरिक्त अन्य कोई आधार विधित्व मान्य नहीं हैं, इसके अतिरिक्त प्रशासनिक सेवाओं में भर्ती हेतु सर्वसाधारण के लिए खुली चयन व्यवस्था को अपनाया गया है। फलतः प्रशासन पर विशिष्ट वर्गो का एकाधिकार समाप्त हो गया है और इसमें जन–साधारण का प्रतिनिधित्व बढ़ता जा रहा है। प्रशासन के प्रजातांत्रिक स्वरूप व चयन में योग्यता के निष्पक्ष आकलन की इन विशेषताओं को संविधान ने स्पष्टतः निर्धारित किया है। अब सरकारी सेवाओं में भर्ती के लिए लिंग, धर्म, जाति और नस्ल के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया है।

विकासोन्मुख प्रशासन (Development Oriented Administration)

जहां ब्रिटिशकालीन प्रशासन नियामकीय प्रकृति का था, वहीं आज का भारतीय प्रशासन विकासोन्मुख है। कल्याणकारी राज्य के दायित्वों तथा लक्ष्यों की पूर्ति हेतु अनेक प्रकार के विकास कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं। भारत में सामाजिक–आर्थिक विकास को द्रुत गति प्रदान करने के लिए आर्थिक नियोजन की प्रणाली अपनाई गई है जिसके अन्तगर्त संघीय स्तरपर कार्यरत योजना आयोग, पंचवर्षीय विकास योजनाएं निरूपित करता है जिन्हें राज्य स्तरीय प्रशासनिक संस्थाएं व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित करती है। प्रशासन द्वारा एकत्र करों का उपयोग मुख्यत विकास कार्यों मे ही होता है।

समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था (Integrated Administrative system)

भारतीय संघात्मक व्यवस्था में एकात्मक तत्त्वों के समावेश ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के समन्वित स्वरूप को निर्धारित किया है। संघीय सिद्धान्त के प्रतिकूल भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच सम्मिलित सेवाओं की व्यवस्था है जिसे "अखिल भारतीय सेवाएं" कहते हैं। संविधान में व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासन सेवा और भारतीय पुलिस सेवा राज्यों और संघ दोनों में समान रूप से कार्य करेगी। इन सेवाओं के सृजन का मुख्य उद्देश्य यही है कि अधिकतम अन्तर्राज्यीय सहयोग और समन्वय प्राप्त किया जाये तथा पदाधिकारियों द्वारा केन्द्रीय नीतियों को समुचित रूप से लागू किया जाये। समन्वित प्रशासनिक व्यवस्था का अस्तित्व नहीं स्वीकारा है अपितु यह कार्य राज्यों के प्रशासनिक तंत्र द्वारा किया जाता है।

आरक्षण व्यवस्था (Reservation System)

समाज के कमजोर व पिछड़े वर्ग प्रशासनिक सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व से वंचित न रहे, इस हेतु भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में नियुक्ति के लिए अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों व पिछड़े वर्गों हेतु आरक्षण का प्रावधान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की विशेषता है। मण्डल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद प्रशासन में पिछड़े वर्गों के लिए भी स्थान आरक्षित किये गये हैं। संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि राजकीय सेवाओं में व पदों पर नियुक्ति हेतु इन वर्गों के सदस्यों के दावों पर समुचित ध्यान दिया जाएगा। संविधान में यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इन वर्गों के दावों पर समुचित ध्यान देने तथा सेवाओं में इन वर्गों के सदस्यों को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के क्रम में यदि सरकार उनके लिए सेवाओं में आरक्षण का ऐसा कोई विशेष उपबन्ध करती है तो उसका यह कार्य नागरिकों को दी गई अवसर की समता की गारण्टी के प्रतिकूल नहीं समझा जाएगा।

प्रशासन की नई भूमिका (New Role of Administration)

स्वतंत्रता के बाद भारत ने विकास की विभिन्न मंजिलें तय की हैं। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। लोक–कल्याणकारी राज्य के अभ्युदय ने राज्य की भूमिका को विस्तृत बना दिया है। प्रशासन–तंत्र का भारी विस्तार हुआ है। इस बदलते परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक बन गया है कि भारतीय लोक–प्रशासन अपनी नई भूमिका का सृजन करें। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प शेष ही नहीं रह जाता है। प्रशासन का लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के अनुरूप आचरण करना अपरिहार्य बन गया है। फलतः लोक–प्रशासन का उचित प्रशिक्षण और उनमें मानवीय संवेदना का विकास करना अति आवश्यक है। विकास कार्यों के प्रति लोगों में साझेदारी की भावना पैदा करना भी लोक–प्रशासन का अहम दायित्व बना जाता है।

उपरोक्त विशेषताओं सहित भारतीय प्रशासन में कुछ नकारात्मक विशेषताएं भी विकसित होती जा रही है जैसे–

नौकरशाही का आधिपत्य (Control of Bureaucracy)

आधुनिक प्रशासनिक तथा कल्याणकारी राज्यों में कर्मचारी तंत्र का महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु कर्मचारी तंत्र में व्याप्त अहं, लालफीताशाही, कठोर नियमों के प्रति मोह, शक्ति लालसा, अकार्यकुशलता तथा संवेदनशून्यता इत्यादि

नौकरशाही लक्षण बाधक तत्व हैं। भारतीय लोक प्रशासन में भी भ्रष्टाचार, अकार्यकुशलता, अनुशासनहीनता सहित नौकरशाही के समस्त अवगुण विद्यमान है। यद्यपि भारत में लोक प्रशासन का बाह्य स्वरूप विकासोन्मुख तथा कल्याणकारी दिखाई पड़ता है तथापि आन्तरिक रूप से प्रशासन तंत्र की कार्यशैली आज भी ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है जिसमें आम आदमी की मानवीय संवेदनाओं से कहीं अधिक नियमों को वरीयता दी जाती है।

विस्तृत एवं जटिल प्रशासन (Wide and Rigid Administration)

भारत में लोक प्रशासन कार्यक्षेत्र एक प्रकार से विस्तृत एवं उलझा हुआ है क्योंकि अंग्रेजी शासन काल से अद्यतन अनेकानेक प्रशासनिक संस्थाएं भारत में गठित होती रही है। संघीय स्तर पर कार्यरत विशाल केन्द्रीय सचिवालय तथा राज्यों में राज्य शासन सचिवालयों सहित इनके कार्यकारी संगठनों का सम्पूर्ण देश में जाल बिछा हुआ है। अनेक प्रकार के बोर्ड, आयोग, संगठन, न्यायधिकरण, संस्थान, परिषद प्राधिकरण, अभिकरण, निगम तथा सरकारी कंपनियां विभिन्न कार्यों के निष्पादान हेतु कार्यरत है। भारत में विश्व के सभी प्रमुख देशों में प्रचलित प्रशासनिक संगठन किसी न किसी रूप में विद्यमान है। समस्या यह है कि यहां आयोग, समिति तथा कार्यदलों की रिपोर्ट के आधार पर नित्य नए संगठन स्थापित करना एक परम्परा बन चुकी है। परिणामस्वरूप परम्परागत नौकरशाही की कार्यशैली में किंचित भी परिवर्तन नहीं आया है बल्कि इसका आकार तथा वित्तीय भार अवश्य बढ़ता जा रहा है।

नियामकीय और विकास कार्यों का मिश्रण (Blend of Regulatory and Developmental Functions)

भारतीय प्रशासन में नियामकीय एवं विकास कार्यों को मिश्रित कर दिया गया है। दोनों प्रकार के कार्य स्तरों पर समान अधिकारियों द्वारा किये जाते हैं। यद्यपि विकास कार्य अलग अधिकारियों द्वारा किया जाता है, किन्तु ये अधिकारी नियामकीय अधिकारियों की देख–रेख में कार्य करते हैं जो सरकार के प्रति दोनों प्रकार के कार्यों के लिए जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, कलक्टर एक ओर तो कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राजस्व आदि के कार्य करता है और दूसरी ओर वह पंचायती राज का निरीक्षक एवं पथ–प्रदर्शक, विकास कार्यों का समन्वयकर्ता एवं सामुदायिक योजना का अभिकर्ता भी है। इसी प्रकार उपखण्ड, तहसील और ग्रामी स्तर पर ये दोनों विरोधी प्रकृति के कार्य एक ही प्रकार के अधिकारियों को सौंपे गए हैं।

प्रशासनिक निर्णयों में राजनीतिक हस्तक्षेप (Political Interference in Administrative Decisions)

इसके कारण प्रशासकों में एक प्रकार की असुरक्षा और निराशा की भावना पाई जाती है। दिसम्बर 1994 में पटना में एक अभूतपूर्व घटना हुई। शहर में निषेधाज्ञा लागू होने के बावजूद पटना में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों ने एक प्रभावी मौन जुलूस निकाला। बाद में आई॰ए॰एस॰ अधिकारियों के एक प्रवक्ता ने राजनीतिक के अपराधीकरण पर गहरी चिन्ता प्रकट की। पिछले कुछ वर्षों से राजनीति पर अपराधी तत्व हावी होते जा रहे हैं। वे प्रशासन पर नाजायज दबाव डालते हैं, अधिकारियों को धमकाते हैं और मारपीट कर डालते हैं। बिहार में एक जनता दल सांसद ने सचिवालय के एक वरिष्ठ अधिकारी के साथ मारपीट की थी और गाली–गलौज तो आए दिन होती रहती है।

सीमित नागरिक सहभागिता (Limited Citizen Participation)

विकास कार्यों में आम नागरिक की साझेदारी बहुत सीमित है जिसके कारण अभीष्ट या वांछित लक्ष्यों की सिद्धि नहीं हो सकी है। नौकरशाही आम जनता का न विश्वास अर्जित कर पायी है और न ही विकास कार्यक्रम में जनता की भूमिका स्पष्ट की जा सकी है। नौकरशाही अभी तक 'बन्द प्रणाली' है, जो नेता को साथ लेकर चलने में विश्वास नहीं रखता।

1.6 भारतीय प्रशासन की सामाजिक–आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में भूमिका (Role of Administration in Socio-Economic and Political Development)

किसी भी राष्ट्र का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं प्रावैधिक विकास जिन महत्वपूर्ण साधनों पर निर्भर करता है उनमें लोक सेवाओं का स्थान सर्वोपरि है। ऐसा देखा गया है कि एशिया तथा अफ्रीका के देश जो कई सदियों की दासता के पश्चात् स्वतंत्र हुए हैं एवं वे देश जो दूसरों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से आगे बढ़ सके है उन सभी का विकास एक कुशल, उत्तरदायी तथा ईमानदार लोक सेवा के फलस्वरूप ही संभव बन सका है। विश्व में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि नव–निर्मित राज्यों में कई राज्य दूसरों की अपेक्षा कम विकसित थे। इन कम विकसित राज्यों में भारत भी एक था। सीमित प्राकृतिक साधन तथा निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता हुआ यह राज्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। एक कुशल एवं निरन्तर पिछड़ेपन की अवस्था को छोड़ यह राज्य आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों के कई आयामों में पूर्व से अधिक उन्नत है। यह प्रगति की यात्रा पूर्णतया संतोषप्रद तो नहीं मानी जा सकती तथापि एक ऐसा आधार अवश्य निर्मित हो चुका है जहां पर विकास के एक विशाल भवन का निर्माण करना पहले से अधिक सहज है।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में उदारीकरण एवं निजीकरण के पक्ष में काफी आवाज उठायी जा रही है तथापि विकास प्रक्रिया में राज्य एवं सरकार की भूमिका किसी प्रकार से संकुचित नहीं होती। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो॰ अमृत्य सेन के सिद्धान्तों के अनुरूप भारत में एक ऐसी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें निजीकरण एवं उदारीकरण के साथ–साथ एक उत्तरदायित्वपूर्ण एवं प्रतिबद्ध सरकार अपनी भूमिका दक्षता से निभा सके। आवश्यकता इन दोनों उन्मुखीकरणों के संश्लेषण की है लोक प्रशासन के माध्यम से न कि इनमें से किसी एक को चुनने की।

प्रशासन का महत्त्व (Significance of Administration)

प्रशासन किसी भी देश के समाज तथा उसकी राजनीति का एक अविभाज्य अंग होता है। समाज का स्वरूप तथा राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति प्रशासन के दर्शन में परिलक्षित होती है और इसका सजीव प्रमाण उस देश की लोक सेवाओं में आने वाला अधिकारी वर्ग होता है। ब्यूरोक्रेसी अथवा प्रशासन तन्त्र जिसे जन–साधारण प्रशासन का पर्यायवाची समझता है, किसी भी प्रशासन की रीति–नीतियों एवं पद्धतियों के चयन में निर्णायक भूमिका का निर्वाह करता है।

लोक सेवाएँ देश के सामाजिक जीवन को व्यवस्था और सुरक्षा प्रदान करती हैं। देश के विकास तथा शान्ति–व्यवस्था की दृष्टि से राजनीतिक स्तर पर जो निर्णय लिये जाते हैं, उनको कार्य रूप देकर लोक सेवाएँ देश की शान्ति–व्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। सरकार द्वारा व्यवस्थापिका के मंच पर तथा उसके बाहर जनता को अनेक प्रकार के आश्वासन दिए जाते हैं। इन आश्वासनों को पूरा करने के लिए लोक सेवाओं द्वारा योजनाबद्ध रूप से प्रयास किए जाते हैं। लोक सेवाएँ नीति–रचना में सहयोगी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वह अपने व्यापक प्रशासकीय ज्ञान तथा दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर प्रशासन के तकनीकी पक्ष तथा अन्य बारीकियों को मन्त्रियों के सामने प्रस्तुत करती हैं। आज लोक सेवाओं का महत्त्वपूर्ण कार्य राजनीतिक निर्णय को कार्यान्वित करना नहीं वरन् राजनीतिज्ञों को यह परामर्श देना है कि उनको क्या निर्णय लेना चाहिए। फिशर के कथनानुसार, प्रशासनिक अधिकारियों का परम्परागत कर्त्तव्य यह है कि जब निर्णय लिए जा रहे हों तो वे अपने राजनीतिक अध्यक्षों को बिना किसी भय तथा पक्षपात के अपना सारा अनुभव तथा जानकारी बता दें, चाहे उनका परामर्शमन्त्री के प्रारम्भिक दृष्टिकोण के अनुकूल हो अथवा न हो।

लोक सेवाएँ जन–सेवा के लिए समर्पित होती हैं। बी॰ सुब्रह्माण्यम ने लिखा है, "महाभारत के व्यास जैसे सन्त, वुडरो विल्सन जैसे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा चाणक्य जैसे राजनीतिशास्त्री या पाल एपलबी जैसे प्रशासनिक

सुधारकों ने नागरिक कल्याण के लिए समर्पित लोक सेवा पर जोर दिया है।" लोक सेवाएँ जनतान्त्रिक व्यवस्था के सफल संचालन में अनेक दृष्टियों से सहयोग करती हैं। संसदीय देशों में मन्त्रिगण अपने कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इस उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए प्रत्येक कदम पर लोक सेवकों का सहारा लेना पड़ता है। सांसदों के प्रश्नों का उत्तर लोक सेवकों द्वारा तैयार किया जाता है। मन्त्री महोदय अपने अनेक दोषों को लोक सेवकों पर डालकर अपना तात्कालिक बचाव कर लेते हैं। उदाहरण, के लिए भारत में छठे लोकसभा निर्वाचनों के समय (मार्च 1977) जब विरोधी दलों द्वारा कांग्रेस सरकार की परिवार नियोजन के लिए की गई ज्यादतियों का उल्लेख किया गया तो कांग्रेस ने अपने स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए नौकरशाही पर दोषारोपण किया था। नारमन जे॰ पावेल का कहना है कि उत्तरदायित्व की सांविधानिक व्यवस्था में नौकरशाही का कार्य निश्चय ही बढ़ जाता है।

लोक सेवाएँ सरकार की प्रतिनिधि प्रकृति को वास्तविक बनाती हैं वे जनहित की साधना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं तथा विकास कार्यों को बुद्धिपूर्वक संचालित करती हैं। लोक सेवाओं के बिना उत्तरदायी सरकार का कार्य–संचालन कठिन बन जाता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री चैम्बरलेन ने लोक सेवकों को संबोधित करते हुए इस कठिनाई को स्वीकार कर कहा था कि "मुझे विश्वास है कि आप लोग हम लोगों के बिना भी विभाग का प्रशासन कर सकते हैं, किन्तु मुझे आशंका है कि हम लोग आपके बिना विभागीय कार्य नहीं कर सकेंगे।" लोक सेवाएँ सरकारी नीति की रचना और कार्यान्विति के प्रायः सभी स्तरों पर कार्य करती हैं। राज्य के बढ़ते हुए कार्यों के साथ–साथ कार्मिक–वर्ग का योग एवं महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है। पहले जबकि सरकारें प्रबन्ध–नीति में विश्वास करती थीं और अपने कार्यों को केवल समाज में कानून–व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित रखती थीं, उस समय तो कर्मचारी वर्ग के कार्य भी इन थोड़े से उद्देश्यों की पूर्ति तक ही सीमित थे। परन्तु विज्ञान तथा शिल्पकला की प्रगति के वर्तमान युग में राज्य की क्रियाओं में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है। आजकल तो राज्य जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यन्त मानवीय कल्याण कार्यों में संलग्न रहता है। राज्य की क्रियाएँ अत्यंत विस्तृत तथा विविध प्रकार की हो गई हैं। प्रत्येक स्थान पर राज्य विद्यमान रहता है और कोई भी नागरिक राज्य के प्रभाव और उसकी शक्तियों से बच कर नहीं रह पाता। राज्य उन पर सिविल सेवकों के माध्यम से नागरिकों तक पहुँचता है जो कि प्रशिक्षण–प्राप्त, निपुण, स्थायी तथा व्यावसायिक रूप से कार्य करने वाले वैतनिक अधिकारी होते हैं। अपनी व्यापक शक्तियों तथा कार्यक्षेत्र के कारण लोक सेवक वास्तविक सत्ताधारी बन जाते हैं। रेमजेम्योर की मान्यता है कि नीति–रचना, निर्णय–प्रक्रिया एवं निर्णयों की कार्यान्विति में लोक सेवकों का इतना प्रभाव रहता है कि मंत्रिगण उनकी कठपुतली मात्र बनकर रह जाते हैं। लोक सेवाओं के प्रभावपूर्ण योगदान के संबंध में लॉस्की ने लिखा है कि "यह सरकार को संचालित करती है, आम चुनाव के परिणामों के जोखिम को संतुलित करती है तथा निष्पक्ष रूप से व्यावहारिक है, उससे जन–इच्छा को जोड़कर राजनीतिक यंत्र में तेल देने का कार्य करती हैं।"

आधुनिक समाज की जटिल एवं पेचीदा समस्याओं को ऐसे अधिकारियों की देखरेख में नहीं छोड़ा जा सकता जो कि अप्रशिक्षित, अवैतनिक, अशिक्षित तथा अनिच्छुक हों। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी की वह कार्मिक व्यवस्था, जिसमें कि अप्रशिक्षित तथा अवैतनिक वर्ग से सिविल कर्मचारी हुआ करते थे, वर्तमान समय के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है। आधुनिक समय में तो कुशल, प्रशिक्षण–प्राप्त तथा सुशिक्षित व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग की आवश्यकता है जो कि राज्य की सेवा कर सके तथा योजनाओं एवं कार्यक्रमों को लागू कर सके। कार्यों का विशिष्टीकरण तथा विभाजन वर्तमान वैज्ञानिक युग की विशेषता बन गया है। एक ही आदमी सभी कार्यों व उत्तरदाताओं को पूरा नहीं कर सकता। अतः प्रशासन के विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए तकनीकी योग्यता–प्राप्त कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। आजकल तो सिविल सेवकों के एक व्यावसायिक वर्ग के द्वारा शासन–कार्य चलाया जाता है। ये कुशल प्रशासक तथ्य एवं आंकड़े एकत्र करते हैं, अनुसंधान करते हैं और जनता की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए योजनाएँ बनाते हैं। यह कहना ठीक है कि "लोक प्रशासन में कार्मिक

वर्ग को ही सर्वोच्च तत्व माना जाता है।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर लोक सेवाओं का महत्त्व निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है–

- लोक सेवाएं सामाजिक जीवन को व्यवस्थित तथा सुरक्षित रखती हैं।
- मंत्रियों द्वारा जनता को दिये गये आश्वासनों को लोक सेवाओं द्वारा मूर्त रूप दिया जाता है अथवा उन्हें व्यवहार में क्रियान्वित किया जाता है।
- लोक सेवाएँ नीति–निर्माण में भी भूमिका का निर्वाह करती है।
- लोक सेवाओं को 'सभ्यता के संरक्षक' के रूप में स्वीकार किया जाता है। वे भावी पीढ़ियों के लिए सभ्यता को सुरक्षित रखने में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह करती हैं।
- लोक सेवाएं जन–सेवा को समर्पित होती हैं। उनका प्रथम और सर्वोपरि लक्ष्य जन–हित की भावना को साकार करना होता है।
- प्रजातन्त्र की सफलता में लोक सेवाओं का अपूर्व महत्त्व है।

सामाजिक–आर्थिक विकास पर प्रशासन का प्रभाव (Impact of Administration on Socio-Economic Development)

विकासशील देशों में लोक सेवाओं या सेवीवर्ग प्रशासन को अनेक परिवेशात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसे आर्थिक विकास, समाजिक सुधार, राजनीतिक स्थिरता, शिक्षा का प्रसार, समाज सुरक्षा आदि कार्यों की दिशा में उल्लेखनीय दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। देश का नियोजित आर्थिक विकास भी अनेक नए दायित्व सौंपता है। विकासशील देशों का एक दुखद तथ्य यह है कि यहां वांछनीय परिवर्तन लाने वाला मुख्य यन्त्र सरकार होती है तथा गैर–सरकारी संस्थाएं सरकार के नियंत्रण और निर्देशन के अधीन ही कुछ कार्य कर पाती है। अतः नौकरशाही का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव क्षेत्र बढ़ जाता है। अपने परिवर्तित दायित्वों का निर्वाह करने के लिए नौकरशाही के संगठन तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना वांछनीय है। इस सम्बन्ध में कोठारी एवं राय का कहना सही है कि "यदि एक प्रमुख सामाजिक परिवर्तनकर्ता के रूप में सरकारी नौकरशाही को सफल होना है तो इसे कुछ परम्परागत दृष्टिकोण एवं काम के तरीकों को छोड़ना होगां जिस जनता पर इसे शासन करने की आदत थी उसके प्रति दृष्टिकोण बदलकर सहभागिता निर्मित करनी होगी।" विकासवादी नीतियों के कारण सेवीवर्ग प्रशासन की रूप–रचना पर मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं–

- जन–आकांक्षाओं के प्रति सजग दृष्टिकोण–विकासशील देशों की नौकरशाही काफी संवेदशील होती है। यह सदैव सजग तथा सतर्क प्रतीशा और शंका की दृष्टि से नौकरशाही कार्यों का मूल्यांकन करते हुए यह जानने का प्रयत्न करती है कि नौकरशाही उनकी समस्याओं के समाधान तथा विकास की दृष्टि से क्या कर रही है? साधनहीन, क्षमताहीन जन–साधारण अपनी समस्त समस्याओं का समाधान स्वयं नहीं कर पाता है। अतः नौकरशाही से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी नीति एवं कार्यक्रम तय करते समय जन–आकांक्षाओं का समुचित ध्यान रखे।
- जनसाधारण के साथ घनिष्ठ सहयोग– पं॰ जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि "प्रशासनिक अधिकारी, चाहे किसी भी स्तर का हो, करोड़ो–करोड़ों जनों से सम्बन्ध रखता है। इन लोगों की समस्याएं कार्यालय में बैठे–बैठे आदेश प्रसारित करने मात्र से दूर नहीं हो जाती वरन् इनके समाधान के लिए, उनके करोड़ों हाथों का सहयोग आवश्यक है।" ऐसी स्थिति में आम जनता को कार्य करने के लिए प्ररित करने की आवश्यकता हैं नौकरशाही को जनता के शासन की भांति नहीं वरन् सेवक तथा सहयोगी की भांति व्यवहार करना चाहिए।

- उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण – विकासशील देशों की नौकरशाही व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी रहकर कार्य करती है। यहां की कार्यपालिका राजनीतिक अस्थिरता की समस्या से ग्रस्त रहकर जन–आकांक्षाओं की पूर्ति का प्रयास करती है। विकास–कार्यों के क्षेत्र में की गई उपलब्धियां उनके जन–समर्थन तथा राजनीतिक स्थिरता का आधार बनती है। अतः यह आवश्यक है कि नौकरशाही निरन्तर मंत्रियों के निर्देशन तथा नियंत्रण में रहकर कार्य करें और विकास कार्यों में सफलता का सेहरा स्वयं के सिर बांधने की अपेक्षा सारा श्रेय मंत्रियों को ही लेने दे।

सामजिक आर्थिक विकास में प्रशासन की भूमिका (Role of Administration in Socio-Economic Development)

प्रशासन लोक सेवा को 'सरकार की चतुर्थ शाखा' कहा जाता है। यह निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करती है–

- सामाजिक परिवर्तन को क्रियान्वित करना – प्रजातन्त्रात्मक सरकार का सच्चा मापदण्ड बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं को पहचानना और उनके अनुसार कार्य करना है। वर्तमान समय में सरकार के कार्य पर्याप्त विस्तृत हो गए हैं क्योंकि जनता की मांग है कि सामान्य कल्याण को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक प्रत्येक कार्य सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। आज समाज के प्रत्येक वर्ग के विभिन्न कार्य सरकार ने अपने ऊपर ले लिए है। उद्योगों में कार्य करने वाले मजदूर अपनी सुरक्षा के लिए सरकार की ओर देखते हैं। स्वयं उद्योग भी बहुत कुछ सरकारी ठेकों पर भी निर्भर होते हैं। इस प्रक्रिया में सरकार विरोधी पक्षों के बीच मध्यस्थ से अधिक बन गई है। इसने सभी नागरिकों के लिए सुरक्षा और सद्जीवन प्राप्त करने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया है। यह परिवर्तन जनता की स्वीकृत से हुआ है किन्तु परिवर्तन स्वयं अपने आपको क्रियान्वित नहीं करता। राष्ट्रपति विल्सन का कहना था कि संविधान को क्रियान्वित करना उसे बनाने से अधिक कठिन है। संस्थाओं में नवीन प्रयोगों के लिए आवश्यक कुशलता और अनुभव लोक सेवा द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। फिफनर तथा प्रीस्थस के कथनानुसार, "इस अर्थ में नौकरशाही एक सामाजिक साधन है जो व्यवस्थापिका के अभिप्राय और उसकी पूर्ति के मध्य स्थित दूरी को भरती है।" जब एक बार व्यवस्थापिका निर्णय ले लेती है तो नौकरशाही उसे क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक कदम उठाती है। विभिन्न सरकारी विभागों की नीतियों एवं कार्यों पर विभिन्न हित–समूहों का प्रभाव पड़ता है। विभिन्न हित समूह और दबाव समूह, नौकरशाही के इस कार्य को प्रभावित करते हैं। जब नौकरशाही व्यवस्थित तकनीकों का विकास कर लेती है तो यह विशेष हितों के दावों का विरोध करने की शक्ति प्राप्त कर लेती है।

- सामाजिक आर्थिक नीति की सिफारिश करना – नौकरशाही का सामाजिक–आर्थिक नीति–निर्धारण में भी योगदान होता है। व्यवस्थापिका बहुत कुछ प्रशासनिक विशेषज्ञों पर आधारित रहती है क्योंकि सार्वजनिक नीति में प्रायः तकनीकी जटिलताएं आ जाती है जिनमें विशेष ज्ञान और सोच–विचार की आवश्यकता होती है। व्यवस्थापिका के अधिसंख्यक सदस्य अनुभवहीन और नौसिखिए होते हैं जिन्हें बहुत कुछ विशेषज्ञों के निर्णयों पर निर्भर रहना होता है। उदाहरण के लिए व्यवस्थापिका सेना सम्बन्धी निर्णय लेना चाहे तो इसके लिए इससे सम्बन्धित विशेषज्ञों से पूछताछ करनी होगी। मैक्स वेबर का कहना था कि आधुनिक राज्य पूर्ण रूप से नौकरशाही पर निर्भर है। नीति–निर्माण पर नौकरशाही का प्रभाव व्यवस्थापिका की प्रक्रिया के दो सोपानों में पड़ता है। प्रथम, नौकरशाही को प्रायः व्यवस्थापन की पहल करने तथा प्रस्तावित विषयों पर व्यवस्थापिका को सिफारिश करने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। द्वितीय, व्यवस्थापिका द्वारा पारित व्यवस्थापन को क्रियान्वित करने में नौकरशाही कुछ स्वायत्तता का व्यवहार करती है। नौकरशाही का परामर्श बहुत महत्व रखता है क्योंकि वह जानती है कि नीति को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाएगा। यदि नीति के लक्ष्य उपलब्ध न किये जा सके तो इसकी जानकारी भी नौकरशाही द्वारा ही प्रदान की जा सकती है। वह उपयुक्त विकल्प प्रस्तुत करने में भी समर्थ है।

- व्यवस्थापन करना – प्रशासनिक शाखा द्वारा पर्याप्त मात्रा में व्यवस्थापन की दिशा में भी पहल की जाती है। कहा जाता है कि अमेरिकी कांग्रेस में आधे से अधिक व्यवस्थापन कार्यपालिका विभागों और अभिकरणों में जन्म लेते हैं तथा राष्ट्रपति द्वारा बजट–ब्यूरो के माध्यम से समन्वित किये जाते हैं। लोक प्रशासन का एक प्रतिनिधित्वपूर्ण कार्य यह है कि इसकी नीति समूह के हितों को अभिव्यक्त करती है। अमेरिकी कांग्रेस द्वारा किया जाने वाला व्यवस्थापन प्रशासनिक अधिकारियों की सिफारिश पर आधारित होता है। उच्च स्तर के अधिकांश नौकरशाहों का समय व्यवस्थापन से सम्बन्धित कार्यों में व्यतीत होता है।, ताकि प्रशासनिक कार्यों को सरल बनाया जा सके। प्रशासनिक शाखा प्रस्तावित विषय के बारे में देश भर के सम्बन्धित समूहों से पूछताछ करती है। प्रशासक व्यवस्थापिका में स्थित अपने मित्रों में विचार–विमर्श करते हैं। अधिकांश अभिकरणों के व्यवस्थापिका में अपने हितैषी होते हैं जो बदले में अभिकरण से कुछ लाभ उठा लेते हैं। इस प्रकार का सम्पर्क व्यवस्थापिका में प्रशासनिक प्रस्तावों की स्वीकृति को सफल बना देता है।

- व्यवस्थापिका को प्रभावित करना– नौकरशाही का प्रभाव नीति पर उस समय पड़ता है जब व्यवस्थापिका पर विचार–विमर्श किया जा रहा हो। विशेषज्ञों की आवश्यकता नौकरशाही के योगदान को महत्वपूर्ण बना देती है। मुख्य विषयों पर व्यवस्थापिका की समितियां प्रशासनिक विभागों से लिखित व्यक्तव्य मंगा लेती है। प्रशासक कार्यपालिका की उन गोपनीय बैठकों में भाग लेते हैं जिनमें प्रमुख निर्णय लिए जाते हैं। विभागों एवं अभिकरणों द्वारा समितियों को आँकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं ताकि व्यवस्थापन के समर्थन में बोलते समय वे उनका प्रयोग कर सके। प्रशासक सम्मेलन–समितियों में प्रतिनिधित्व अथवा भाग लेते हैं ताकि उनके विभागों को प्रभावित करने वाले विषयों पर परामर्श दे सकें। अपने–अपने विभागों के सचिवों का परामर्श बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है। नौकरशाही प्रतिद्वन्द्वितापूर्ण वातावरण में कार्य करती है। शक्ति, सम्मान और अस्तित्व के लिए लगातार संघर्ष चलता रहता है। अधिक कार्यक्रमों का अर्थ है कि उनके लिए अधिक धन एकत्रित किया जाए और साथ ही कार्यक्रम में लाभान्वित होने वाले समूह का समर्थन भी प्राप्त किया जाए। प्रशासन को न केवल नीति–निर्माण में अधिक भाग लेना पड़ता है वरन् उसे नीति को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक राजनीतिक शक्ति का संगठन भी करना होता है। जिन सेवाओं को प्रमुख हित–समूहो का अनुशासित सहयोग नहीं मिलता वे संतोषजनक रूप से कार्य नहीं करते। सरकारी अभिकरण और जनता के बीच पारस्परिक लाभ के कारण ही सम्बन्ध स्थापित होता है। जनता को आवश्यक सेवाएं प्राप्त होती है जबकि नौकरशाही स्तर और शक्ति प्राप्त करती है।

- प्रतिद्वन्द्वी हितों के बीच समायोजन – नौकरशाही व्यवस्थापन कार्य में कुछ विवेक से काम लेती है और इस प्रकार उसकी शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। प्रशासक कभी–कभी सार्वजनिक हित को अपने कार्यों का आधार बनाकर अधिक विवेक का प्रयोग करने लगते हैं। इस सामान्य हित के पीछे विशेष हितों को गौण बना दिया जाता है।

समाजिक–आर्थिक व राजनैतिक प्रशासन का विकास – संक्षेप में हम उन महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का विवेचन कर रहे हैं जो कि लोक सेवकों की भूमिका से जुड़े रहते हैं।

- विधान निर्माण में सहायता– विधान सभा में पारित होने वाले सभी विधेयकों का मसौदा लोक सेवकों द्वारा ही तैयार किया जाता है। इनके लिए राज्य का विधि विभाग प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं, किन्तु भूमिका उन सभी विभागों के लोक सेवकों की होती है जिनके विषय से सम्बन्धित विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। लोक सेवक प्रत्योजित विधान की शक्तियों का उपयोग करते हैं तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम बनाने में मुख्य भूमिका निभाते है।

- केन्द्रीय सरकार को प्रशासनिक सहायता – सरकार का अपना एक सचिवालय होता है जिसको सहायता प्रदान करने के लिए एक सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य होता है। कई अन्य अधीनस्थ अधिकारी भी सरकार को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार

प्रधानमंत्री सचिवालय होता है जिसके बारे में सभी मंत्रियों को भी सहायता प्रदान करने हेतु सैंकड़ों कर्मचारी कार्यरत होते हैं। लोक सेवा के सदस्यों का उत्तरदायित्व है कि वे मंत्रियों को प्रशासनिक कार्य करने हेतु आवश्यक सहायता एवं परामर्श प्रदान करें, क्योंकि मंत्रिमण्डल एवं विभिन्न विषयों के मंत्रियों की नीति निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है और इस प्रक्रिया में आवश्यक सुझाव एवं राय देना लोक सेवकों का कर्तव्य हैं। इसी प्रकार संसद में मंत्रियों के कार्यों को सुलभ बनाने हेतु आवश्यक सूचनाओं व प्रमाण देने का उत्तरदायित्व भी लोक सेवकों का होता है।

- न्यायिक प्रशासन में सहायता – सर्वोच्च न्यायलय, उच्च न्यायलय, जिला एवं सत्र न्यायलय, अधीनस्थ न्यायलय एवं अन्य विशेष न्यायलयों के प्रशासन को सुलभ बनाने के लिए इन न्यायलयों में प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करने हेतु तथा न्यायलय के निर्णयों को लागू करने के लिए लोक सेवकों की भूमिका अह्म होती है। बिना प्रशासनिक एवं पुलिस तंत्र की सहायता के न्यायलय कार्य नहीं कर सकते हैं तथा इस सम्बन्ध में प्रदत्त प्रशासनिक सहायता न्यायिक व्यवस्था को सशक्त बनाने में उपयोगी होती है।

- नियोजन – नियोजन तंत्र की व्यवस्था संचालन में लोक सेवकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। योजनाओं का निर्माण तथा उनके निष्पादन में प्रबोधन (मोनिटरिंग) लोक सेवकों की कुशाग्रता पर ही निर्भर करती हैं।

- वित्तीय प्रशासन – बजट के निर्माण, संसद में उसको प्रस्तुत करने, बजट के अंतिमीकरण, उसके निष्पादन, शिक्षा एवं अनुसंधान आदि से सम्बन्धित कार्यों एवं राज्य की आय स्त्रोतों की अभिवृद्धि एवं वित्त पर नियंत्रण एवं नियमन की भूमिका लोक सेवकों के माध्यम से ही होती है।

- राज्य का समग्र विकास – शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, संचार, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ग्रामीण विकास आदि के वैकासिक क्षेत्रों में निरन्तर प्रगतिशील नीतियों का बनाना व उनको लागू करने में लोक सेवकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। सचिवालय स्तर पर स्थित विभिन्न विभाग, विकास प्रशासन से जुड़े विभिन्न निदेशालय, संभागीय स्तर पर कार्यरत विभागों के कार्यालय, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय कार्यालय जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जिलाधीश कार्यालय है आदि के माध्यम से वैकासिक कार्यक्रमों को निष्पादित किया जाता है। केन्द्रीय एवं जिला स्तरीय अधिकारी अपने अधीन उप–जिला स्तर एवं खण्ड एवं ग्राम स्तर पर होने वाले वैकासिक कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करते हैं तथा उस क्षेत्र में होने वाली प्रगति का निरन्तर प्रबोधन करते हैं।

- स्थानीय शासन संस्थाओं का संचालन एवं नियंत्रण – पंचायती राज संस्थाएं, नगरपालिकाएं, नगरपरिषद, नगर विकास न्याय व विकास प्राधिकरण जैसी संस्थाओं के माध्यम से भारत के गांवों व नगरों का व्यवस्थित विकास करने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के माध्यम से राजस्थान का नागरिक शासकीय तंत्र से जुड़ गया है तथा इसकी कुशलता पर ही जनता का विश्वास निर्भर करता है। स्थानीय शासन संस्थाओं में कुशलता का स्तर अभी अपेक्षा से काफी कम हैं। अतः 73 वें एवं 74 वें संविधान संशोधन को कुशलता से लागू करने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है।

- जनता के प्रति संवेदनशीलता एवं प्रशासन में जन–सहभागिता – एक संवेदनशील प्रशासन जनता की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को ध्यान मे रख कर अपनी गतिविधियाँ संचालित करता है। प्रशासनिक नीतियों व योजनाओं के निर्माण एवं उनको लागू करने में जनता की भावनाओं का ध्यान परमावश्यक है। जनता की शिकायतों को दूर करना तथा उनमें प्रशासन के प्रति आस्था उत्पन्न करना भी लोक सेवकों का ही उत्तरदायित्व है। जनता की प्रशासन में सहभागिता जितनी अधिक होगी, उतनी ही प्रशासन में गत्यात्मकता एवं यथार्थता आएगी। जनता की सहभागिता की क्षमता एवं उसकी इच्छा–शक्ति की अभिवृद्धि

के लिए जनता की सहभागिता के अधिकतम अवसर प्रदान किये जाने चाहिए तथा लोक सेवक जनता से विकास प्रक्रियाओं में ही नहीं नियमाकीय प्रशासन में भी सीधे व निरन्तर सम्बन्ध रखें तभी जनतंत्रात्क प्रशासन की भावनापूर्ण हो सकती है।

- सामाजिक न्याय सुलभ कराना– निर्धन, पिछड़े अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्यों, बेकार व भूमिहीन, विकलांग, निरीह महिलाएं तथा बालकों के विकास पर अधिक भलीभांति एवं एकाग्रता से ध्यान देने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है। यह समाज के विशेष वर्ग हैं तथा इनको प्राथमिकता प्रदान करना कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उत्तरदायित्व है।

- कानून व व्यवस्था का संचालन – राज्य में कानूनों का पालन ईमानदारी व कुशलता से हो, जन–जीवन सुरक्षित हो, जनता में सुरक्षा की भावना विकसित हो, अपराध पर नियंत्रण हो, कुशल विधि पालन हो एवं सामान्य व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित महसूस करे, यह सुनिश्चित करना राज्य सरकार तथा जिला एवं स्थानीय सरकार से जुड़े सभी लोक सेवकों का उत्तरदायित्व है। पुलिस प्रशासन की मुस्तैदी एवं ईमानदारी से एक ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है कि जिसमें अपराधी भयभीत तथा सहज सामान्य व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित अनुभव करें। इस हेतु वर्तमान प्रशासन–तंत्र में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न होना चाहिए जिसमें पुलिस प्रशासन शक्तिशाली वर्गों का नही, किन्तु निर्बलों का मित्र बन सके।

- विविध कार्य – चुनावों को कुशलता से सम्पन्न कराना, जनगणना प्रवीणता से संचालित करना, राज्य की नीतियों का आवश्यक प्रचार–प्रसार करना, केन्द्र–राज्य सम्बन्ध में व अन्य राज्यों के साथ राज्य के सम्बन्धों को विवेकपूर्ण ढंग से संचालित करना आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हें लोक सेवक कुशलता से सम्पादित करते हैं।

संक्षेप में ऐसे कोई भी जनजीवन से जुड़े कार्य नहीं जो कि लोक सेवकों के उत्तरदायित्वों की परिधि से परे हों। एक प्रशासनिक राज्य एवं कल्याणकारी राज्य की भूमिका निभाने वाले प्रदेश की सरकार में नियुक्त लोक सेवक उन सभी उत्तरदायित्वों का वहन करते हैं जो कि जन–कल्याण एवं जन–सुरक्षा से जुड़ें हो। आवश्यकता इस बात की है कि इन महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभाया जाये तथा प्रत्येक लोक सेवक की शैली एवं व्यवहार में "लोक" अर्थात् "जनता" की सेवा को तन्मयता से करने की भावना झलकती हो।

राजनीतिक विकास में प्रशासन की भूमिका (Role of Administration in Political Development)

परिवर्तन संसार का नियम है तथा यह विकास की अवधारणा से जुड़ा हुआ है। कुछ व्यक्ति परिवर्तन को ही विकास मानते हैं परंतु यह सत्य नहीं है। सकारात्मक परिवर्तन के साथ वृद्धि को ही विकास कहा जा सकता है। समाज का एक हिस्सा विकास को सिर्फ आर्थिक विकास के रूप में देखता है लेकिन मानव केवल आर्थिक मनुष्य नहीं है। वह समाज में रहने वाला एक प्राणी है तथा मानव की और भी अनेक आवश्यकताएँ हैं जैसे :– सम्मान, स्वास्थ्य, राजनीतिक गतिविधियाँ व दैनिक गतिविधियों की व्यवस्था इत्यादि। समय के अनुसार इन सभी आयामों में भी विकास होना आवश्यक है। किसी एक भी आयाम के अभाव में विकास को संपूर्ण विकास नहीं कहा जा सकता है। विकास को चिन्तकों ने अलग–अलग ढंग से प्रस्तुत किया है।

मैकेंजी का कथन है, "विकास समाज में उच्चस्तरीय अनुकूलन के प्रति अनुकूल होने की क्षमता है।"

एलफ्रड डायमेण्ट का मत है, "विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के नए प्रकार के लक्ष्यों का निरन्तर सफल रूप में प्राप्त करने की क्षमता बनी रहती है।"

ल्युसियन पाई के अनुसार, "राजनीतिक विकास, संस्कृत्ति का विसरण और जीवन के पुराने प्रतिमानों को नई

मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ मिलाने या उनके साथ सामंजस्य बैठाना है।"

एच॰ मिटलमैन के विचार में, "विकास का अर्थ समाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के तर्क–संगत प्रयोग की क्षमता को बढ़ाना है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है विकास बिना रूके सतत् चलने वाली एक प्रक्रिया है। सरंचनाओं के माध्यम से समाज के हर पहलू का विकास करना, समाज की मुख्य आवश्यकताओं को पूरा करना तथा समय के साथ उत्पन्न होने वाली नई समस्याओं का निपटान करना ही विकास कहलाता है।

जैसा कि पहले बताया गया है कि विकास के अनेक आयाम हैं जैसे :–

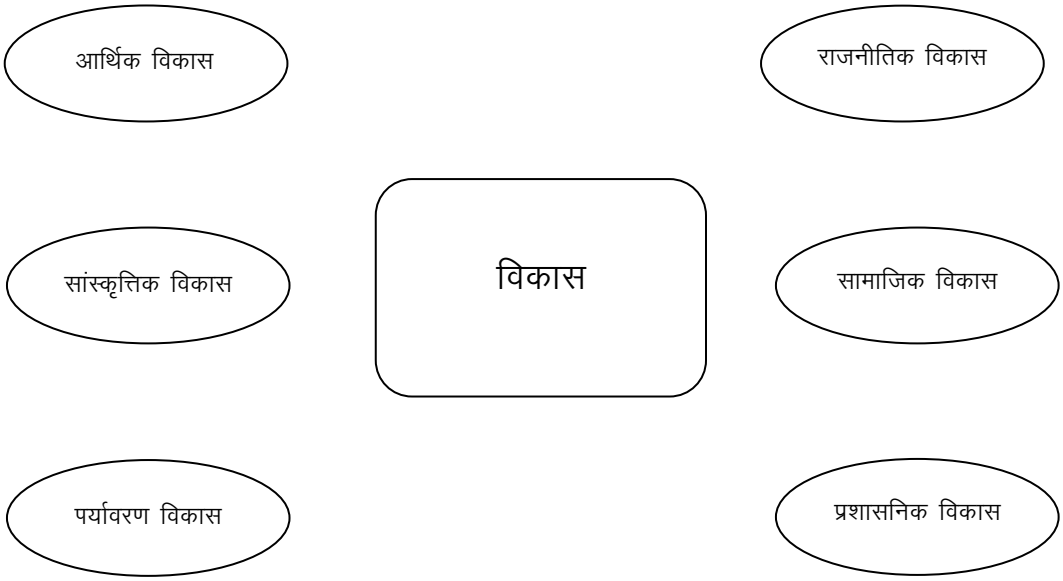

राजनीतिक विकास, विकास का एक अभिन्न अंग है। राजनीतिक विकास के अभाव में विकास आयामों में भी विकास संभव नहीं है। यदि किसी भी देश में राजनीति स्थिर नहीं है या अच्छे मूल्यों वाली नहीं है तो वहां पर विकास के अन्य आयाम दबे से रह जाते हैं। समाज, प्रशासन तथा उत्तरदायी सरकार सिर्फ राजनीतिक झमेलों में उलझे रह जाते हैं, इसलिए राजनीतिक विकास महत्वपूर्ण है। विश्व के देशों में अलग–अलग राजनीतिक प्रणालियाँ पाई जाती हैं तथा इसके विकास की गति भी अलग–अलग होती है। राजनीतिक विकास को समझने के लिए विचारकों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं :–

ल्युसियन पाई के मतानुसार, "राजनीतिक विकास, संस्कृति का विसरण है और जीवन के पुराने प्रतिमानों को नई मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ मिलाने या उनके साथ सामंजस्य बैठाना है।

आमण्ड और पावेल के विचारानुसार, "राजनीतिक विकास राजनीतिक संरचनाओं की अभिवृद्धि, विभिन्नकरण और विशेषीकरण तथा राजनीतिक संस्कृति का बढ़ा हुआ लौकिकीकरण है।"

एलफ्रड डायमेण्ट के अनुसार, "राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के नए प्रकार के लक्ष्यों का निरंतर सफल रूप में प्राप्त करने की क्षमता बनी रहती है।

राजनीतिक विकास के सूचक (Indicators of Political Development)

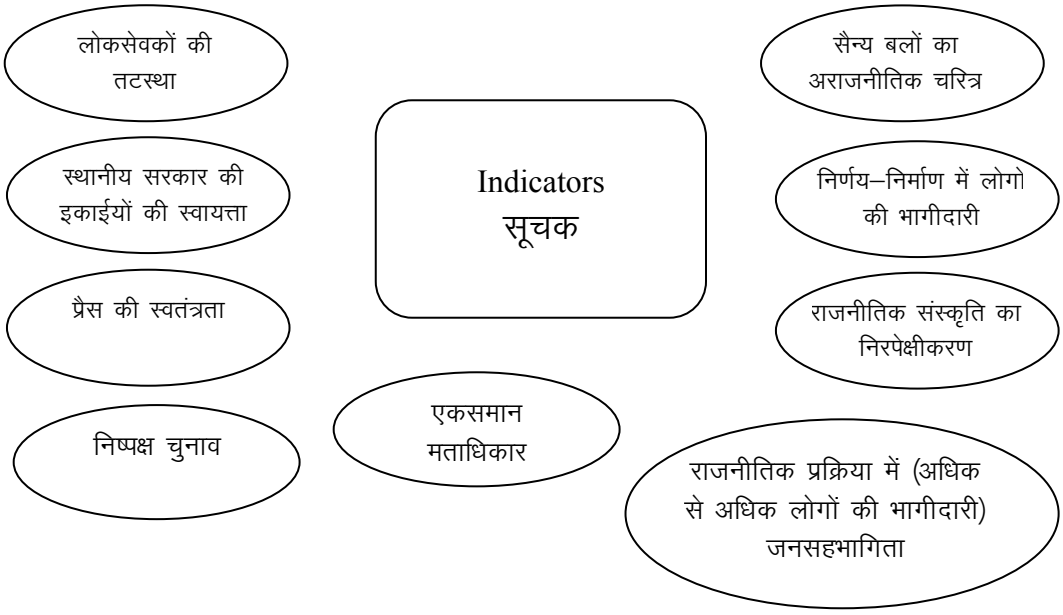

एकसमान मताधिकार – अगर आज से एक सदी पहले की बात करें तो पुरूष व महिलाओं के अधिकारों में बहुत अंतर था। महिलाओं को वोट तक डालने की आजादी नहीं थी। धीरे–धीरे राजनीतिक विकास हुआ और महिलाओं को भी वोट डालने का अधिकार मिला। किसी देश की राजनीति को तब ही विकसित कहा जा सकता है जब उस देश के पूरे समाज को मतदान करने का अधिकार हो। लिंग, जाति, धर्म, रंग व नस्ल के आधार पर भेदभाव नहीं होता हो।

निष्पक्ष चुनाव :– निष्पक्ष चुनाव भी राजनीतिक विकास का एक सूचक है। बहुत सारे देशों ने निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए स्वायत्त संस्थाएं बना रखी हैं जो निष्पक्ष चुनाव संपूर्ण कराती हैं। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् बहुत सारे देशों को आजादी मिली। इन देशों के सम्मुख विकास करना मुख्य समस्या थी। परंतु यह विकास तब संभव था जब उस देश की राजनीति स्थिर हो।

राजनीतिक प्रक्रिया में अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी :– किसी भी देश के राजनीतिक विकास को विकास मापने में उस देश के लोगों की राजनीति में भागीदारी निर्णायक साबित होती है। राजनीतिक प्रक्रियाओं में भागीदारी को मतदान प्रतिशत, देश में स्थापित राजनीतिक दलों, समाज के सभी वर्गों की भागीदारी द्वारा तथा राजनीतिक सम्मेलनों द्वारा सुनिश्चित किया जाता है।

राजनीतिक संस्कृति का निरपेक्षीकरण :– आमतौर पर यह देखा जाता है कि बड़े समुदाय के लोगों का राजनीति में वर्चस्व रहता है। छोटे समुदाय अर्थात् अल्प संख्यकों को राजनीतिक प्रक्रियाओं में कम अवसर मिलते हैं। जैसे श्रीलंका में सिंहली समुदाय का वर्चस्व मिलता है। परंतु विकसित राजनीति वही होती है जिसमें हर समुदाय का प्रतिनिधित्व हो। राजनीति धर्म व जाति के आधार पर बंटी हुई न हो।

निर्णय–निर्माण में आम जनता की भागीदारी :–देश में कानून व्यवस्था बनाए रखने व विकास करने के लिए कानूनों के निर्माण का उत्तरदायित्व विधायिका पर होता है। ये जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं तथा समाज की मांगों के आधार पर ही कानूनों का निर्माण करते हैं। कानून निर्माण से पहले भी जनता की राय ली जाती है ताकि विधि का निर्माण वास्तविक मांग पर हो सके। एक विकसित राजनीति वही है जो निर्णय–निर्माण में आम जनता की भागीदारी को सुनिश्चित अवश्य करें।

सैन्य बलों का अराजनीतिक चरित्र :– सैन्य बल तथा राजनीति एक सिक्के के दो पहलू हैं। सैन्य बलों को तटस्थ तथा अनाम रहकर कार्य करना होता है। राजनीतिक व्यक्तियों तथा दलों का भी यह दायित्व बनता है कि वे सैन्य बलों का राजनीतिकरण न करें। भारत में पिछले कुछ समय से यह समस्या उभर कर आ रही है। विपक्ष लगातार यह आरोप लगाता आया है कि सत्ताधारी दल सैनिकों का राजनीतिकरण कर रहा है। यह नैतिक कृत्य नहीं है।

प्रैस की स्वतंत्रता :– प्रैस अर्थात् मीडिया किसी भी देश का चौथा स्तंभ होता है। मीडिया एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा आम जनता तक सरकार की प्रत्येक गतिविधि की सूचना पंहुचाई जाती है। चुनाव के समय मीडिया महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकार के पूरे कार्यकाल के दौरान मीडिया सरकार की गतिविधियों पर निगरानी रखती है तथा उनका व्याख्यान करती है। यह एक दबाव समूह की तरह कार्य करती है। स्वतंत्र प्रैस राजनीतिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण यंत्र की तरह कार्य करती है।

स्थानीय सरकार की इकाईयों की स्वायत्ता :– राजनीतिक विकास का सूचक राजनीतिक विभाजन भी है। केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर राजनीति के अलग–अलग स्वरूप व शक्तियां देखी जा सकती हैं। एक सशक्त व स्वतंत्र स्थानीय सरकार ही विकास की गति को जोर पकड़ाती है। स्थानीय इकाइयों से ज्यादा जन सहभागीदारी, राजनीतिक प्रणालियों की समझ, नेत्तृत्व के गुण आदि को सुनिश्चित किया जाता है।

राजनीतिक विकास की विशेषताएँ :– जब राजनीतिक विकास होता है तब समाज में बहुत सारे परिवर्तन आते हैं तथा समानांतर रूप से दूसरे आयामों में भी स्वतः विकास होता है। राजनीतिक विकास से समाज में उत्पन्न होने वाली विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

- समानता :– समानता राजनीतिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। राजनीतिक विकास के परिणामस्वरूप चुनावी प्रक्रियाओं में सभी वर्गों के लोग भागीदारी करते हैं। सभी वर्गों के चुनाव लड़ने, मतदान करने तथा अपने विचारों को प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। जब चुनावों में सभी को एक समान अवसर मिलते हैं तो आम जनता की धारणा भी राजनीतिक व्यवस्थाओं के प्रति सामान्य रहती है।

- निरपेक्षता :– विश्व के लगभग सभी देशों में जटिल सामाजिक व्यवस्था है। अलग–अलग धर्मों के लोग उस समाज में रहते हैं। उच्च विकसित राजनीतिक व्यवस्था वाले देश ऐसी परिस्थितियों को सामान्य रखते हैं। वे सभी को एक समान अवसर देते हैं। सभी धर्मों का प्रतिनिधित्व वहां की राजनीति में रहता है। अगर अल्पसंख्यक समूह को प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है, तो समाज में टकराव की स्थिति बनी रहती है। राजनीतिक विकास की यह एक विशेषता कि यह इस प्रकार की स्थितियों को नियंत्रण में रखता है।

- कानून का शासन :– जिस देश की राजनीति स्थिर रहती है, उस देश का प्रशासन भी उन्नत होता है। विकसित राजनीति के नैतिक मूल्य उच्च होते हैं। उसमें सत्ता का विभाजन, स्वायत्त प्रशासनिक शाखाएं व सैन्य बलों का अराजनीतिकरण जैसे गुण देखने को मिलते हैं। किसी भी एक शाखा को ज्यादा शक्तिशाली नहीं बनाया जाता है। कानून के सम्मुख सभी को एक समान माना जाता है।

- जन–सहभागिता :– विकसित राजनीति वाले देशों में देखा गया है कि वहां की राजनीतिक प्रणालियों के ऊपर आम जनमानस का प्रभाव बहुत ज्यादा होता है। वहां की आम जनता वहां की प्रत्येक गतिविधि में भाग लेती है। यहां की राजनीति में आमतौर पर देखा गया है कि बहुदलीय प्रणाली, दबाव समूह, उच्च मतदान प्रतिशत व सम्मेलनों में भाग लेना पाया जाता है। ज्यादा से ज्यादा लोगों का राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेना लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को मजबूत करता है।

- उत्तरदायी प्रशासन :– उत्तरदायी प्रशासन का अर्थ है कि प्रशासन आम जनमानस की समस्याओं व शिकायतों के प्रति तत्पर रहता है तथा उन्हें हल करने के लिए प्रयासरत रहता है। एक विकसित राजनीति जनता के प्रति जवाबदेह होती है। वह प्रशासन पर निगरानी बनाए रखती है। अगर प्रशासन अपने उत्तरदायित्व में सफल नहीं होता है तो राजनीति अर्थात् विधायिका कड़ा कदम लेती है तथा प्रशासन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए बाध्य करती है।

- स्थानीय नेत्तृत्व :– राजनीतिक विकास की विशेषता यह है कि इसमें सत्ता का विभाजन पाया जाता है। स्थानीय स्तर की सरकारें स्वायत्त होती हैं। सत्ता के इस विभाजन से स्थानीय स्तर के लोगों को नेतृत्व करने का अवसर मिलता है। इससे आम जनता में नेतृत्व के गुण का विकास होता है। स्थानीय स्तर पर सरकारें बनाने का फायदा यह भी होता है, राजनीतिक गतिविधियों में आम जनता की भागीदारी उच्च हो जाती है।

- लोकतंत्र का विस्तार :– राजनीतिक विकास का सीधा संबंध लोकतंत्र विस्तार से है। लोकतंत्र वह है जिसमें जनता अपने शासक खुद चुनती है। जितनी अधिक स्वच्छ प्रणाली चुनाव की होगी, उतना ही ज्यादा लोकतंत्र होगा।

राजनीतिक विकास विश्लेषण (Analysis of Political Development)

- राजनीतिक विकास आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्व शर्त है।
- राजनीतिक विकास औद्योगिक समाजों की विशिष्ट राजनीति के रूप में प्रकट करती है।
- राजनीतिक विकास राष्ट्रीय राज्य के व्यवहार में भी झलकता है। राष्ट्रीय राज्य की क्रियाशीलता ही राजनीतिक विकास है।
- राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण का रूप है।
- राजनीतिक विकास प्रशासकीय और वैधानिक विकास के साथ–साथ होता है।
- राजनीतिक विकास से ही लोकतंत्र का निर्माण होता है।
- राजनीतिक विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन आते हैं।
- राजनीतिक विकास बहुपक्षीय विकास है।
- प्रशासन में गति व शक्ति का संचार होना राजनीतिक विकास का ही एक फल है।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। यह सरकार के किए व बिना किए कार्यों से होता है क्योंकि विकास के कुछ आयाम ऐसे हैं जो प्राकृतिक रूप से स्वतः विकसित होते हैं। विकास के आयाम जैसे : राजनीतिक विकास, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास, प्रशासनिक विकास व पर्यावरण विकास। ये सभी आयाम एक–दुसरे से जुड़े हुए होते हैं। किसी एक दिशा में विकास करने से दूसरी में उसका प्रभाव पड़ता है। लेकिन फिर भी राजनीतिक विकास अहम है। सभी विकास आयामों की आधारशिला राजनीतिक विकास ही है। राजनीति अर्थात् विधायिका ही सभी प्रकार के विकास कार्यक्रम तय करती है। एक विकसित राजनीतिक प्रणाली सर्वोच्च राष्ट्रीय विकास कर सकती है। सभी विकासशील देश आज अपनी राजनीतिक प्रणालियों में सुधार कर रहे हैं।

1.7 सारांश (Summary)

भारतीय प्रशासन की विरासत का विकास अतीत काल से जुड़ा हुआ हैं अकेले प्राचीनकाल में भी प्रशासनिक व्यवस्था

अनेक कालों में बंटी हुई प्रतीत होती है जैसे– ऋग्वैदकाल प्रशासन, उत्तर वैदिक कालीय प्रशासन, महाकाव्यकाल, मौर्यकाल, गुप्तकाल, राजपूतकाल तथा सल्तनतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था। इस काल में मुख्य रूप से शासन व प्रशासन व्यवस्था राजतंत्रात्मक व वंशानुगत प्रदर्शित होती है। मुगलों की प्रशासनिक संरचना केन्द्रीकृत स्वेच्छाचारी राजतंत्रात्मक प्रतीत हुई, जिसमें मुख्य कार्यपालिकाके सहयोग के लिए सैनिक प्रशासन, प्रान्तीय प्रशासन, जिला व स्थानीय प्रशासन अपने–अपने स्तर पर कार्यरत था। वित्त पोषण प्रबन्धन के लिए राजस्व प्रशासन भी इस काल में प्रमुखता से सुदृढ़ हुआ। न्याय व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए दीवानी व फौजदारी न्याय प्रशासन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश भारतीय प्रशासन पर आधारित है। ब्रिटिशकालीन प्रशासन की प्रकृति विभिन्न अधिनियमों द्वारा शासित करने की थी। जिसमें रेगुलेटिंग अधिनियम भी शामिल थे। इस दौरान भारतीय लोक सेवाओं, सचिवालय व्यवस्था, जटिल नौकरशाही तंत्र, एकात्मक व संघात्मक का मिश्रण, प्रशासनिक गोपनीयता, जिला प्रशासन, वित्त प्रशासन, जेल प्रशासन, स्थानीय प्रशासन, पुलिस प्रशासन, न्याय प्रशासन, राजस्व प्रशासन आदि अनेक व्यवस्थाएं भारतीय प्रशासन के निर्माण, सुधार व विनिर्माण का भाग बनी। वर्तमान भारतीय प्रशासन का केन्द्र लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के माध्यम से कल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओं व उद्देश्यों की पूर्ति का एक प्रमुख साधन हैं। भारतीय प्रशासन का संवैधानिक कार्यक्षेत्र तो नीतिगत निर्णयों के क्रियान्वयन का है परन्तु वास्तव में नीति निर्माण, क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन के क्षेत्रों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अहम भूमिका निभाता है। सामाजिक विकास, सुधार व सरकार की जिम्मेदारी भी आज के प्रशासन का मुख्य कार्यक्षेत्र का भाग है। आर्थिक व्यवस्था के नियोजन से विभिन्न आर्थिक अभिकरणों और वित्तीय प्रशासनिक संस्थाओं के सहयोग से संविधान की आत्मा के अनुरूप किया जाता है। वर्तमान में राजनीतिक विकास व सुधारों को भी प्रशासनिक व्यवस्थाओं के द्वारा भी क्रियान्वित किया जाता है। अतः भारतीय प्रशासन अतीत से वर्तमान तक जनकल्याण कार्ययोजनाओं की धूरी रहा है।

1.8 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

- राजतंत्रात्मक व्यवस्थाः– प्राचीनकालीन शासन व प्रशासन का आधार यही व्यवस्था थी। जिसके राज्य और राजा को जन–कल्याण का माध्यम माना जाता था। राजा विभिन्न मंत्रियों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के परामर्श पर राज्य हित के निर्णय लेता थां यदि राजा प्रजा–धर्म के विरूद्ध कार्य करता था उसे पदच्युत किया जाने का प्रावधान था। यही व्यवस्था प्रशासनिक अधिकारियों के लिए निर्धारित थी।

- केन्द्रीकृत व्यवस्थाः– यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें सभी शक्तियों के उपयोग करने का अधिकार किसी एक संस्था, व्यक्ति व प्रशासनिक तंत्र के क्षेत्राधिकार में होता है।

- सचिवालय व्यवस्थाः– यह वह प्रशासनिक उच्च संगठन हैं जिसमें राजनीतिक कार्यपालकों तथा प्रशासनिक कार्यपालकों के साथ अन्य कार्मिक कार्यरत हैं।

- संघात्मक व्यवस्थाः– शासन संचालन के लिए केन्द्र शासन तथा राज्य शासन व्यवस्थाओं को नियमानुसार अपने–अपने क्षेत्र में कर्तत्व निर्वहन की स्वतंत्रता तथा समन्वय स्थापना के सिद्धान्त को अपनाना जब दोनों (केन्द्र–राज्य) के हित का संयुक्त निर्णय निर्माण की जरूरत पड़े।

- प्रशासनिक गोपनीयता :– प्रशासनिक अधिकारी कार्य निष्पादन में विधि अनुसार सूचनाओं व कार्यव्यवस्थाओं को गोपनीय रखते थे। परन्तु वर्तमान में सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के पश्चात केवल सीमित सूचनाओं में गोपनीयता के सिद्धान्त को अपनाने अधिकार सरकार व प्रशासन के पास है।

- लोकतांत्रिक व्यवस्था :– भारतीय संविधान की व्यवस्थानुसार जनता के हाथों में सत्ताधीशों का निर्वाचन तथा चयन के साथ–साथ नियंत्रण सौंपना ही लोकतांत्रिक शासन व प्रशाासन है।

- राजनैतिक तटस्थता :– प्रशासनिक संस्थाएं विधानपालिका द्वारा पारित नीतियों व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में बिना किसी राजनीतिक निष्ठा व प्रभाव से निर्णय लेना ही राजनैतिक तटस्थता है।
- समन्वित व्यवस्था :– भारतीय संघात्मक व्यवस्था में एकात्मक तत्वों के समावेश को समन्वित व्यवस्था कहते हैं।
- संवैधानिक सर्वोच्चता :– भारतीय शासन–प्रशासन में संविधान को सर्वोच्च कानून माना गया है। सम्पूर्ण संघात्मक के राजनैतिक प्रतिनिधित्व प्रशासनिक तंत्र की शक्यिों का स्त्रोत भारतीय संविधान का होना ही संवैधानिक सर्वोच्चता है।
- अखिल भारतीय सेवाएं :– ये वे प्रमुख सेवाएं हैं जो केन्द्रीय अधिकरण द्वारा नियुक्ति व प्रशिक्षण प्राप्त कर केन्द्र तथा राज्यों में प्रशासनिक व्यवस्था को संभालती है। वर्तमान में भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय वानकीय सेवा आदि तीन प्रकार की सेवाएं अखिल भारतीय सेवाओं का भाग है।
- जन सहभागिता :– विकास कार्यों तथा जनकल्याण नीतियों के क्रियान्वयन व मूल्यांकन में प्रशासन के सहयोग के लिए जनता व जनता के प्रतिनिधियों की आवश्यकता होती है क्योंकि सभी योजनाएं व नीतियां स्थानीय निवासियों की भागीदारी के बिना न तो क्रियान्वित हो सकती और न ही उनका मूल्यांकन हो सकता है।

1.9 अपनी प्रगति जांचिए (Check your Progress)

- ऋग्वैदिक काल में भारतीय शासन–प्रशासन का स्वरूप कैसा था?
- मौर्यकाल प्रशासन में न्यायिक अध्यक्ष कौन होता था?
- पाटलिपुत्र नगर पालिका प्रशासन के कितने सदस्य थे?
- मुगलकाल मे राजस्व प्रशासन की आय का मुख्य स्त्रोत क्या था?
- भारतीय लोक सेवाएं किस काल में आरम्भ हुई?
- कठोर नौकरशाही किस शासनकाल की विशेषता थी?
- भारतीय प्रशासन में कलक्टर के पद का सृजन कब हुआ?
- स्थानीय शासन को स्वशासन किसने बनाने की कोशिश की?
- समाजिक नीति को कौन क्रियान्वित करता है?
- आर्थिक नीति प्रबन्धन किस प्रशासनिक व्यवस्था का दायित्व है?

1.10 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. भारतीय प्रशासन की उत्त्पत्ति का वर्णन कीजिए।
2. प्राचीनकालीन भारतीय प्रशासन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. मुगलकाल मे राज्य व स्थानीय प्रशासनिक इकाईयों की कार्यव्यवस्था का वर्णन कीजिए।
4. वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटिश भारत की प्रशासनिक ढांचे पर टिकी हुई है स्पष्ट कीजिए।
5. वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था की उभरती हुई प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

6. भारतीय प्रशासन की आर्थिक विकास में भूमिका का विवरण कीजिए।
7. प्रशासन सामाजिक विकास की धुरी है, स्पष्ट कीजिए।
8. राजनैतिक विकास में प्रशासन कैसे अपनी भूमिका निभाता है?

1.11 पठन सामग्री सूचि (Further Reading List)

- B.L. Fadia and Kuldeep Fadia (2017), Indian Administration, Agra: Sahtya Bhawan.
- R. Abrar (2016), Indian Public Administration, New Delhi: Lisdern Press.
- Nazim Uddin Ahmed (2013), Indian Administration: Evolution and Development, New Delhi: Wizdam Press.
- R.K. Arora (2012), Indian Public Administration: Institutions and Issues, New Delhi: New Age International.
- P.D. Sharma (2009), Indian Administration: Retrospect and Pnspects, Jaipur: Rawat.
- अमरेश्वर अवस्थी एंव आनन्द प्राकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल : आगरा, 1995
- होशियार सिंह, भारतीय प्रशासन किताब महल : इलाहाबाद
- बी.एल.फड़िया, भारतीय प्रशासन, साहित्य भवन : आगरा
- श्री राम माहेश्वरी, भारतीय प्रशासन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन : हैदराबाद
- मधुसदून त्रिपाठी, भारतीय प्रशासन, ओमेगा मब्लिकेशन्स : नई दिल्ली, 2012

ईकाई–2

मुख्य कार्यकारी संस्थाएं

(Chief Executive Institutions)

2.0 परिचय (Introduction)

भारतीय संविधान के अनुसार हमने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया है। इस शासन प्रणाली का स्त्रोत ब्रिटिश शासन व्यवस्था है परन्तु भारतीय संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था में गणतंत्रात्मक मूल्यों को जोड़कर भारत में लागू किया। इसका अभिप्राय है कि भारतीय संसदीय प्रणाली में मुख्य कार्यकारी अध्यक्ष को निर्वाचित अध्यक्ष का रूप दिया। भारत का मुख्य कार्यकारी अध्यक्ष (संवैधानिक) राष्ट्रपति होता है परन्तु वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद में निहित होती है जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होता है। ये दोनों अध्यक्ष शक्तियों के संतुलन के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भारत का राष्ट्रपति सैद्धान्तिक अध्यक्ष व प्रधानमंत्री शासन व्यवस्था का व्यवहारिक अध्यक्ष है। ये दोनों अध्यक्ष तब तक अपना कार्य नहीं कर सकते जब तक इन्हें प्रशासनिक सहयोग प्राप्त न हो क्योंकि निर्णयों के निर्माण व क्रियान्वयन के आंकड़े प्रबन्धन की आवश्यकता होती है और इस आवश्यकता की पूर्ति प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति की कार्यव्यस्थाओं के लिए राष्ट्रपति सचिवालय की स्थापना की गई है और इसी प्रकार प्रधानमंत्री के कार्य संचालन के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय की व्यवस्था की गई है। प्रधानमंत्री के निर्णय निर्माण व नीति नियोजन में मंत्रीमण्डल समूह का महत्वपूर्ण योगदान होता है और इस मंत्रीमण्डल समूह की सहायता के लिए मंत्रीमण्डल सचिवालय का गठन किया गया है, जो आवश्यक प्रशासनिक कार्यवाही का दायित्व निभाता है। इसी प्रकार मंत्रीमण्डल समूह के अतिरिक्त मंत्रीपरिषद के अन्य मंत्रियों के प्रशासनिक कार्य सहयोग के लिए केन्द्रीय सचिवालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये सभी सचिवालय व कार्यालय केन्द्रीय शासन व्यवस्था के मूल आधार माने जाते है। अतः इस इकाई में संवैधानिक व वास्तविक अध्यक्षों की वस्तु स्थिति के साथ इनके केन्द्रीय शासन संचालन के मुख्य सचिवालयों व कार्यालयों का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

2.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैंः–

- भारत के राष्ट्राध्यक्ष की शक्तियों, कार्यों, वस्तुस्थिति व भूमिका काविस्तृत वर्णन करना।
- भारतीय प्रधानमंत्री की कार्यव्यवस्था, योगदान व शासन संचालन का उल्लेख करना।
- प्रधानमंत्री कार्यालय के संगठन व कार्यों को स्पष्ट करना।
- मंत्रीमण्डल सचिवालय की कार्यप्रक्रिया व केन्द्र शासन सहयोग का विवरण देना।
- केन्द्रीय सचिवालय की संरचना, विशेषता तथा भूमिका का विश्लेषण करना।

2.2 राष्ट्रपति की शक्ति, स्थिति व भूमिका (Power, Position and Role of President)

हमारे संविधान–निर्माताओं ने ब्रिटिश प्रणाली के अनुरूप उत्तरदायी अथवा संसदीय प्रणाली की कार्यपालिका अपनायी है और तदनुरूप मंत्रिमण्डलात्मक प्रणाली का प्रावधान किया है। संसदीय सरकार में राष्ट्रपति संवैधानिक अध्यक्ष होता है, लेकिन वास्तविक शक्ति मंत्रिपरिषद में निहित होती है जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होता है। डॉ॰ अम्बेडकर के कथनानुसार हमारा राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है। उसका शासन में यह स्थान है कि उसके नाम पर राष्ट्र के निर्णय घोषित किये जाते हैं।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति पद का विशेष महत्व है। इसके चार प्रमुख कारण हैं। प्रथम, राष्ट्रपति ऐसे समूह द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं जिसमें सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधित्व का समावेश होता है। इसमें राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्यों के अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों के सदस्य भी सम्मिलित होते हैं। द्वितीय, राष्ट्रपति के द्वारा जो शपथ ली जाती है वह संविधान की रक्षा के रूप में होती है। तीसरा, राष्ट्रपति के विरूद्ध संविधान में महाभियोग की व्यवस्था की गयी है। चौथा, देश के प्रतिरक्षा बलों के प्रधान के रूप में राष्ट्रपति का महत्व बढ़ जाता है।

भारत के संविधान का अनुच्छेद–52 यह प्रावधान करता है कि "भारत का एक राष्ट्रपति होगा।" संसदीय लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था अपनाने के कारण भारत के राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटेन के सम्राट की भांति केवल 'संवैधानिक अध्यक्ष' के समान है। यद्यपि भारत का राष्ट्रपति–पद वंशानुगत नहीं बल्कि निर्वाचन के माध्यम से भरा जाता है। संघ की समस्त कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित हैं जिनका प्रयोग वह या तो स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से करता है। चूंकि संविधान का अनुच्छेद–74 यह उल्लेख करता है कि राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् की सहायता तथा परामर्श के आधार पर करेगा। अतः राष्ट्रपति का पद वास्तविक रूप से अधिकार सम्पन्न नहीं हैं।

राष्ट्रपति पद हेतु योग्यताएं (Qualification for President Post)

(i) वह भारत का नागरिक हो।

(ii) 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

(iii) लोकसभा का सदस्य चुने जाने की योग्यता रखता हो (अर्थात् उसका नाम किसी संसदीय निर्वाचन मण्डल में मतदाता के रूप में पंजीकृत हो, पागल या दीवलिया न हो तथा किन्हीं कारणों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबंधित न हो)।

(iv) वह भारत सरकार या किसी राज्य सरकार का या इनके अधीन किसी संस्था में लाभ का पद धारण किया हुआ न हो।

राष्ट्रपति का चुनाव (Election of Prisident)

संविधान के अनुच्छेद 54 और 55 में राष्ट्रपति के चुनाव का उल्लेख किया गया है। भारत का राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुना जाता है। यह व्यवस्था संसदीय प्रणाली के अनुरूप है।

5 जून 1997 को जारी एक अध्यादेश के पश्चात् राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को 50 प्रस्तावक तथा 50 अनुमोदक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तथा 15000 रूपए जमानत राशि के जमा कराने पड़ते हैं।

निर्वाचक मण्डल – अनुच्छेद 54 के अनुसार राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक–मण्डल द्वारा करने की व्यवस्था है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैंः–

- संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य।
- राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य।
- केन्द्रशासित प्रदेशों दिल्ली व पुडुचेरी विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य।

राष्ट्रपति के निर्वाचक–मण्डल में संघीय संसद के साथ–साथ राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्यों को सम्मिलित करके इस बात का प्रयत्न किया गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन दलीय आधार पर न हो तथा संघ के इस सर्वोच्च पद को वास्तव में राष्ट्रपति पद का रूप प्राप्त हो सके।

वेतन–भत्ते एवं अन्य सुविधाएं (Salary-Allowances and other facilities)– राष्ट्रपति को संसद द्वारा अनुमोदित वेतन भत्ते देय हैं। सन् 2018 के पश्चात् राष्ट्रपति को पाँच लाख रूपए प्रतिमाह वेतन तथा तीन लाख रूप पेंशन वार्षिक देय है। राष्ट्रपति को भारत सरकार की संचित निधि से आकर्षक वेतन, भत्ते, पेशन, चिकित्सा तथा यात्रा सुविधाएं प्रदान की जाती है। राष्ट्रपति को प्राप्त वेतन–भत्ते, सुविधाएं तथा पदाविध के दौरान घटाए नहीं जा सकते हैं यद्यपि संसद समय–समय पर इनमें वृद्धि करती रहती है। भारत के राष्ट्रपति को नई दिल्ली स्थित 'राष्ट्रपति भवन' के निशुल्क आवास तथा कर्मचारीगण की सुविधाएं प्राप्त होती है। सन् 1914–1929 के दौरन अंग्रेजों द्वारा निर्मित राष्ट्रपति भवन पूर्व में वायसराय हाउस या वाइसरीगल पैलेस कहलाता था। अपनी वास्तुकल के लिए प्रसिद्ध यह भवन तीन बड़े हॉल–दरबार हाल, अशोक हाल तथा बैंक्वेट हाल में युक्त है। राष्ट्रपति भवन परिसर में ही लगभग 1000 किस्म के फूल–पौधों युक्त 'मुगल गार्डन' है जो प्रतिवर्ष कुछ समय आम जनता के लिए खोला जाता है। राष्ट्रपति के प्रशासनिक कार्यों को संपादित करने तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रपति सचिवालय कार्य करता है जिसमें अनेक अधिकारी तथा कर्मचारी कार्यरत हैं।

राष्ट्रपति की शक्तियां एवं कार्य (Power and Functions of President)

भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति भारत संघ का प्रधान है। संविधान द्वारा उसे अनेक शक्यिां एवं अधिकार प्राप्त हैं जिनका अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं :–

1. **सामान्यकालीन शक्तियां (Rights during Normal Period)**
2. **आपातकालीन शक्तियां (Rights during Emergency Period)**

1. सामान्यकालीन शक्तियां – राष्ट्रपति के सामान्यकालीन अधिकार वे हैं जिनका प्रयोग वह सामान्य स्थितियों में प्रतिदिन शासन सम्बन्धी कार्यों में करता है। सामान्यकालीन शक्तियां निम्नलिखित हैं:–

(क) कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियां (Executive Powers)

संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्तियों राष्ट्रपति में निहित हैं, जिसका प्रयोग वह या तो स्वयं या अपने अधीस्थ पदाधिकारियों द्वारा कर सकता है। पुनः संविधान के अनुच्छेद 77 के अनुसार भारत सरकार के समस्त प्रशासन सम्बन्धी कार्य राष्ट्रपति के नाम से संचालित होते हैं और औपचारिक रूप से भारत सरकार के समस्त महत्वपूर्ण निर्णय राष्ट्रपति के निर्णय होते हैं। परन्तु यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे देश में संसदीय शासन–प्रणाली की स्थापन की गयी है। अतः राष्ट्रपति को किसी प्रशासनिक कार्य का सम्पादन नहीं करना पड़ता। इस प्रकार राष्ट्रपति की शक्तियां औपचारिक मात्र हैं। इस बात का स्पष्टीकरण संविधान के अनुच्छेद 74 से हो जाता है जिसमें यह कहा गया है कि राष्ट्रपति को अपने कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं मन्त्रणा देने के लिए मंत्रिपरिषद होगी जिसका नेतृत्व प्रधानमंत्री करेगा और राष्ट्रपति अपने कार्यों का प्रयोग सलाह के अनुसार करेगा। संविधान संशोधन (चवालीसवाँ) अधिनियम, 1978 की धारा 11 द्वारा अब संविधान में यह अंश स्थापित किया गया है कि "परन्तु मंत्रिपरिषद से ऐसी सलाह पर साधारणतः या/अन्यथा पुर्नोविचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और

राष्ट्रपति ऐसे पुर्नविचार के पश्चात् दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।" अनुच्छेद 78 के अनुसार प्रधानमंत्री का यह कर्तत्व है कि वह राष्ट्रपति को मंत्रिमण्डल के संघीय प्रशासंन एवं व्यवस्थापन सम्बन्धी प्रस्ताव की सूचना दें। राष्ट्रपति की इच्छानुसार प्रधानमंत्री द्वारा ऐसे विषयों को, जिन पर केवल किसी मंत्री ने निर्णया लिया है, मंत्रिमण्डल के विचारार्थ रखा जा सकता है।

कार्यपालिका शक्तियों के अन्तगर्त प्रशासकीय, राजनीतिक, सैनिक और न्यायिक अथवा अर्द्ध–न्यायिक सभी प्रकार की शक्तियाँ सम्मिलित हैं। राष्ट्रपति प्रशासन का औपचारिक अध्यक्ष है और सभी संघीय अधिकारी, चाहे वे सैनिक सेवा के हों अथवा असैनिक सेवा राष्ट्रपति के अधीन हैं। राष्ट्रपति को नियुक्ति एवं पदच्युति की व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। जिन अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होती है उनमें मुख्य हैं – अन्य संघीय मंत्री, राज्यपाल, महाधिवक्ता, नियन्त्रक एवं महालेख परीक्षक, उच्चतम तथा उच्च न्यायलयों के न्यायधीश, राजदूत एवं अन्य राजनयिक अधिकारी आदि। वह विभिन्न आयोगों के सदस्यों को भी नियुक्त करता है; जैसे– वित्त आयोग, नीती–आयोग, निर्वाचन–आयोग, भाषा–आयोग आदि। सभी नियुक्तियां राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह से करता है। राष्ट्रपति को अपने ही मंत्रियों, राज्यपालों, महाधिवक्ता, उच्च सैनिक अधिकारियों आदि को पद्च्युत करने का अधिकार है। राष्ट्रपति प्रतिरक्षा सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति है और राज्य का अध्यक्ष होने के नाते सभी प्रकार के राजनयिक विशेषाधिकारों का उपयोग करता है। देश के राजनयिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति उसी के द्वारा की जाती है और विदेशी राजदूत अपने पद के प्रमाण–पत्र उसके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। सभी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ या समझौते उसी के नाम से किये जाते हैं। राष्ट्रपति न्याय और सम्मान का स्त्रोत है। उसे अपराधियों को क्षमा करने, दिये गये दण्ड को कम करने, दण्ड में छूट देने, दण्ड को रोकने आदि के अधिकार हैं। राष्ट्रपति विशिष्ट नागरिकों को उपाधियों के माध्यम से सम्मानित करता है।

यहां स्मरणीय है कि भारत में उत्तरदायी सरकार है, इसलिए राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमण्डल की सिफारिश पर करता है। राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। किन्तु जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तब राष्ट्रपति अपने विवके का प्रयोग कर सकता है।

(ख) विधायी शक्तियां (Legislative Power)

संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। संघ की विधायी शक्तियों को राष्ट्रपति और संसद के दोनों सदनों में निहित माना गया है। राष्ट्रपति को संसद का अधिवेशन बुलाने, उसे स्थागित करने, उसमें भाषण देने और उसे संदेश भेजने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त संसद को आहूत करने, सत्रावसान करने तथा विघटन करने का भी अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त है। वह राज्यसभा के 12 सदस्यों को मनोनीत करता है जिन्हें साहित्य, कला, विज्ञान और समाजसेवा में से किन्हीं का विशिष्ट और व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए। राष्ट्रपति वह अधिक से अधिक से दो ऐंग्लो–इण्डियन सदस्यों को मनोनित कर सकता है।

संसद द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। वह विधेयक पर हस्ताक्षर करके उसे अधिनियम का रूप दे सकता है। संविधान संशोधन विधेयक के अतिरिक्त वह किसी भी विधेयक पर स्वीकृति देने से इन्कार कर सकता है। कुछ विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व–आज्ञा के बिना संसद में प्रस्तावित ही नहीं किये जा सकते; जैसे– वित्त विधेयक, किसी राज्य की सीमा अथवा नाम को बदलने से सम्बन्धित विधेयक, व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने से सम्बन्धित विधेयक। संविधान के अनुच्छेद 123 के अन्तर्गत जब संसद का अधिवेशन नहीं हो रहा हो, तो राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है। ये उन विषयों से सम्बन्धित होते हैं जिन पर संसद को कानून बनाने का अधिकार होता है। ऐसे अध्यादेश का वैसा ही प्रभाव होगा जैसा संसद द्वारा स्वीकृत अधिनियमों का और यह संसद के अधिवेशन के आरम्भ होने की तिथि से छह सप्ताह तक जारी रहेगा, तत्पश्चात इसे रद्द समझा जायेगा। संसद इस तिथि से पूर्व भी उसे रद्द करार दे सकती है। राष्ट्रपति स्वयं जब चाहे अपना अध्यादेश वापस ले

सकता है। राज्यों के सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति को कुछ विधायी शक्तियां प्राप्त हैं। राज्यपाल विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित कर सकता है। राष्ट्रपति उसे स्वीकार कर सकता है, अस्वीकार कर सकता है या विधानमण्डल के पास पुनः विचारार्थ वापस कर सकता है। राज्यों के बीच व्यापार पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी विधेयक बिना राष्ट्रपति की पूर्व–स्वीकृति के राज्य के विधानमण्डल में प्रस्तुत नहीं किये जा सकते। यदि राज्य का विधानमण्डल नागरिकों की सम्पत्ति अधिगृहीत करने का विधेयक पारित करे, तो वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कानून नहीं बन सकता। समवर्ती सूची में वर्णित विषयों पर राज्य द्वारा निर्मित कानून यदि संसद के किसी कानून के विरूद्ध हैं तो राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना वे वैध नहीं हो सकते।

(ग) वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)

वित्तीय क्षेत्र में भी राष्ट्रपति को संविधान द्वारा व्यापक शक्तियां प्रदान की गयी है। प्रथम, बिना राष्ट्रपति की सिफारिश के कोई भी धन–विधेयक संसद में प्रस्तुत नहीं हो सकता। विशेषतः ऐसे विधेयक जिसका सम्बन्ध किसी ऐसे कर या शुल्क से हो अथवा जिसका कुछ अंश राज्यों को मिलने वाला हो। दूसरे, भारत की आकस्मिक निधि राष्ट्रपति के अधीन है और राष्ट्रपति आवश्यकता पड़ने पर अग्रदाय रूप में शासन को उससे धन दे सकता है। तीसरे, राष्ट्रपति को राज्यों में आय–कर का वितरण करने की शक्ति प्राप्त हैं और उसे राज्यों के लिए पटसन के निर्यात–कर से प्राप्त होने वाली धनराशि का अंश निश्चित करेन का भी अधिकार है। चौथे, उसे संघ तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध निश्चित करने के लिए वित्त–आयोग की नियुक्ति करने का अधिकार है। पाँचवें, उसे देशी नरेशों को प्रीवीपर्स देने का अधिकार था जो अब समाप्त हो गया है।

(घ) न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)

राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं। उच्चतम तथा उच्च न्यायलय के न्यायधीशों की नियुक्ति करने, संसद के दोनों सदनों द्वारा प्रार्थना करने पर उच्चतम न्यायलय के न्यायधीशों को पदच्युत करने, उच्च न्यायलय के न्यायधीशों की संख्या निर्धारित करने, उच्चतम न्यायलय के मुख्य न्यायधिपति के परामर्श से उच्च न्यायलय के न्यायधीशों का स्थानान्तरण करने आदि का अधिकार राष्ट्रपति को है। संविधान के अनुच्छेद 72 के अनुसार उसे क्षमादान का भी अधिकार दिया गया है। वह दण्ड को पूर्णरूप से क्षमा कर सकता है, स्थागित कर सकता है अथवा दण्ड में परिवर्तन कर सकता है। इस अधिकार का प्रयोग केवल दो प्रकार के दण्डों पर किया जा सकता हैः–

(i) यदि दण्ड किसी सैनिक न्यायलय द्वारा दिया गया हो;

(ii) यदि दण्ड ऐसे मामलों में दिया गया हो जो केन्द्रीय कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हों; व्यवहार में राष्ट्रपति उक्त सभी अधिकारों का प्रयोग मंत्रिमण्डल के परामर्श से ही कर सकता है।

(ड़) सैनिक शक्तियां (Military Powers)

राष्ट्रपति देश की तीनों सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है, परन्तु वह सैनिक शक्तियों का प्रयोग संसद द्वारा निश्चित कानून के अन्तर्गत ही करता है। वस्तुतः युद्ध और शान्ति के समय कानून बनाने का अधिकार पूर्णतः संसद को प्राप्त है और बिना संसद की स्वीकृति या बाद में संसद की स्वीकृति लेने की आशा में, न तो वह युद्ध की घोषणा कर सकता है और न ही सेनाओं को युद्ध लड़ने के लिए भेज सकता है।

(च) कूटनीतिक शक्तियां (Diplomatic Powers)

राष्ट्रपति विदेशों में देश का प्रतिनिधित्व करता है। वह राजदूतों की नियुक्ति करता है। वह विदेशी राजनयिक प्रतिनिधियों के प्रमाण–पत्रों को स्वीकार करता है। अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियां, समझौते या बातचीत राष्ट्रपति के नाम में किये जाते हैं। व्यवहार में ये तभी लागू होते है जब इन पर संसद की स्वीकृति मिल जाती है।

(छ) आपातकालीन शक्तियां (Emergency Powers)

हमारो संविधान में देश की रक्षा को सुदृढ़ करने, संकट में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाने तथा व्यापक आन्तरिक अशान्ति, क्रान्ति और हथिपारबन्द विद्रोह को रोकने के लिए राष्ट्रपति को निम्नलिखित संकटकालीन शक्तियां पद्रान की गयी हैं।

(क) युद्ध, ब्राह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट

(ख) राज्यों में संवैधानिक तंत्र के असफल होने से उत्पन्न संकट

(ग) वित्तीय संकट

(क) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट (War, External Aggrasion And Armed Rebellion) :– मूल संविधान के अनुच्छेद 352 में व्यवस्था है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या हथियार बन्द विद्रोह के कारण भारत या उसके किसी भी भाग की शान्ति व्यवस्था के नष्ट होने की आंशका है या यथार्थ रूप में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। संसद की स्वीकृति के बिना भी यह दो माह तक लागू रहती है और संसद से स्वीकृत हो जाने पर शासन जब तक उसे लागू रखना चाहता, लागू रख सकता है। अनुच्छेद 352 के अन्तगर्त अब तक चार बार संकटकाल की घोषणा की गयी है – 1962, 1965, 1971 तथा 1975। संकटकालीन शक्तियों का दुरूपयोग न किया जाये इसलिए 44 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों पर काफी प्रतिबन्ध लगा दिये गये है। जो इस प्रकार हैं –

- अनुच्छेद 352 में "आन्तरिक अशान्ति" के स्थान पर "सशस्त्र विद्रोह" शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जिससे राष्ट्रपति आन्तरिक अशान्ति की स्थिति में सभी आपात–उद्घोषणा कर सकेगा, जब देश के किसी भाग में "संशस्त्र विद्रोह" प्रारम्भ हो गया हो।
- राष्ट्रपति द्वारा आपात की घोषणा तभी की जा सकेगी जब केन्द्रीय मंत्रिमण्डल लिखित रूप से राष्ट्रपति को ऐसा परामर्श दे।
- राष्ट्रपति द्वारा घोषणा किये जाने के एक माह के अन्दर संसद के विशेष बहुतमत (पृथक–पृथक संसद के दोनों सदनों के कुल बहुमत एवं उपस्थिति और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत) से इसकी स्वीकृति आवश्यक है तथा लागू रखने के लिए प्रति छह माह बाद संसद की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।
- संसद के साधारण बहुमत द्वारा संकटकाल की घोषणा समाप्त की जा सकती है।

यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि 44 वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में किये गये 38 वें संवैधानिक संशोधन को भी रद्द कर दिया गया है। जिसमें यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अन्तगर्त की गयी संकटकालीन घोषणा को न्यायलय में चुनौती दी जा सकेगी। इस प्रकार अब राष्ट्रपति द्वारा लागू की गयी आपातकालीन घोषणा को न्याय योग्य बना दिया गया है। अब आपातकालीन घोषणा को न्यायलय में चुनौती दी जा सकती है। मूल संविधान में व्यवस्था थी कि अनुच्छेद 352 के अधीन संकटकाल की घोषणा पूरे देश के लिए ही की जा सकती है, देश के केवल किसी एक या कुछ भागों के लिए नहीं। किन्तु 42 वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी कि अब राष्ट्रपति संकटकाल की घोषणा पूरे देश के किसी एक या कुछ भागों के लिए भी कर सकता है।

आपात उद्घोषणा के प्रभाव (Impact of Promulgation of Emergency) संक्षेप में, आपात–उद्घोषणा के संवैधानिक प्रभाव निम्नलिखित होंगें :

- संसद को सम्पूर्ण देश अथवा उसके किसी क्षेत्र के लिए सभी विषयों अथवा राज्य–सूची में दिये गये विषयों पर भी कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जायेगी। राज्य–सूची के सम्बन्ध में संघ द्वारा निर्मित ये कानून उद्घोषणा की समाप्ति के छह माह बाद प्रभावी नहीं रहेंगे।

- संघ कार्यपालिका तथा राज्यों की कार्यपालिकाओं को यह निर्देश देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है कि किस प्रकार शक्ति का प्रयोग करें।

- राष्ट्रपति ये आदेश दे सकता है कि संघ और राज्यों के बीच आय–वितरण सम्बन्धी सभी या कोई भी उपलब्ध चालू वित्तीय वर्ष में उसके निर्दशानुसार संशोधित होते रहेंगे, परन्तु ऐसा आदेश यथाशीघ्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जायेगा।

- आपातकालीन घोषणा के लागू रहने के समय 19वें अनुच्छेद द्वारा नागरिकों को प्राप्त स्वतंत्रताऐं स्थगित हो जायेंगी और राज्य के द्वारा इन स्वतंत्रताओं को स्थगित करने वाले कानूनों का निर्माण किया जा सकेगा। 44 वें संशोधन द्वारा व्यवस्था की गयी कि यदि आपातकाल युद्व अथवा बाह्य आक्रमण के कारण लागू किया गया है तब अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रताओं को भी स्थगित या समाप्त किया जा सकतां है, लेकिन यदि आपात–स्थिति सशस्त्र विद्रोह के कारण लागू की गयी है तो अनुच्छेद 19 की व्यवस्थाओं को स्थगित नहीं किया जा सकता। आपात–स्थिति की समाप्ति के बाद ऐसे कानून तत्काल समाप्त हो जायेंगे।

- मूल संविधान में व्यवस्था थी कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा अनुच्छेद 32 में वर्णित संवैधानिक उपचारों के अधिकारों को भी स्थगित कर सकता है। 44 वें संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था की गयी है कि आपातकाल में भी जीवन और शारीरिक स्वाधीनता के अधिकार को समाप्त या सीमित नहीं किया जा सकेगा। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए नागरिक न्यायलय की शरण ले सकेंगे।

(ख) राज्यों में संवैधानिक तंत्र के असफल होने से उत्पन्न संकट (Emergencey Emerged FromFailure of State Machinery) :– संविधान के अनुच्छेद 355 के अनुसार संघ सरकार को यह दायित्व है कि वह प्रत्येक राज्य की बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति से रक्षा करें तथा यह देखें कि प्रत्येक राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुकूल हो। अनुच्छेद 356 के अनुसार अगर राष्ट्रपति को राज्यपाल के प्रतिवेदन पर या किसी अन्य प्रकार से यह विश्वास हो जाये कि ऐसी स्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं कि किसी राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है, तो वह संकटकाल की घोषणा कर सकता है। ऐसा संकटकाल घोषित करने की विधि वही है जो प्रथम प्रकार के संकट के लिए है। मूल संविधान में संकट की समयावधि छह माह थी। 42 वें संशोधन द्वारा इस अवधि को एक वर्ष कर दिया गया था, किन्तु 44 वें संशोधन द्वारा इस अवधि को पुनः छह माह कर दिया गया है। 44 वें संशोधन से पूर्व राज्य में राष्ट्रपति शासन की अधिकतम अवधि तीन वर्ष थी, लेकिन अब इस व्यवस्था में परिवर्तन किया गया है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन के एक वर्ष की अवधि के बाद इसे और अधिक समय के लिए जारी रखने का प्रस्ताव संसद तभी पारित कर सकेगी, जब इस प्रकार का प्रस्ताव पारित किये जाने के समय अनुच्छेद 352 के अन्तगर्त संकटकाल लागू हो और चुनाव आयोग यह प्रमाणित करे कि राज्य में चुनाव कराना संभव नहीं हैं।

घोषणा के संवैधानिक प्रभाव – इस प्रकार की घोषणा के परिणाम निम्नलिखित होंगे :–

1. राष्ट्रपति किसी भी राज्य–अधिकारी का कोई भी कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य स्वयं ग्रहण कर सकता है।

2. राष्ट्रपति राज्य के विधानमण्डल की शक्तियां संसद को हस्तान्तरित कर सकेगा और संसद को यह अधिकार होगा कि वह उन विधायी शक्तियों को राष्ट्रपति को सौंप दे अथवा राष्ट्रपति को यह अधिकार दे कि वे उन्हें किसी अन्य अधिकारी को सौंप दे।
3. यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की स्वीकृति दे सकता है।
4. राष्ट्रपति उद्घोषणा की पूर्ति के लिए उच्च न्यायलय की शक्ति को छोड़कर अन्य समस्त शक्तियां अपने हाथ में ले सकता है।

(ग) वित्तीय संकट (Financial Emergency) – अनुच्छेद 360 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत में या उसके किसी भाग में आर्थिक साख को खतरा है, तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा के लिए लिए भी वही विधि निर्धारित है जो प्रथम प्रकार के संकट की घोषणा के लिए निर्धारित की गई है।

वित्तीय संकट की घोषणा के प्रभाव – इस घोषणा के संवैधानिक परिणाम निम्नलिखित हैंः–

1. संघ तथा राज्यों के किसी भी वर्ग के अधिकारियों के वेतन और भत्तों में कमी कर सकता है।
2. यह आदेश दे सकता है कि राज्य के समस्त वित्त–विधेयक उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किये जायें।
3. संघ की कार्यपालिका राज्य की कार्यपालिका को शासन सम्बन्धी आवश्यक आदेश दे सकता है।
4. राष्ट्रपति केन्द्र तथा राज्यों में धन सम्बन्धी बंटवारें के प्रावधानों में आवश्यक संशोधन कर सकता है अभी तक देश में आर्थिक संकटकाल की घोषणा नहीं की गयी है।

शक्तियों का मूल्यांकन (Evaluation of Pawers)

संकटकालीन शक्तियों के सम्बन्ध में जहां एक ओर कुछ लोगों द्वारा आलोचना की गयी है वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों ने शक्तियों को औचित्यपूर्ण बतलाया है। संकटकालीन शक्तियों की आलोचना के आधार ये हैं – इन शक्तियों से संघात्मक शासन–व्यवस्था का आधारभूत स्वरूप समाप्त हो जाता है।राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु शक्तियों के दुरूपयोग की संभावना, राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता को खतरा, मौलिक अधिकारों का अर्थहीन होना आदि इसके आलोचना के आधार है। इन आलोचनाओं में सत्य का अंश आवश्यक है किन्तु ये आलोचनाएं अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और इस प्रकार की आलोचनाओं में व्यावहारिक पक्ष को भुला दिया गया है। दूसरी ओर संकटकालीन शक्तियों के औचित्य के पक्ष में कहा जाता है कि संकटकाल में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए केन्द्र के पास उपर्युक्त शक्तियों का होना आवश्यक है, राष्ट्रपति तानाशाह नहीं बन सकता। राष्ट्रपति की शान्तिकालीन शक्तियों पर टीका–टिप्पणी की कोई विशेष बात नहीं हैं किन्तु पिछले कुछ वर्षो में आपातकालीन शक्तियां कटु विवाद का विषय रही हैं। संविधान निर्माताओं ने देश के विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों और आन्तरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमण के संकट से उत्पन्न परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर ही संविधान में ये प्रावधान निर्धारित किये थे। यद्यपि संविधान में आपातकालीन शक्तियों पर नियंत्रण की व्यवस्था है लेकिन 25 जून, 1975 को लादी गई आपात स्थिति के बाद देश में राजनीतिक और प्रशासनिक वातावरण बना उसने यह सिद्ध कर दिया कि आपातकाल के दौरान अधिकारों का किस तरह दुरूपयोग किया जा सकता है। आलोचकों की राय में आपातकाल का सहारा लेकर देश में संघात्मक शासन को समाप्त करके पूर्ण एकात्मक तथा निरंकुश शासन स्थापित किया जा सकता है। अतः राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां निःसंदिग्ध रूप से आपत्तिजनक हैं लेकिन दूसरी तरफ राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों की व्यवस्था को अमान्य ठहराते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में संसदीय शासन–प्रणाली की व्यवस्था की

गई है जिसमें राष्ट्रपति की शक्ति का प्रयोग व्यवहार में केन्द्रीय मंत्रि–परिषद द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति सामान्य परिस्थितियों में कभी भी मंत्रि–परिषद की सहायता के बिना शासन नहीं चला सकता। यदि वह आपातकालीन घोषणा करके अपनी मनमानी करने का प्रयास भी करे तो भी यह सर्वथा असम्भव है कि संसद की इच्छा के विरूद्ध वह शासन कार्य चला सके। संसद का राष्ट्रपति पर प्रभावशाली नियन्त्रण है।

सन् 1975 के आपातकालीन में हुई गलतियों को दृष्टिगत रखते हुए 44 वें संविधान द्वारा आपातकाल के विरूद्ध ठोस व्यवस्थाएं की गई है। अब यह सुनिश्चत कर दिया गया है कि मंत्रि–मण्डल द्वारा राष्ट्रपति को दी गई लिखित रूप से सलाह के आधार पर ही आपातकाल की घोषणा की जा सकेगी ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह घाषणा उपयुक्त और पर्याप्त विचार–विमर्श के बाद की जाए। 44 वें संशोधन द्वारा यह सुरक्षात्मक व्यवस्था भी कर दी गई कि आपात् उद्घोषणा के दोनों सदनों द्वारा उसी बहुमत से स्वीकार किया जाना होगा, जितना बहुमत संविधान में संशोधन के लिए आवश्यक होता है। यह भी निर्धारित किया गया कि इसकी स्वीकृति संसद द्वारा एक महीने की अवधि के भीतर ही करनी होगी। इन व्यवस्थाओं के बाद राष्ट्रपति की आपात् शक्तियों के मूल में छिपा भय अब उतना नहीं रहा है, जितना पहले था। ऐसा विचार उपयुक्त नहीं है कि आपात्कालीन शक्तियों की व्यवस्था ही समाप्त कर दी जाए। केन्द्र को शक्ति–सम्पन्न इसलिए भी होना चाहिए कि राज्य तथा संघ की इकाईयां बाह्य आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना करने की शक्ति नहीं रखते और आन्तरिक विवह को सुलझाने के सम्बन्ध में भी उन पर विश्वाास नहीं किया जा सकता है। देश में आतंकवादियों और पृथकतावादियों की चुनौतियों ने भी केन्द्र के शक्तिशाली होने की आवश्यकता सिद्ध कर दी है। अतः इन शक्तियों को बनाए रखना परम आवश्यक है।

राष्ट्रपति की भूमिका (Role of President) :– भारत का राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका या रबर की मुहर के रूप में जाना जाता है क्योंकि संसदीय लोकतंत्र में मंत्रिपरिषद की स्थिति वास्तविक कार्यपालिका की होती है। मुख्य कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति अपने समस्त कृत्यों का निवर्हन प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद की मंत्रणा के अनुरूप करता है तथापि यदि राष्ट्रपति चाहे तो अनैतिक या निर्वाहित कृत्य को करने से मना कर सकता है अथवा मंत्रिपरिषद को पुनविचार हेतु कह सकता है। अधिकांश उच्च्य तथा संवैधानिक पदों पर नियुक्ति का कार्य राष्ट्रपति ही करता है। ऐसी स्थिति में वह ऐसा कोई कदम नहीं उठाना चाहेगा जो किसी व्यक्तिगत छवि तथा पद की गरिमा के विरूद्ध हो।

संविधान के संरक्षक के रूप में भी राष्ट्रपति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि राष्ट्रपति संविधान तथा विधि के परिक्षण, सरंक्षण तथा प्रतिरक्षण की शपथ ग्रहण करता है। यद्यपि राष्ट्रपति की स्थिति मंत्रिपरिषद के परामर्श को सहज रूप में स्वीकार करने वाले संवैधानिक प्रमुख की प्रतीत होती है किन्तु सन् 1997 में उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह सरकार द्वारा विश्वास मत प्राप्ति के बावजूद राज्यपाल रोमेंश भंडारी द्वारा राष्ट्रपति शासन के लिए की गई सिफारिश को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री के॰ आर॰ नारायणन ने इन्द्रकुमार गुजराल सरकार के पास पुनर्विचार के लिए लौटा कर अपने संवैधानिक दायित्वों का परिचय दिया था। स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह प्रथम ऐसी घटना थी जब किसी राष्ट्रपति ने अनुच्छेद–356 के दुरूपयोग के विरूद्ध विचार प्रकट किये थे। इस प्रकार यदि राष्ट्रपति चाहे तो मंत्रिपरिषद को सद्मार्ग पर चलने पर विवश कर सकता है। राष्ट्रपति श्री नारायण ने वाजपेयी सरकार द्वारा बिहार में राबड़ी देवी सरकार को बर्खास्त करने की सिफारिश भी पुर्नर्विचार हेतु लौटा दी थी।

राष्ट्राध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति की कार्यशैली, विचार तथा व्यापक दृष्टिकोण न केवल देश के नागरिकों पर अपितु विदेशों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ता है। विदेशी प्रतिनिधि मंडलों तथा शासनाध्यक्षों के साथ वार्ता मुलाकात तथा विदेश यात्रा के दौरान राष्ट्रपति का व्यवहार एक मिसाल बन जाता है। गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम संदेश, संसद में अभिभाषण तथा अन्य सभी समारोह में राष्ट्रपति की गरिमापूर्ण उपस्थिति राष्ट्र की एकता में

अभिवृद्धि करती है। शोषण, अत्याचार तथ अन्याय से पीड़ित आम जनता भी राष्ट्रपति से न्याय की अपेक्षा में अनेक परिवाद प्रेषित करती है। बहुमत की कमी तथा अस्थिर सरकारों के दौर में संपूर्ण देश–विदेश की नजरें राष्ट्रपति भवन की ओर टिक जाती है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति की भूमिका बहुत निष्पक्ष तथा गंभीर हो जाती है।

राष्ट्रपति की संविधानिक स्थिति (Constitutional Staus) :– राष्ट्रपति की शक्तियों का सिद्धान्त और व्यवहार में जो विवेचक किया गया है उससे स्पष्ट है कि यद्यपि कुछ अवसरों पर राष्ट्रपति को स्वविवेक का प्रयोग करना पड़ता है। इसके बावजूद भी मूलतः वह एक संविधानिक राज्याध्यक्ष है जो शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह से करता है अर्थात् वास्तविक कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में नहीं बल्कि मंत्रिपरिषद में निहित हैं जिसका नेता प्रधानमंत्री होता है।

भारत का राष्ट्रपति अपने मंत्रियों का आलोचक, परामर्शदाता, मार्गदर्शक और मित्र है। परामर्शदाता के रूप में वह अपने विचारों को मंत्री के समक्ष प्रभावशाली तरीके से रख सकता है। आलोचक के रूप में वह उस मन्त्रणा पर आपत्ति कर सकता है, जो मन्त्री ने उसे किसी विषय पर दी हो किन्तु उसे जिद या हठ नहीं करना चाहिए और अंतिम उपचार के रूप में यदि मन्त्री राष्ट्रपति की बात को न मानना चाहे तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। मन्त्रिमण्डल के मित्र के रूप में राष्ट्रपति को इतनी सावधानी बरतनी चाहिए कि वह अपनी बात पर व्यर्थ के लिए अड़ा न रहे, जिसके फलस्वरूप शासन का स्थायित्व ही खतरे में पड़ जाए। मार्गदर्शक के रूप में राष्ट्रपति मन्त्रियों को उन्हें अपने विभागों के कुशल संचालन और दक्षता प्राप्त करने के सम्बन्ध में उपयोगी सलाह और मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। जब तक राष्ट्रपति ऐसी मन्त्रि–परिषद् की मन्त्रणा पर चलता है जिसको लोकसभा का विश्वाय प्राप्त है, वह कोई असांविधनिक कृत्य नहीं कर सकता है।

संविधानिक प्रधान होने का अर्थ यह नहीं है कि राष्ट्रपति के पद का कोई महत्त्व ही नहीं है। वह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। वह सरकार द्वारा शासन–संचालन में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। दलगत राजीति के ऊपर रहकर और निष्पक्ष होने के नाते मन्त्रि–परिषद् के निर्णयों पर काफी प्रभाव डाल सकता है। समय–समय पर प्रधानमंत्री को उचित सलाह दे सकता है। ये सब बातें बहुत हद तक उसके व्यक्तित्व पर आधारित है। 42 वें और 44वें संशोधन के पश्चात् यह सोचना कि राष्ट्रपति एक कठपुतली मात्र है, असत्य है। यद्यपि उसके विशषाधिकार का क्षेत्र अत्यंत सीमित हो गया है तथापि ऐसी परिस्थितियां हैं जहां राष्ट्रपति की शक्ति पर उपर्युक्त संशोधन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और वह इन मामलों में मन्त्रि–मण्डल के परामर्श से कार्य करने के लिए विधि रूप से बाध्य नहीं हैं, वे मामले निम्नलिखित है – (1) प्रधानमंत्री की नियुक्ति व (2) लोकसभा का विघटन। समय–समय पर भारत के सभी राष्ट्रपतियों ने देश के सांविधानिक विकास में सार्थक भूमिका का निर्वाह किया है। अब तक के राष्ट्रपतियों में राष्ट्रपति आर॰ वैकटरमण का कार्यकाल बहुत ही चुनौतीपूर्ण रहा है। उन्हें अपने कार्यकाल में तीन अल्पमतीय प्रधानमंत्रियों–विश्वासनाथ प्रतापसिंह, चन्द्रशेखर और पी॰वी॰ नरसिंहाराव को नियुक्त करना पड़ा और काफी राजनीतिक उतार–चढ़ावों से गुजरना पड़ा। वर्तमान राष्ट्रपति डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा को भी देश की विषम राजनीतिक परिस्थितियों में कार्य करना पड़ रहा। देश में एक के बाद एक उजागर हुए घोटालों ने भारतीय संसदीय व्यवस्था को झकझोर दिया है। देश के चोटी के राजनेताओं पर शक की सुई घूमने की स्थिति विकट हो गई। उसके बाद ग्यारवीं लोकसभा के चुनाव के बाद अस्तित्व में आई 'त्रिशंकु संसद' ने राष्ट्रपति की कठिनाईयों को और बढ़ा दिया लेकिन डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा ने स्थिति का दूरदर्शितापर्ण आंकलन करके पहले अटलबिहारी वाजपेयी तथा बाद में एच॰ डी॰ देवगौड़ा को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करके राजनीतिक अनिश्चिता का पटाक्षेप कर दिया। इस प्रकरण में राष्ट्रपति की भूमिका सही थी। देश के अधिकांश प्रख्यात संविधानवेत्ताओं और विधिवेत्ताओं ने राष्ट्रपति की भूमिका को संविधान–सम्मत बताया। राष्ट्रपति ने राजनीतिक–गत्यावरोध को समाप्त करके यह स्पष्ट कर दिया कि भारत की संसदीय व्यवस्था में इस प्रकार की सार्थकता और उपयोगिता है।

सारांश में भारत का राष्ट्रपति देश का संवैधानिक अध्यक्ष है और प्रायः सभी राष्ट्रपतियों ने इसी अनुरूप कार्य किया है। उन्होंने प्रधानमंत्रियों के साथ संघर्ष की स्थिति का सहारा कभी नहीं लिया।इससे भारत की राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व ही प्राप्त हुआ है।

2.3 प्रधानमंत्री (Prime Minister)

संसदीय शासन–प्रणाली में प्रधानमंत्री को केन्द्रीय स्थिति प्राप्त होती है। वह सम्पूर्ण शासन–प्रणाली का मूल आधार है और राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु है। प्रधानमंत्री कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त वह अपने दल और जनता का सर्वोच्च नेता तथा देश का प्रमुख प्रवक्ता होता है। इस प्रकार वह मंत्रीमण्डल का प्रमुख, संसद का नेता, देश का नेता, दल का नेता और सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का मूर्तिमान स्वरूप होता है। डॉ॰ अम्बेडकर के शब्दों में, "वास्तव में प्रधानमंत्री सम्पूर्ण तंत्र की धुरी है।" भारत की संसदीय शासन–व्यवस्था में प्रधानमंत्री का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसे देश का राजनीतिक या वास्तविक प्रशासक कहा जाता है। उसे ही देश की गृह–नीति, वित्तीय नीति और विदेश नीति का प्रवक्ता माना जाता है। वह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का भाग्य–विधाता माना जाता है। उसे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की धुरी तथा गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र–बिन्दु कहा जाता है। भारतीय संविधान में प्रधानमंत्री पद का उल्लेख केवल तीन बार किया गया है :–

प्रथम, अनुच्छेद 74 (1) में उल्लेख है कि "राष्ट्रपति को अपने कार्यों का सम्पादन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रि–परिषद होगी जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा।"

द्वितीय, अनुच्छेद 75 (1) में लिखा है कि "प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की मन्त्रणा से करेगा।"

तृतीय, अनुच्छेद 78 में राष्ट्रपति को जानकारी देने के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री के दायित्व के बारे में कहा गया है कि प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संघ–कार्यों का प्रशासन सम्बन्धी मंत्रि–परिषद के समस्त निश्चयों तथा विधि–निर्माण के लिए प्रस्थपनाएं राष्ट्रपति को पहुंचाएगा।

(ख) संघ–कार्यों का प्रशासन सम्बन्धी तथा विधि निर्माण विषयक प्रस्थापनाओं सम्बन्धी जिस जानकारी को राष्ट्रपति मंगाए उसका देगा। (Functions of Cabinet Secretariat)

(ग) किसी विषय को जिस पर किसी मंत्री ने निश्चय ले लिया हो किन्तु मंत्रि–परिषद ने विचार न किया हो, राष्ट्रपति के चाहने पर परिषद् प्रमुख के विचार के लिए रखेगा।

प्रधानमंत्री मंत्रि–परिषद का प्रधान होने के कारण उसका नेतृत्व करता है। प्रधानमंत्री की स्थिति का पता बहुत कुछ उसके चुने जाने के तरीके से लगाया जा सकता है। यदि प्रधानमंत्री का चयन उसके स्वयं के व्यक्तित्व तथा दल में उसकी सुदृढ़ स्वतंत्र स्थिति के कारण हुआ है तो प्रधानमंत्री की स्थिति निश्चय ही मजबूत होती है। प्रधानमंत्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू का कांग्रेस दल के संसदीय संगठन पक्ष पर पूर्ण वर्चस्व होने के कारण वे अत्यंत शक्तिशाली प्रधानमंत्री माने जाते थे। यदि प्रधानमंत्री के चयन में दलीय नेताओं, मुख्य–मन्त्रियों आदि का विशेष हाथ है तो प्रधानमंत्री की स्थिति कमजोर होगी। सन् 1964 में पंडित जवाहरलाल नेहरू के देहावसान के बाद जब लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमंत्री बनाया गया तो कामराज ने यही कहा था कि प्रधानमंत्री 'समकक्षों में प्रथम' से अधिक नहीं होगा। अतः प्रारम्भ में उनकी स्थिति कमजोर थी। सन् 1966 में इन्दिरा गाँधी को प्रधानमंत्री पद प्रतिष्ठित करने में कांग्रेस अध्यक्ष के॰ कामराज नाडार, सिण्डीकेट गुट तथा राज्यों के मुख्यमन्त्रियों की भूमिका रही। लेकिन सन् 1969 में कांग्रेस–विभाजन और राष्ट्रपति के चुनाव में वी॰वी॰ गिरि की विजय के बाद देश की राजनीतिक व्यवस्था पर श्रीमती गाँधी की पकड़ धीरे–धीरे मजबूत होती गई। उन्होंने अपनी प्रतिभा और नेतृत्व–क्षमता का परिचय देते हुए

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर अपना निर्विवाद नेतृत्व कायम कर लिया। जो गौरवपूर्ण और सुदृढ़ स्थिति पं॰ जवाहरलाल नेहरू की थी, वही स्थिति उनकी पुत्री इन्दिरा गाँधी ने अर्जित कर ली। सन् 1984 के बाद राजीव गाँधी ने भी अल्पकाल में अपनी नेतृत्व–क्षमता का परिचय दे दिया था और वह एक शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में उभरे। उनका अपने दल के संसदीय और संगठन पक्ष पर पूर्ण नियन्त्रण था। वे अपने दल के निर्विवाद नेता बने रहे। मोरारजी देसाई शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में कभी उभर नहीं सके। चौधर चरणसिंह कामचलाऊ सरकार के प्रधानमंत्री रहे तथा कभी अपनी क्षमता का परिचय नहीं दे सके। विश्वनाथ प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर भी अल्पमतीय प्रधानमंत्री होने के कारण प्रभावशाली प्रधानमंत्री के रूप में अपनी छवि नहीं बना सके। पी॰वी॰ नरसिम्हाराव की स्थिति भी प्रारम्भ में सुदृढ़ नहीं थी। लोकसभा में कांग्रेस (इ) को पूर्ण बहुमत प्राप्त होने पर उनकी स्थिति सुदृढ़ हुई। सन् 1996 के लोकसभा चुनाव के बाद किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने पर राष्ट्रपति डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा ने लोकसभा में सबसे बड़े दल के नेता अटलबिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त किया। लेकिन वे मात्र 13 दिनों तक ही अपने पद पर रहे। उसके बाद उन्होंने 13 दलीय संयुक्त मोर्चे के नेता एच॰डी॰ देवगौड़ा को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, जिनकी स्थिति भी सुदृढ़ नहीं थी। उसके बाद इन्द्र कुमार गुजराल की भी यही स्थिति रही। 1998 के लोकसभा चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुम न मिलने पर राष्ट्रपति के॰आर॰ नारायणन् ने भाजपा एवं सहयोगी दलों के नेता के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया, जिनकी स्थिति भी सुदृढ़ नहीं रही। क्योंकि सहयोगी दलों द्वारा बार–बार समर्थन वापसी की धमकी दी जाती रही। इसी घटन क्रम में 14 अप्रैल को भाजपा के सहयोगी दलों ने अपना समर्थन वापिस ले लिया। जिसके कारण राष्ट्रपति ने अगले दिन प्रधानमंत्री को विश्वासमत प्राप्त करने को कहा। लोकसभा में विश्वास प्रस्ताव पर 26 घंटे बहस चली जिसके बाद मतदान हुआ जिसमें भाजपा को 269 एवं विपक्ष को 270 मत मिले। अतः एक मत के अन्तर से भाजपा सरकार का पतन हो गया। वर्ष 1999 में एनडीए की सरकार अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी किन्तु मिली–जुली सरकार की स्थिति सुदृढ़ नहीं थी। एनडीए सरकार के पश्चात् यूपीए सरकार में भी प्रधानमंत्री की स्थिति जस की तस बनी रही। वर्ष 2014 में एनडीए के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में बनी। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की स्थिति सुदृढ़ मानी जाती है। प्रधानमंत्री की स्थिति शक्तियों और उत्तरदायित्वों को समुचित रूप से समझने के लिए मंत्रिमण्डल और राष्ट्रपति के साथ उसके सम्बन्धों तथा विभिन्न क्षेत्रों में उसकी महत्वपूर्ण स्थिति और जिम्मेदारियोंहोना जरूरी है।

भारत के प्रधानमंत्रीयों का कार्यकाल चित्रण :–

क्रम संख्या	नाम	कार्यकाल
1	श्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू	15 अगस्त 1947 – 27 मई 1964
2	श्री गुलजारी लाल नन्दा	27 मई 1964 – 09 जून 1964
3	श्री लाल बहादुर शास्त्री	09 जून 1964 –11 जनवरी 1966
4	श्री गुलजारी लाल नन्दा	11 जनवरी 1966 – 24 जनवरी 1966
5	श्रीमती इंदिरा गाँधी	24 जनवरी 1966 – 24 मार्च 1977
6	श्री मोरारजी देसाई	24 मार्च 1977 – 28 जुलाई 1979
7	श्री चरण सिंह	28 जुलाई 1979 – 14 जनवरी 1980
8	श्रीमती इंदिरा गाँधी	14 जनवरी 1980 – 31 अक्तूबर 1984
9	श्री राजीव गाँधी	31 अक्तूबर 1984 – 02 दिसम्बर 1989
10	श्री वी॰ पी॰ सिंह	02 दिसम्बर 1989 – 10 नवम्बर 1990
11	श्री चन्द्र शेखर	10 नवम्बर 1990 – 21 जून 1991

12	श्री वी॰पी॰सिंह नरसिम्हा राव	21 जून 1991 – 16 मई 1996
13	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	16 मई 1996 – 01 जून 1996
14	श्री एच॰डी॰ देवेगौड़ा	01 जून 1996 – 21 अप्रैल 1997
15	श्री इन्द्र कुमार गुजराल	21 अप्रैल 1997 – 19 मार्च 1998
16	श्री अटल बिहारी वाजपेयी	19 मार्च 1998 – 22 मई 2004
17	श्री मनमोहन सिंह	22 मई 2004 – 16 मई 2014
18	श्री नरेन्द्र मोदी	16 मई 2014 – वर्तमान

- **प्रधानमंत्री राजनीतिक प्रमुख के रूप में (Prime Minister As a Political Chief)**

भारतीय संविधान–निर्माताओं ने संविधान–सभा में काफी विचार–विमर्श के पश्चात् ब्रिटेन की संसदीय व्यवस्था को अपनाया। संसदीय प्रणाली में गतिशलता का तत्व अधिक मात्रा में देखने को मिलता है, इसलिए ब्रिटेन में सत्ता का केन्द्र समय के साथ बदलता रहा। प्रारम्भ में सत्ता का केन्द्र राजा से हटाकर हाउस ऑफ लॉर्डस से हाउस ऑफ कॉमन्स, हाउस ऑफ कॉमन्स से कैबिनट और आज कैबिनेट से हटकर प्रधानमंत्री वास्तविक सत्ता का केन्द्र बन गया है। सत्रहवीं सदी में इंग्लैण्ड में इस व्यवस्था को तब अपनाया गया जब इस व्यवस्था के अन्तर्गत सत्ता का वास्तविक केन्द्र संसद थी। लेकिन 19 वीं सदी में सक्रिय विविध तत्वों ने इस सदी के समाप्त होते–होते संसद् के स्थान परर मंत्रिमण्डल को सत्ता का वास्तविक केन्द्र बना दिया। 20 वीं सदी में विश्व के सभी कार्यपालिका–प्रधान देशों में सत्ता के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति देखी गयी है। ब्रिटेन में युद्ध व आर्थिक संकट की दिशा में बढ़ने वाले विविध चरणों में मन्त्रिमण्डलीय प्रमुख में सत्ता के केन्द्रीकरण को जन्म दिया और एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई, जिसे युद्ध के बाद के वर्षो (1945) में "प्रधानमन्त्रीय शासन" नाम दिया गया और प्रधानमन्त्री वास्तविक कार्यपालिका बन गया। भारत में प्रधानंत्री की यही स्थिति है।

प्रधानमंत्री मुख्य प्रशासनिक, सत्ता का स्त्रोत, मुख्य नीति–निर्माता तथा मुख्य राजनयिक के रूप में राष्ट्र के समक्ष उपस्थित हुआ है। हम भले ही "प्रधानमन्त्रीय शासन" शब्द का प्रयोग न करें, लेकिन स्वतंत्रता के बाद से भारत में यह देखने को मिलता है कि कैबिनेट तथा समस्त शासन के सन्दर्भ में सामान्यतः प्रधानमंत्री को बहुत अधिक प्रमुखता की स्थिति प्राप्त हो गयी है। मंत्रिमण्डल के सदस्यों की स्थिति प्रधानमंत्री के एजेण्ट जैसी होकर रह गई है। संदर्भ में कहा जा सकता है कि विगत कुछ वर्षों की राजनीतिक घटनाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में प्रधानमंत्री मन्त्रिपरिषद का ही केन्द्र बिन्दु नहीं है, अपितु वह सम्पूर्ण राष्ट्र का केन्द्र बिन्दु हैं। इस सम्बन्ध में ग्रीव्ज का कथन है कि "सरकार राष्ट्र की स्वामी है और प्रधानमंत्री सरकार का स्वामी है" जाती भारत के प्रधानमंत्री के विषय में सत्य प्रतीत होता है। भारत में महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नीतियों वित्त, सुरक्षा, राष्ट्रीय अर्थ–नीति आदि के निर्माण में प्रधानमंत्री की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वस्तुतः वह सम्पूर्ण संवैधानिक ढाँचे और राज्य–व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु हैं।

जनमत और प्रधानमंत्री (Prime Minister and Public Opinion)

वास्त्व में प्रधानमंत्री और जनता दोनों ही परस्पर अन्तर्सम्बन्धित और अन्योन्याश्रित है। प्रधानमंत्री की भूमिका, कार्यों एवं नीतियों का प्रभाव जनता पर पड़ता है और जनमत के समर्थन एवं असमर्थन का प्रभाव प्रधानमंत्री पर पड़ता है। प्रधानमंत्री केवल सत्तारूढ़ दल का ही नहीं, सम्पूर्ण देश का नेता होता है। अतः जनमत के विश्वास, बहुमत एवं लोकप्रियता को अपने पक्ष में कर, वह अत्यन्त शक्तिशाली प्रधानीमंत्री की भूमिका सम्पादित कर सकता है। अपने प्रबल जन–समर्थन के कारण ही पं॰ जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती इन्दिरा गाँधी, अटलबिहारी वाजपेयी व नरेन्द्र मोदी

का 'करिश्मा' भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर छाया। ये सभी देश के जनमत को प्रभावित करने में सफल रहे। प्रधानमंत्री को जनमत का सम्मान करते हुए ही निर्णय लेना चाहिए। जो प्रधानमंत्री जनमत की उपेक्षा करता है, वह अधिक समय तक अपने पद पर बने नहीं रह सकता है।

इंग्लैण्ड के समान भारत में भी लोकसभा के बहुमत दल के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाता है। इस प्रकार सामान्य परिस्थतियों में प्रधानमंत्री के चयन में राष्ट्रपति को कोई विवेकात्मक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। किन्तु विशेष परिस्थतियों में प्रधानमंत्री के चयन में राष्ट्रपति के द्वारा अपने विवेक का प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि जुलाई 1979 और नवम्बर 1990 में प्रधानमंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति ने अपने विवके का प्रयोग किया।

प्रधानमंत्री और मन्त्रिमण्डल (Prime Minister and Cabinet)

मन्त्रिपरिषद तथा मन्त्रिमण्डल के निर्माण में प्रधानमंत्री स्वतंत्र होता है। प्रधानमंत्री ही निर्णय करता है कि मन्त्रिमण्डल में किसे सम्मिलित करें और कितने मन्त्री हो। वह चाहे तो अपने दल के बाहर के व्यक्ति को भी मन्त्री नियुक्त कर सकता है। वह मन्त्रियों के बीच विभागों का वितरण भी अपनी इच्छानुसार करता है। वह मन्त्री पदों में जब चाहे तब परिवर्तन कर सकता है तथा किसी मन्त्री के कार्यो अथवा आचरण से असन्तुष्ट होने पर उससे त्यागपत्र माँग सकता है। उसे मन्त्रियों को पदच्युत करने का भी अधिकार प्राप्त है। प्रधानमंत्री को किसी मन्त्री को पदोन्नत या पदावनत करने का अधिकार है। वह मन्त्रिपरिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है। मन्त्रिपरिषद की समस्त गतिविधियों एवं कार्रवाईयों का संचालन प्रधानमंत्री ही करता है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिपरिषद की एकता तथा सुदृढ़ता कायम रखता है। इस प्रकार प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद का पूर्ण निर्माता होता है। संक्षेप में, वह सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद एवं प्रशासन का निरीक्षण एवं नियंत्रण करता है।

प्रधानमंत्री और संसद (Prime Minister and Parliament)

प्रधानमंत्री लोकसभा का नेता होता है। लोकसभा में बहुमत दल के नेता को ही राष्ट्रपति मन्त्रिपरिषद गठित करने के लिए आमन्त्रित करता है। प्रधानमंत्री यह पद इसी आधार पर प्राप्त करता है कि उसे सदन में बहुमत प्राप्त है। यह भी सत्य है कि प्रधानमंत्री की शक्ति और प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पीछे कितना बहुमत तथा स्थायित्व है। प्रधानमंत्री व्यवस्थापन और प्रशासन से सम्बन्धित नीतियों के निर्धारण में मन्त्रिमण्डल द्वारा संसद का पथ–प्रदर्शन करता है। वह संसद में मन्त्रिमण्डल का प्रतिनिधित्व करता है, महत्वपूर्ण विधेयकों पर भाषण देता है, सरकारी नीति के मुख्य विषयों के सम्बन्ध में घोषणाएं करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर भाषण देता है। शासकीय विधेयकों को प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार तैयार किया जाता है। देश की आर्थिक तथा विदेश–नीति और वार्षिक बजट के निर्धारण में वह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की सलाह पर ही लोकसभा को भंग करता है। अपने कुशल एवं प्रभावशाली नेतृत्व से प्रधानमंत्री संसद की प्रतिष्ठा बनाये रखता है।

• प्रधानमंत्री और सुरक्षा–नीति (Prime Minister and Security Policy)

सुरक्षा सम्बन्धी मामलों पर प्रधानमंत्री की पूरी दृष्टि रहती है। रक्षा–मंत्री को प्रधानमंत्री के निकट सम्पर्क और पूर्ण नियन्त्रण में रहकर ही कार्य करना पड़ता है। देश की हार–जीत का श्रेय प्रधानमंत्री को ही मिलता है। सन् 1962 में चीन के आक्रमण के समय भारत की हार के लिए पंडित जवाहरलाल नेहरू आलोचना के पात्र बने थे। सन् 1965 के युद्ध में पाकिस्तान पर विजय का सेहरा लालबहादुर शास्त्री के सिर पर बाँधा गया था। सन् 1971 में भारत–पाक युद्ध में भारत की शानदार विजय और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में बांग्लादेश की स्थापना का श्रेय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कमाया। 1999 में पाकिस्तान के साथ हुए कारगिल संघर्ष में भारत की जीत का सेहरा प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के सिर बाँधा गया। कब युद्ध करना है? कब युद्ध बंद करना है? किस महाशक्ति से क्या सहायता लेना है? किस राष्ट्र के प्रति क्या नीति अपनानी है? किस प्रकार से शांति समझौते करने है? संयुक्त राष्ट्र संघ में क्या

कूटनीतिक पैतरे दिखाने है? इस प्रकार के सभी निर्णय अन्तिम रूप से प्रधानमंत्री द्वारा लिए जाते है। समस्त सैनिक शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के निर्देशानुसार ही किया जाता है। युद्धकाल मे भारत के प्रधानमंत्री मोर्चो पर जाकर अपने सैनिकों का साहस बढ़ाते रहे हैं और वह सिद्ध करते रहे हैं कि वे देश की सुरक्षा का कितना महान उत्तरदायित्व संभाले हुए हैं।

- **प्रधानमंत्री और अर्थतंत्र (Prime Minister and Economic Structure)**

आर्थिक मामलों पर भी प्रधानमंत्री का पूर्ण नियन्त्रण रहता है। देश के अर्थतंत्र की सफलता–असफलता का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। कई बार प्रधानमंत्री स्वयं वित्त मंत्रालय को संभाल लेता है। जुलाई 1969 से 1970 तक वित्त विभाग श्रीमती गाँधी ने अपने पास ही रखा था। वित्त–मंत्री कोई राष्ट्रीय महत्व का फैसला स्वयं नहीं कर सकता है। बजट–निर्माण का कार्य प्रधानमंत्री से परामर्श लेकर ही किय जाता है। राज्यों को वित्तीय सहायता देने सम्बन्धी अंतिम निर्णय के पीछे प्रधानमंत्री का परामर्श और भूमिका ही प्रमुख होती है। योजनाओं के सफल संचालन का भार उसे ही उठाना पड़ता है। देश की जनता अपनी आर्थिक कठिनाईयों से छुटकारा पाने के लिए प्रधानमंत्री की ओर देखती है। जनता को संतोष देकर प्रधानमंत्री न केवल अपनी सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ाता है बल्कि आम चुनावों में अपने दल को विजयी बनाता है। समय–समय पर प्रधानमंत्री राष्ट्र के समक्ष महत्वपूर्ण आर्थिक कार्यक्रम प्रस्तावित करता है। श्रीमती गांधी द्वारा घोषित बीस–सूत्रीय कार्यक्रम राष्ट्रीय कार्यक्रम बन गया था। प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा घोषित बीस–सूत्रीय कार्यक्रम को भी राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में अंगीकार किया गया। प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव एवं अटल बिहारी वाजपेयी की उदार आर्थिक नीतियों ने अर्थ–व्यवस्था के नये स्वरूप का निर्धारण किया है। प्रधानमंत्री डा॰ मनमोहन सिंह ने अपने कार्यकाल में अनेक आर्थिक सुधार कर भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान की। नरेन्द्र मोदी सरकार ने भी स्टार्टअप इण्डिया, मेक इन इण्डिया, ग्राम स्वामित्व तथा औद्योगिक विकास के लिए कई कदम उठाए हैं जिससे अर्थव्यवस्था को सहयोग मिलेगा।

- **प्रधानमंत्री और विधि–निर्माण (Prime Minister and Law Making)**

विधि निर्माण संसद का अधिकार और कृत्य है, लेकिन व्यवहार में इस क्षेत्र में भी प्रधानमंत्री की निर्णायक भूमिका होती है। संसद में बहुमत दल का नेता होने के कारण वह संसद से इच्छित कानून बनवा सकता है, संविधान में संशोधन करवा सकता है लेकिन प्रधानमंत्री यह सब कुछ करते समय जनता और विरोधी दलों का ख्याल रखता है। अपना उत्तरदायित्व समझने वाला कोई भी प्रधानमंत्री निरंकुशता के मार्ग पर नहीं चलेगा। भारत में अब तक जो भी प्रधानमंत्री हुए हैं उन्होंने लोकतांत्रिक आदर्शों और परम्पराओं के प्रति पूर्ण निष्ठा रखे हुए अपनी शक्तियों का प्रयोग किया है।

मुख्यमन्त्रियों के साथ सम्बन्ध (Relations with Chief Ministers)

प्रधानमंत्री का राज्यों की राजनीति पर नियन्त्रण होता है। एक शक्तिशाली प्रधानमंत्री का मुख्यमन्त्रियों पर पूर्ण नियंत्रण होता है। राज्यों के मुख्यमंत्रियों के साथ अच्छे सम्बन्ध होने पर प्रधानमंत्री की स्थिति मजबूत होती है और वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह तथा अपनी नीतियों का कार्यान्वयन अधिक प्रभावी ढंग से कर सकता है। यदि प्रधानमंत्री की अपेक्षा मुख्यमन्त्रियों का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है तो प्रधानमंत्री की स्थिति पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

- **प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति (Prime Minister and President)**

सांविधानिक व्यवस्था की मांग है कि राष्ट्रपति वही करे जो प्रधानमंत्री परामर्श दें। प्रधानमंत्री का शक्तिशाली व्यक्तित्व और व्यापक प्रभाव किसी भी व्यक्ति को राष्ट्रपति पद पर आसीन कराने में निर्णायक भूमिका अदा करता है। भारत के सभी राष्ट्रपतियों ने इस व्यवस्था और परम्परा से सहमति प्रकट की है कि राष्ट्रपति को मंत्रि–परिषद

की मन्त्रणा के अनुसार ही अपनी शक्यिों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का निर्वहन करना है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्रपति के पद का कोई महत्व नहीं है। वह राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है और सरकार द्वारा शासन–संचालन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह दलगत राजनीति से ऊपर रहकर और एक निष्पक्ष व्यक्ति होने के नाते मंत्रि–परिषद के निर्णयों पर काफी प्रभाव डाल सकता है और समय–समय पर प्रधानमंत्री को उचित सलाह दे सकता है। ये सब बातें कुछ हद तक उसके व्यक्तित्व पर आधारित है। यही हमारे संविधान की मूल भावना है और हम आशा करते हैं कि इस उच्चतम पद को धारण करने वाले इस भावना का समुचित आदर करेंगे और जनतंत्र को सफल बनाने में अपना अमूल्य योगदान देने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

- **प्रधानमंत्री और दल (Prime Minister and Party)**

वह अपने दल का घोषित अथवा अघोषित सर्वमान्य नेता होता है। दल के सदस्य प्रधानमंत्री के नेतृत्व में ही राजनीतिक गतिविधियां निश्चित करते हैं। दल के कार्यक्रमों को उसका आशीर्वाद प्राप्त हैं। उसकी इच्छा के विरूद्ध कोई कार्य नहीं करते। प्रधानमंत्री की समस्त शक्ति इस बात पर ही आधारित है कि वह अपने दल में महत्वपूर्ण स्थान दलीय नेतृत्व को क्षमता एवं दल के बहुमत का समर्थन प्राप्त कर सकने में सक्षम है अथवा नहीं? यदि उसका दल संसद में अपने बहुमत को खो देता है या उसके विरूद्ध विद्रोह कर देता है तो उसकी समस्त शक्ति समाप्त हो जाती है।

व्यावहारिक रूप से दलीय अध्यक्ष का चयन प्रधानमंत्री करता था, परन्तु नेहरू के दहावसान के बाद दल के अध्यक्ष कामराज नाडार ने लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती इन्दिरा गाधी के प्रधानमंत्री के रूप में चयन करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। सन् 1967 के आम चुनाव के पश्चात श्रीमती इन्दिरा गांधी ने पकड़ मजबूत कर ली और कांग्रेस के विभाजन के पश्चात् तो कांग्रेस दल पर श्रीमती गांधी का प्रभुत्व स्थापित हो गया। 1971 के लोकसभा चुनाव के पश्चात प्रधानमंत्री के पद ने दल–अध्यक्ष के पद को आच्छादित कर दिया और औपचारिक शक्तियां न होते हुए भी प्रधानमंत्री वास्तविक रूप से दल और सरकार दोनों का ही नेता बन गया। तभी तत्कालीन कांग्रेसाध्यक्ष देवकान्त बरूआ ने प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के लिए कहा था – 'इन्दिरा ही भारत है, भारत ही इन्दिरा है' सन् 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी तो प्रधानमंत्री और दल के अध्यक्ष चन्द्रशेखर के सम्बन्धों के विषय में स्पष्ट स्थिति नहीं रही, परन्तु ऐसा लगा कि दल का अध्यक्ष अपनी संवैधानिक शक्तियों और अधिकारों के प्रति जागरूक है। जनता सरकार अल्पकालिक रही और जनवरी 1980 में श्रीमती इन्दिरा गांधी विशाल बहुमत के साथ पुनः प्रधानमंत्री बनी और दल–अध्यक्ष का पद प्रधानमंत्री के पद द्वारा पुनः उसी प्रकार आच्छादित हो गया जिस प्रकार 1971 के बाद हुआ था। 31 अक्तूबर 1984 को उनकी हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने। प्रधानमंत्री के साथ–साथ राजीव गांधी दल के अध्यक्ष भी रहे। दल के संचालन में उनकी भूमिका निर्णायक और सर्वोपरि रही। बाद के प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह और चन्द्रशेखर की अपने दल पर पकड़ सशक्त नहीं होने से वे शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप में नहीं उभर सके। नरसिम्हाराव भी प्रधानमंत्री के साथ–साथ कांगेसाध्यक्ष भी बने रहे। अटल बिहारी वाजपेयी की गठबन्धन सरकार होने के कारण वे शक्तिशाली प्रधानमंत्री नहीं बन पाए और यही स्थिति डा॰ मनमोहन सिंह की रही। भारतीय जनता पाटी की बहुमत वाली नरेन्द्र मोदी सरकार केन्द्रीकृत एवं शक्तिशाली नेतृत्व वाली सरकार है जिसमें प्रधानमंत्री मुख्य निर्णयकर्ता है।

प्रधानमंत्री वास्तविक कार्यपालिका के रूप में (Prime Minister as Real Execative)

प्रधानमंत्री का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व नीति–निर्धारण और क्रियान्वयन, प्रशासनिक दक्षता, जनता और सरकार के बीच प्रभावशाली सम्बन्ध तथा सरकार का संसद के साथ सम्पर्क बनाये रखना है। यह कार्य प्रायः मुख्य कार्यपालिका के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। उसके कार्य संक्षेप में योजना, संगठन, स्टाफ, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन, बजट, लोक–सम्पर्क और प्रशासनिक सुधार करना है। मुख्य कार्यपालिका दो प्रकार के कार्य करती है – राजनीतिक और

प्रशासनिक। राजनीतिक कार्यों के अन्तर्गत शासन की नीतियों एवं कार्यक्रमों के लिए विविध समर्थन प्राप्त करना, उसे बनाये रखना तथा राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करना आदि कार्य आते हैं। इन कार्यों में हम प्रशासकीय नीति के निर्धारण, नियोजन जनसम्पर्क और प्रशासकीय सुधारों को सम्मिलित कर सकते हैं। प्रधानमंत्री मुख्य कार्यपालिका, प्रशासनिक प्रमुख और महाप्रबन्धक के रूप में अधिक भूमिका निभाने लगा है। यहां हम प्रधानमंत्री प्रशासनिक कार्यों की चर्चा करेंगे।

- **योजना बनाना (Plan Formulation)**

योजना एक विवेकपूर्ण, गतिशील, सोच–समझकर किया गया प्रयास है। विकासशील देशों के लिए मुख्य कार्यपालिका का सबसे महत्वपूर्ण कार्य योजना तथा प्रशासकीय नीति की मुख्य रूपरेखाएं निर्धारित करना है। भारत में नीती आयोग, जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है, योजना बनाने का कार्य करता है। आर्थिक योजना के साथ–साथ प्रशासकीय योजना बनाने का कार्य मुख्य कार्यपालिका करती है। नीति–प्रशासन के लिए वह मार्गदर्शक का कार्य करती है। कार्यपालिका प्रायः 'सामान्य नीति' का निर्धारण करती है किन्तु कभी–कभी प्रशासकों को विशिष्ट नीति सम्बन्धी निर्देश भी देती है। उसका पर्याप्त समय महत्वपूर्ण नीतियों के निर्माण में व्यतीत होता है। यह नीतियों से सम्बन्धित अनेक ऐसे निर्णय करती है जो प्रशासन के कार्य–संचालन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। पदाधिकारी अनेक महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में मुख्य कार्यपालिका से विचार–विमर्श करते हैं तथा उसका परामर्श लेते हैं। इस प्रकार भारत में प्रधानमंत्री देश के लिए आर्थिक एवं प्रशासकीय नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **संगठनकर्ता के रूप में (As an Organizer)**

संगठन बनाना या औपचारिक स्वरूप की स्थापना करना जिससे निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य को अनुविभागों में व्यवस्थित, निर्धारित तथा समन्वित करना मुख्य कार्यपालिका का दायित्व है। वह संगठनात्मक ढाँचा तैयार करती है और उसमें संशोधन करती है। अनेक कानूनों को लागू करने के लिए विधायिकाओं को प्रायः विभागों, ब्यूरो, आयोगों, कार्यलयों तथा निगमों की स्थापना करनी पड़ती है। इन इकाइयों के आन्तरिक संगठन से सम्बन्धित विस्तृत बातों की पूर्ति मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही की जाती है। साथ ही वह संगठनों की विस्तृत रूपरेखाएं निर्धारित करती है जिनके द्वारा नीति के लक्ष्य पूरे किये जाते है। अनेक बार प्रशासन को संकटों का सामना करना पड़ता है और ऐसी परिस्थितियों में यह सम्भव है कि मुख्य कार्यपालिका द्वारा नये अभिकरणों की स्थापना की जाये अथवा पहले से स्थापित अभिकरणों का पुर्नसंठन किया जाये।

- **कर्मचारी नियुक्त करना (Appointment of Employees)**

कमचारी सम्बन्धी समस्त कार्य, जैसे कर्मचारियों की भर्ती करना, उन्हें प्रशिक्षित करना तथा कार्य के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना आदि कार्य स्टांफिग के अन्तर्गत आते हैं। प्रायः सभी देशों में राज्य के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति करने का अधिकार मुख्य कार्यपालिका को प्राप्त होता है। भारत में, वास्तव में सभी महत्वपूर्ण पदों की नियुक्तियां प्रधानमंत्री (मुख्य कार्यपालिका) के द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति नाममात्र का मुख्य कार्यपालिका होता है। इन नियुक्तियों में राज्यों के राज्यपाल, राजदूत, उच्चतम न्यायलय तथा राज्यों के उच्च न्यायलयों के मुख्य न्यायधीश एवं अन्य न्यायधीश, महान्यायवादी, संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्य, सेना के जनरल आदि सम्मिलित है। मुख्य कार्यपालिका जिन पदाधिकारियों की नियुक्ति करती है उनको पदच्युत करने का अधिकार भी उसे प्राप्त होता है। नियुक्ति के सम्बन्ध में भारतीय प्रधानमंत्री अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना में अधिक शक्तिशाली है। अमेरिका में नियुक्तियों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सीनेट का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है जबकि हमारे प्रधानमंत्री पर ऐसा कोई नियंत्रण नहीं है। दल के नेता के रूप में प्रधानमंत्री वास्तव में

अपने शासित राज्यों के मुख्यमंत्रियों और अन्य मंत्रियों का चयन करता है। कैबिनेट नियुक्ति समिति के अध्यक्ष के रूप में वह विभिन्न पदों पर इच्छानुसार नियुक्तियां करता है।

- **निर्देश देना (Direction Provider)**

किसी संगठन में काम करने की प्रेरणा निर्देशों एवं आदेशों से प्राप्त की जाती है। मुख्य कार्यपालिका विशेष रूप से प्रधानमंत्री समय–समय पर विभिन्न प्रकार के आदेश, निर्देश तथा घोषणा करती है। उसका कर्त्तव्य यह देखना है कि कानून समुचित रीति से क्रियान्वित किये जा रहे हैं अथवा नहीं और सरकार का प्रत्येक अभिकरण एवं विभाग ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है या नहीं। मुख्य कार्यपालिका ही विभिन्न विभागीय अध्यक्षों को विशिष्ट एवं सामान्य नीति सम्बन्धी निर्देश जारी करती है ताकि प्रशासन का कार्य उचित रूप से चलता रहे। निर्देश और आदेश जारी करके वह प्रशासन को नेतृत्व प्रदान करती है। जब हस्तक्षेप करना आवश्यक होता है तो वह हस्तक्षेप भी करती है। जब उसके पथ–प्रदर्शन की मांग होती है तो उसे पथ–प्रदर्शन करना पड़ता है। उसके निर्देश अधिशासी, घोषणाओं, पत्रों एवं परिपत्रों आदि का रूप ले लेते है। इन्हीं आज्ञाओं, निर्देशों तथा सूचनाओं के द्वारा मुख्य कार्यपालिका देश की प्रशासकीय मशीनरी पर प्रभावपूर्ण रीति से अपना प्रभुत्व एवं नियंत्रण स्थापित करती है।

- **समन्वय स्थापित करना (Establish Coordination)**

प्रशासनिक संगठनों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना विधानमंत्री का एक महत्वपूर्ण कार्य है। हजारों अधिकारी, कर्मचारी, संगठन तथा कार्यालय प्रशासन में कार्य करते हैं। उनकी क्रियाओं में उचित रूप से इसलिए समन्वय किया जाता है ताकि उनमें परस्पर किसी भी प्रकार का टकराव एवं विद्धष उत्पन्न न हो। मुख्य कार्यपालिका को विभिन्न विभागों की भिन्न–भिन्न क्रियाओं से परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय स्थापित करना पड़ता है। उसे विभिन्न प्रशासकीय विभागों के मतभेदों को सुलझाकर उनमें परस्पर एकता स्थापित करनी पड़ती है। मुख्य कार्यपालिका विभिन्न विभागों में परस्पर विवादों एवं मतभेदों को सुलझाने का अन्तिम आश्रय है। सम्पूर्ण प्रशासकीय मशीनरी के सुचारू एवं कुशल संचालन हेतु उसके कार्यों में समन्वय स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। समन्वय स्थापित करने के लिए वह अन्तर्विभागीय समितियों का निर्माण तथा सम्पर्क अधिकारियों की नियुक्ति कर सकता है। विभिन्न विभागों में समुचित समन्वय एवं तालमेल बनाये रखने के लिए वह अनेक अन्तर्विभागीय कड़ियों की स्थापना करता है।

- **प्रतिवेदन निर्देशक (Reporting Director)**

प्रतिवेदन देना अर्थात् जिनके प्रति कार्यपालिका उत्तरदायी है उन्हें शासन की गतिविधियों से अवगत रखना। इसका अर्थ यह है कि कार्यपालिका को अभिलेखों, अनुसंधानों तथा निरीक्षण द्वारा अपने अधीनस्थों के साथ–साथ स्वयं अपने आपको भी अवगत रखना चाहिए। निर्देशन के दो पहलू हैं – (i) संचार की ऐसी पद्धति जिसमें सूचना निम्न स्तर से उच्च स्तर तक सरलता से पहुंच सके। (ii) एक ऐसी कार्य–पद्धति स्थापित करना जिनके माध्यम से प्रधानमंत्री संसद, व विभिन्न दबाव–समूहों को सूचित कर सके। सम्पूर्ण प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण और उस पर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रशासन के प्रमुख होने के रूप से प्रधानमंत्री का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए, विभिन्न प्रशासकीय अभिकरणों तथा विभागों की कार्यप्रणाली से सम्बन्धित समस्त जानकारी उसको प्राप्त होनी चाहिए। वह प्रशासकीय विभागों से उनके कार्यो से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी, अभिलेख, कागजात अथवा सूचनाएं मांग सकता है। उसे जांच–पड़ताल करने की आज्ञा देने का अधिकार होता है। प्रधानमंत्री को माह में विभागों के सचिवों से अवश्य मिलना चाहिए जिससे उसे विभागों की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त होती रहे। इसी प्रकार विभिन्न मन्त्रियों को भी अपने–अपने विभागों के प्रमुख निर्णयों की जानकारी प्रधानमंत्री को देते रहना चाहिए। प्रधानमंत्री अपने इन कार्यो के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है।

- **बजट प्रबंधन (Budget Management)**

बजट में बजट निर्माण, क्रियान्वयन वित्तीय एवं कर सम्बन्धी योजनाएं बनाना, लेखांकन तथा उस पर नियंत्रण रखना सम्मिलित है। प्रधानमंत्री को मुख्य कार्यपालिका के रूप में पर्याप्त वित्तीय सत्ता प्राप्त होती है। बजट तैयार करना, देश की वित्तीय एवं आर्थिक नीति का निर्माण करना, बजट को विधायिका में प्रस्तुत करना तथा अनुमोदन होने के पश्चात् उसको लागू करना प्रधानमंत्री के कर्त्तव्य क्षेत्र का भाग है। संक्षेप में, वित्तीय क्षेत्र में मुख्य कार्यपालिका देश को दिशा प्रदान करती है।

- **लोक–सम्पर्क (Public Relations)**

श्रेष्ठ लोक–सम्बन्ध आज नेतृत्व के महत्वपूर्ण गुण माने जाने लगे है और इसके महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। अधिकांश सरकारों में लोक सम्पर्क का विभिन्न नामों से जाने वाला एक स्वतंत्र विभाग होता है। इसके साथ–साथ राष्ट्रीय, राजकीय और जिला स्तर पर लोक–सम्पर्क अधिकारी होते हैं। लोकतंत्र में मुख्य कार्यपालिका को स्वयं का स्वतः लोक–सम्पर्क अधिकारी होना पड़ता हैं। अवस्थी एवं माहेश्वरी के अनुसार "इतिहास में कुछ नेता तो अपने लोक–सम्बन्ध का कार्य स्वयं ही उत्तम तरीके से करते रहें हैं। राष्ट्रपति एफ॰ डी॰ रूजवेल्ट ने अन्य जन–नेताओं की अपेक्षा इस विषय पर अधिक कुशलता से विचार किया था। जनता की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, भय, इच्छाओं या अनिच्छाओं को समझने और उसी के अनुसार काम करने की उनमें विचित्र योग्यता थी। इसी प्रकार महायुद्ध के दौरान प्रधानमंत्री चर्चिल की भी वैसी ही स्थिति तथा अपनी जनता पर सत्ता थी। उन्होंने एक औसत अंग्रेज की इच्छा तथा निश्चय को नाजी आक्रमण तथा अत्याचार से लड़ने और उसे पराजित करने में एकजुट कर दिया था। प्रधानमंत्री नेहरू भी इसी श्रेणी में आते हैं। सरकार की ओर से वह जनता से सर्वाधिक प्रभावशाली लोक–सम्बन्धों के लिए सदैव इच्छुक एवं प्रयत्नशील रहते थे और कांग्रेस दल के लिए वह सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे। नेहरू के इस कथन में उस समय बिल्कुल अतिशयोक्ति नहीं थी जब उन्होंने कहा था कि "भारत में वे स्वयं पर्यटकों के लिए बहुत बड़े आकर्षण के केन्द्र रहे हैं।" इस प्रकार संक्षेप में लोकतंत्र में लोक–सम्बन्ध का विशेष महत्व होता है।

प्रधानमंत्री की भूमिका (Role of Prime Minister)

वास्तविक तथा राजनीतिक प्रकृति की कार्यपालिका के रूप में पदस्थापित भारत का प्रधानमंत्री देश की जनता की आकांक्षाओं, विपक्ष की आलोचनाओं तथा शासन–सत्ता की असीम शक्तियों का केन्द्र बिन्दु होता है। प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुए उसे अनेक प्रकार की भूमिकाएं निर्वाहित करनी पड़ती है।

- देश के लोकतात्रिक शासक के रूप में (As a Democratic Ruler)

  भारत प्रजातांत्रिक मूल्यों में आस्था रखने वाला कल्याणकारी राज्य है जहां संसदीय लोकतंत्र की शासन प्रणाली प्रवर्तित है। यद्यपि संवैधानिक दृष्टि से राष्ट्रपति की स्थिति सर्वोच्च प्रतीत होती है तथापि देश का वास्तविक शासक प्रधानमंत्री होता है। देश में लोकतंत्र की वास्तविक स्थापना, जनसाधारण के कष्ट निवारण तथा संवैधानिक निर्देशों की अनुपालना मुख्यतः प्रधानमंत्री तथा उसकी मंत्रिपरिषद के अन्य मंत्रियों की कार्यशैली से प्रभावति होती है। अधिसंख्य मामलों में प्रधानमंत्री जनता–जनार्दन द्वारा समर्थन प्राप्त राजनीतिक दल का वरिष्ठ तथा योग्य राजनीतिज्ञ होत है जो शासन के माध्यम से राजनीतिक तथा प्रशासनिक लक्ष्यों की पूर्ति करता है। सत्तारूढ़ राजनीतिक दल की छवि तथा प्रधानमंत्री की कार्यशैली एक–दूसरे को प्रभावित करती है। आम जनता भी अधिकांश मामलों में प्रधानमंत्री की भूमिका को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करती है क्योंकि प्रधानमंत्री जन आकांक्षाओं की पूर्ति का स्वाभाविक स्त्रोत है। यही कारण है कि प्रधानमंत्री की असफलता सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के पतन का कारण बन जाती है।

- नीति निर्माता के रूप में (As a Policy Framer)

  संसदीय लोकतंत्र में प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद, व्यवस्थापिका या विधायिका का एक भाग होते हैं। इस प्रकार प्रधानमंत्री कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों में प्रभावी भूमिका निभाता है। प्रधानमंत्री ही वह व्यक्ति है जो राष्ट्रीय समस्याओं, कार्यक्रमों, योजनाओं तथा सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए आधारभूत नीतियां बनाता है। यद्यपि ये नीतियां उस दल की मान्यताओं से अत्याधिक प्रभावित होती है जिस दल का प्रधानमंत्री सदस्य होता है। नीति–निरूपण में प्रधानमंत्री की भूमिका सर्वोपरि तथा निर्णायक होती है। स्वतंत्रता से अब तक पदासीन रहे प्रधानमंत्रियों ने आर्थिक नियोजन तथा सामाजिक विकास में अपनी दलगत तथा व्यक्तिगत मान्यताओं पर आधारित नीतियों को देश में लागू किया है फिर चाहे ये नीतियां राष्ट्रीय आम सहमति के विरूद्ध ही क्यों न रही हो। वस्तुतः किसी भी देश का लोक प्रशासन मुख्यतः उस देश के शासन की नीतियों, राजनेताओं के चरित्र तथ जनसहयोग की भावना से प्रभावित होता है। रक्षा नीति, विदेश नीति, औद्योगिक नीति तथा आयात–निर्यात नीति इत्यादि ऐसी नीतियां है जो देश के विकास की दशा और दिशा दोनों को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। नीतियों के अतिरिक्त अन्य सामयिक कानूनों, योजनाओं तथा विकासपूरक कार्यक्रमों के निर्माण, क्रियान्वयन, नियंत्रण तथा मूल्यांकन में प्रधानमंत्री की विशेष भूमिका होती है।

- विकासोन्मुख नेतृत्व के रूप में (As a Development Leader)

  भारत उन देशों में सम्मिलित हैं जहां सामाजिक–आर्थिक विकास के लक्ष्य नियोजन प्रणाली के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। नीती आयोग के अध्यक्ष के रूप में प्रधानमंत्री का विकास के क्रम में दृष्टिकोण तथा पहल करने की क्षमता राष्ट्र के समग्र विकास में निश्चित रूप से निर्णायक भमिका निर्वाहित करता है। राष्ट्र की समस्याओं, जनाकांक्षाओं, उपलब्ध संसाधनों तथा कुशल प्रशासनिक तंत्र के साथ दूरदर्शितापूर्वक समन्वय स्थापित करने वाला प्रधानमंत्री ही विकास को नये आयाम दे सकता है। प्रथम प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण को अपनाते हुए सामाजिक–आर्थिक विकास का प्रयास किया, वहीं राजीव गांधी ने अति आधुनिक तकनीकी साधनों का विकास कार्यों में प्रयोग प्राथमिक रूप से स्वीकार किया। जबकि नरसिम्हा राव ने सरकार को सामाजिक विकास में अपरिहार्य मानते हुए शेष क्षेत्रों में निजी भागीदारी का आह्वान किया था। मूलतः प्रधानमंत्री की नीतियां, कार्यशैली तथ नौकरशाही के साथ सम्बन्ध उसके विकासोन्मुख नेतृत्व को प्रभावित करते हैं। विकास के प्रति अलग–अलग राजनीतिक दलों में अपना–अपना दृष्टिकोण होता है। इसी कारण विभिन्न प्रधानमंत्रियों के कार्यकाल में विकास कार्यों की दिशा अंशतः प्रभावित होती रहती है क्योंकि मूल तथा स्थायी विकास कार्य तो स्वाभाविक रूप से जारी रहते है।

- संसद में राजनीतिज्ञ के रूप में (As a Politician in Parliament)

  सामान्यतः प्रधानमंत्री लोकसभा का सदस्य होता है। बहुमत वाले दल का सर्वसम्मत नेता होने के कारण उसे अन्य राजनीतिक दलों अर्थात् विपक्ष के नेताओं के साथ राजनीतिक–वैचारिक भिन्नता तथा प्रधानमंत्री होने के कारण स्वाभाविक शासकीय दबाव का सामना करना पड़ता है। संसद में प्रस्तुत किये जाने वाले विधेयक, प्रस्ताव तथा आम बजट में प्रधानमंत्री की कार्यशैली स्पष्ट दिखाई देती है। इसी प्रकार प्रश्नकाल, विश्वास मत प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव इत्यादि के समय प्रधानमंत्री को सत्तारूढ़ दल तथा देश की वास्तविक कार्यपालिका दोनों दृष्टियों से बहस में उत्तर देना पड़ता है। किसी भी प्रधानमंत्री के लिए विपक्ष की आलोचना तथा तथ्यात्मक आरोपों का समाना करना एक दुष्कर कार्य होता है। संसद में प्रधानमंत्री न केवल अपनी सरकार के बचाव की रक्षात्मक भूमिका निभाता है अपितु कई बार एक चतुर राजनीतिज्ञ के

रूप में विशिष्ट रणनीति भी तैयार करता है। प्रधानमंत्री होने के नाते उसे अपने स्वयं के दल, सहयोगी दल तथा विपक्षी दलों के सांसदों की क्षेत्रीय तथा व्यक्तिगत समस्याओं का निवारण भी करना पड़ता है क्योंकि प्रधानमंत्री एक प्रकार से सभी का संकटमोचक होता है। लोकसभा के अध्यक्ष के साथ मिलकर बैठकों की कार्यसूची बनाने तथा सदन में व्यवस्था स्थापित करने में भी प्रधानमंत्री का बहुत योगदान होता है।

- अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर देश के प्रतिनिधि के रूप में (As a Representetive of Nation at International level)

  तेजी से भागती दुनिया में हो रहे ध्रुवीकरणों के कारण किसी भी देश की छवि उसके गुटों से भी प्रभावित होती है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, राष्ट्रमण्डल तथा सार्क के माध्यम से भारत की छवि न्यूनाधिक मात्रा में निष्पक्ष तथा शांतिप्रिय राष्ट्र की है। इसके लिए सभी प्रधानमंत्रियों की विचारधारा तथा अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की सार्थक उपस्थिति महत्वपूर्ण रही है। संयुक्त राष्ट्र की सभाओं तथा अन्य अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं के क्रम में भारत के पक्ष को स्पष्ट करने में प्रधानमंत्री की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

प्रधानमंत्री निरंकुश नहीं बन सकता (The Prime Minister cannot be a Despot)

प्रधानमंत्री की शक्तियां असीमित हैं तथापि यह एक अधिनायक अथवा तानाशाह के रूप में आचरण नहीं कर सकता। वह स्थापित नियमों के अनुसार प्रतिबन्धों के अधीन रहकर देश का शासन करता है और इन प्रतिबन्धों की अवहेलना करने पर उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। प्रधानमंत्री की शक्तियों पर निम्नलिखित प्रभावशाली अंकुश बने रहते हैंः–

- **लोकमत का नियन्त्रण (Control of Public Openion)** : कोई भी प्रधानमंत्री लोकमत को नहीं ठुकरा सकता है। पं॰ जवाहरलाल नेहरू जनमत के समर्थन पर ही निर्विवाद नेता बने रहे और आपातकाल के कारण श्रीमती इन्दिरा गांधी जनमत का समर्थन खोकर 1977 के लोकसभा चुनाव में पराजित हुई। जनमत के दबाव के कारण ही प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने मानहानि विधेयक, 1988 को वापस ले लिया था। मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा के तुरन्त बाद प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह बहुत अधिक लोकप्रिय हो गये थे, परन्तु शीघ्र ही यह स्थिति उनके पतन का प्रमुख कारण बनी।

- **लोकसभा के बहुमत का प्रतिबन्ध (Restriction of majority in Lok Sabha)** : प्रधानमंत्री भी लोकसभा के बल पर ही अपनी शक्तियों का प्रयोग कर पाता है। एक बार बहुमत मिलने का अर्थ यह नहीं है कि वह सदा ही बना रहेगा। निरंकुश आचरण करने पर प्रधानमंत्री बहुमत का विश्वास खो सकता है और अपनी स्थिति को खतरे में डाल सकता है।

- **साथी मन्त्रियों का अंकुश (Control of Associated Ministers)** : प्रधानमंत्री अपनी कैबिनेट के महत्वपूर्ण और व्यापक प्रभाव वाले साथियों की इच्छा के विरूद्ध कार्य करने से प्रायः बचता है उनका विश्वास खोकर व दल में अपनी स्थिति को दुर्बल नहीं बनाना चाहेगा।

- **दलीय प्रतिबन्ध (Party Restriction)** : अपने दल के बल पर ही कोई व्यक्ति प्रधानमंत्री पद पर बैठता है, अतः उसे कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पूर्व अपने दल को भी विश्वास में लेना पड़ता है। संसदीय दल के समर्थन के बिना कोई भी प्रधानमंत्री अपने पद पर अधिक समय तक नहीं बना रह सकता है।

- **राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें (Oposition Party Governments of states)** : राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें प्रधानमंत्री की तानाशाही प्रवृत्ति पर अंकुश लगा सकती है। यदि केन्द्र और सभी राज्यों में एक ही दल सत्तारूढ़ हो तो भी राज्य सरकारों की इच्छा का सम्मान प्रधानमंत्री को करना पड़ता है।

- **मुख्यमंत्रियों का दबाव (Chief Ministers Pressure)** : प्रधानमंत्री को अपनी नीतियों के सफल कार्यान्वयन के लिए राज्यों के मुख्यमंत्रियों को साथ लेकर चलना पड़ता है। उनके युक्तिसंगत दबाव को वह सहन करता है। अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग मुख्यमंत्री अपने सदपरामर्श से प्रधानमंत्री को निरंकुशता की ओर नहीं जाने देते हैं।

- **राष्ट्रपति का परामर्श (Advice of President)** : यद्यपि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श के अनुसार अपनी शक्तियों और कार्यों का निर्वहन करता है, लेकिन वह अपने परामर्श, अपनी सामाजिक चेतावनी आदि के माध्यम से प्रधानमंत्री के ऐसे कदमों पर प्रभाव डाल सकते हैं जो निरंकुशता की ओर बढ़ रहे हो। प्रधानमंत्री को एक मैत्रीपूर्ण राष्ट्रपति की आवश्यकता सदैव ही होती है। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की असीमित शक्तियों पर नियंत्रण रखता है।

- **विरोधी दल (Oppostion Party)** : विरोधी दलों की रचनात्मक आलोचना प्रधानमंत्री को निरंकुशता की ओर ले जाने से रोकती है। सुदृढ़ और संगठित विपक्ष तो इस मामले में और भी प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। वे संसद में और संसद के बाहर प्रधानमंत्री पर नियंत्रण रखते हैं।

- **बहुदलीय व्यवस्था (Multiparty System)** : केन्द्र में एक ही दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो या जो बहुमत मिले वह बहुत कम सदस्यों का हो तो यह स्थिति भी प्रधानमंत्री को नियन्त्रित रखती है। अल्पमतीय प्रधानमंत्री की स्थिति कमजोर बनी रहती है।

- **न्यायपालिका (Judiciary)** : संविधान विरोधी कानून को असंवैधानिक घोषित करने की जो शक्ति न्यायपालिका को है वह भी प्रधानमंत्री को बड़ी सीमा तक नियन्त्रित रखती है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति से ही प्रधानमंत्री पर नियन्त्रण स्थापित हो पाता है।

- **निष्पक्ष निर्वाचन आयोग (Independent Election Commission)**: संविधान में एक निष्पक्ष निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है और यह व्यवस्था भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में, चुनाव सम्बन्धी मामलों में प्रधानमंत्री की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध आरोपित करती है।

इस प्रकार के अंकुशों और प्रतिबन्धों के रहते हुए भारत का कोई भी प्रधानमंत्री तानाशाह नहीं बन सकता। वह संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहकर ही अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है।

प्रधानमंत्री की स्थिति (Status of Prime Minister)

मार्च 1977 में जनता पार्टी के सत्ता में आने पर प्रधानमंत्री की स्थिति और सत्ता में काफी बदलाव आया। मोररजी देसाई ने प्रधानमंत्री बनने के बाद कहा था कि अब वे "प्रधानमंत्रीय सरकार" के स्थान पर समकक्षों में प्रथम, प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करेंगे। साथ ही वह प्रयास करेंगे कि वास्तविक "कैबिनेट सरकार" स्थापित की जा सके। मोरारजी देसाई ने ऐसा ही किया और उनके समय में कैबिनेट को वह स्थिति प्राप्त हुई जैसा कि संविधान में उल्लेखित था। कैबिनेट की अनौपचारिक बैठकें होती थी जिनमें कैबिनेट मंत्रियों के अतिक्ति योजना आयोग के उपाध्यक्ष, जनता पार्टी के अध्यक्ष और कभ–कभी राज्यमंत्री भी हिस्सा लेते थे। यह एक नवीन संवैधानिक प्रयोग था। जनता पाटी चार विभिन्न दलों के घटकों से मिलकर बनी थी, इसलिए प्रधानमंत्री मन्त्रिपरिषद का निर्माण करने में स्वतंत्र नहीं थे। उन्हें समस्त घटकों को साथ लेकर चलना पड़ता था। इस प्रकार यह प्रयोग अपने पूर्व कांग्रेस दल की परम्परा के ठीक विपरीत था जिसमें सरकारी तंत्र का पार्टी के संगठनात्मक खण्ड पर प्रभाव होता था। अतः प्रधानमंत्री की तुलना में दल के अध्यक्ष की भूमिका सहायक जैसी थी। इसके विपरीत, जनता पार्टी के अध्यक्ष की एक स्वतंत्र हैसियत थी और सरकार द्वारा नीति–निर्धारण एवं निर्णय लेने में उससे परामर्श लिया जाता था। वह

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया एक हिस्सा था। यह नवीन विकास एक स्वस्थ परम्परा थी।

1979–80 के चुनाव में इन्दिरा गांधी के सत्ता में आने पर फिर से पुरानी कांग्रेस व्यवस्था स्थापित हुई। 1989 के आम चुनावों में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। कांग्रेस दल को सबसे अधिक स्थान मिले किन्तु कांग्रेस ने सरकार बनाने से इन्कार कर दिया। इस प्रकार, देश में एक नवीन घटना घटी और अल्पमत दल, जनता पार्टी ने वी॰पी॰ सिंह के नेतृत्व में सरकार का गठन किया। इस प्रकार दो विपक्षी दलों–भारतीय जनता पार्टी और साम्यवादी दल का बाहर का समर्थन प्राप्त था। यह अल्पमत सरकार मात्र ग्यारह माह सत्ता में रही और नवम्बर 1990 में सरकार गिर गयी। इसके बाद चन्द्रशेखर के नेतृत्व में दलबदलुओं से निर्मित नवीन समाजवादी दल की सरकार बनी, जिसे कांग्रेस दल का बाहर से समर्थन प्राप्त था। कुछ महीनों बाद इस गिरना स्वाभाविक था और राष्ट्रपति ने 1991 में नवीन चुनाव कराये। चुनाव में फिर से 'त्रिशंकु संसद' बनी। 21 मई 1991 को राजीव गांधी की निर्मम हत्या से भारतीय राजनीति में 'वंश शासन' की समाप्ति हुई। चुनाव में कांग्रेस दल सबसे बड़े दल के रूप में विजयी हुई किन्तु उसे पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं था। राष्ट्रपति ने कांग्रेस के वरष्ठि सदस्य पी॰वी॰ नरसिंह राव को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया। वे 22 जून 1991 को प्रधानमंत्री बने और उन्होंने अपने पांच वर्ष के कार्यकाल में सामान्य रूप से अच्छा कार्य किया। किन्तु 1994 के अन्त में हुए चार राज्यों की विधानसभा चुनावों में तीन राज्यों में कांग्रेस की पराजय के बाद उनके नेतृत्व पर प्रश्नचिन्ह लग गया। नरसिंह राव मृदभाषी, सरल एवं लोकतंत्री थे जो आम सहमति के समर्थक और विचार–विमर्श द्वारा शासन चलाने के पक्षधर थे। उन्होंने देश को स्थायित्व और सरकार को संसदीय स्वरूप प्रदान किया। 1997 के आम चुनावों के बाद लोकसभा में सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाली भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी मात्र 13 दिन के लिए प्रधानमंत्री रहे। उनके बाद 13 दलों के गठनबन्धन से निर्मित संयुक्त मोर्चे की सरकार देवगौड़ा के नेतृत्व में बनी। इस सरकार को कांग्रेस और मार्क्सवादी साम्यवादी दलों का बाहर से समर्थन प्राप्त था। यह सरकार जो कांग्रेस के समर्थन के सहारे चल रही थी, एकाएक 30 मार्च को कांग्रेस द्वारा समर्थन वापिस लेने के फलस्वरूप पदच्युत हो गयी। इस सरकार के पतन के पश्चात् पुनः इन्द्रकुमार गुजराल के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा की सरकार सत्तारूढ़ हुई। उस सरकार को कांग्रेस तथा मार्क्सवादी साम्यवादी दलों का बाहर से समर्थन प्राप्त था। प्रधानमंत्री के रूप में इन्द्रकुमार गुजराल की छवि साफ–सुथरी थी और सरकार मात्र 8 माह सत्तारूढ़ रही। कांग्रेस द्वारा पुनः समर्थन वापस लेने के बाद गुजराल सरकार ने त्यागपत्र दे दिया।

बारहवीं लोकसभा चुनाव के पश्चात् भाजपा और सहयोगी दलों के समर्थन से बनी सरकार अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में 19 मार्च 1998 को सत्तारूढ़ हुई। तेरहवीं लोकसभा 1999 के चुनाव के बाद वाजपेयी पुनः 13 अक्तूबर, 1999 को प्रधानमंत्री बनें। वर्ष 1999 से 2019 तक के चुनावों में मुख्यतौर पर वही गठबंधन सत्ता तक पहुंचा जिसने सबसे अधिक पार्टियों के साथ समझौता किया। वर्ष 1999 में एनडीए ने 19 पार्टियों के साथ गठबन्धन किया जबकि कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए ने 11 पार्टियों से गठबन्धन किया। वर्ष 2004 के लोकसभा चुनाव में एनडीए के पास 12 पार्टियां थी जबकि यूपीए 20 पार्टियों के साथ चुनाव मैदान में उतरी और डा॰ मनमोहन सिंह के नेतृत्व में सरकार बनाई। वर्ष 2009 के चुनाव में भी यूपीए के पास एनडीए से अधिक पार्टिया थी। वर्ष 2014 में फिर से एनडीए ने यूपीए के मुकाबले अधिक पार्टियों का समर्थन प्राप्त कर लिया था। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में एनडीए ने 366 सीटें जीत कर सरकार बनाई। वर्ष 2019 के आम चुनाव में भी भारतीय जनता पार्टी 303 सीटों पर जीत के साथ अपनी सरकार बनाने में सफल रही हैं। भाजप गठनबंधन के नेतृत्व ने 353 सीटों पर विजय प्राप्त की है।

2.4 प्रधानमंत्री कार्यालय (Prime Minister Office)

प्रधानमंत्री को सचिवालयी सहायता प्रदान करने के लिए स्वतंत्रता के तुरन्त पश्चात् प्रथम प्रधानमंत्री पंडित

जवाहरलाल नेहरू ने 'प्रधानमंत्री सचिवालय' की स्थापना करवाई थी जो आज प्रधानमंत्री कार्यालय या पी॰एम॰ओ॰ कहलाता है। स्वतंत्रता से पूर्व गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् पी॰एम॰ओ॰ के कार्य सम्पादित करती थी। जिस प्रकार राज्यों में मुख्यमंत्री कार्यालय शासन–सत्ता का केन्द्र बनता जा रहा है उसी प्रकार संघीय स्तर पर पी॰एम॰ओ॰ की स्थिति बन रही है। भारत सरकार के 'कार्यविधि नियम, 1961' के अन्तर्गत पी॰एम॰ओ॰ को एक विभाग का दर्जा प्राप्त है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में संसदीय शासन–व्यवस्था को अपनाया गया है। राष्ट्रपति शासन–व्यवस्था का प्रधान है। शासन के सारे कार्य उसी के नाम से सम्पादित किये जाते हैं। उसे शासन कार्यों में सहायता तथा सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था होती है। व्यवहार में प्रधानमंत्री ही राष्ट्रपति की सारी शक्तियों का उपभोग करता है अतः प्रधानमंत्री को ही देश का 'सर्वोच्च' या 'वास्तविक शासक' माना जाता है। उसे सारे देश में सबसे शक्तिशाली संस्था माना जाता है। उसे देश का मुख्य प्रशासक, राजनीतिक शासक, मंत्रिमण्डल का निर्माता, पुनर्गठनकर्ता, समन्वयकर्ता तथा नियंत्रणकर्ता, राष्ट्रीय नीतियों का निर्माता तथा आधिकारिक प्रवक्ता, सर्वोच्च मुख्यमंत्री, विदेश नीति का निर्माता तथा संचालनकर्त्ता और देश की प्रशासनिक व्यवस्था का केन्द्र–बिन्दु माना जाता है। ऐसी शक्तिशाली संस्था से सम्बद्ध होने के कारण प्रधानमंत्री सचिवालय की शक्ति और भूमिका स्वाभाविक रूप से ही महत्वपूर्ण बन जाती है। वर्तमान में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका उत्तरोत्तर रूप से बढ़ती जा रही है।

संगठन (Organization)

प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रत्यक्ष नियंत्रण स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है तथापि कई बार राज्य मंत्री या उपमंत्री का पद भी इस कार्यालय में सृजित कर दिया जाता है जैसा कि पी॰वी॰ नरसिम्हा राव सरकार ने भुवनेश चतुर्वेदी तथा बाद में असलम शेर खां को पी॰एम॰ओ॰ में राज्य मंत्री का कार्यभार दिया था। इसी प्रकार यह व्यवस्था प्रायः अल्पकालीन ही रही है।

प्रशासनिक स्तर पर पी॰एम॰ओ॰ का एक प्रधान सचिव होता है। सन् 1947 में पंडित नेहरू ने एच॰वी॰आर॰ आयंगर को प्रधान निजी सचिव नियुक्त किया। उसके पश्चात् लाल बहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्री काल में एल॰के॰झा प्रधान सचिव बने, जिन्होंने पी॰एम॰ओ॰ को एक अत्यंत महत्वपूर्ण संगठन में परिवर्तित किया। इंदिरा गांधी के शासनकाल में पी॰एन॰ हक्सर, पी॰सी॰ अलैक्जेण्डर तथा पी॰एन॰ धर, राजीव गांधी के समय सरला ग्रेवाल तथा बी॰जी॰ देशमुख एवं पी॰वी॰ नरसिम्हा राव के काल में पी॰एम॰ओ॰ का सचिव प्रधानमंत्री का अत्यंत विश्वासपात्र अधिकारी होने के कारण नीति निर्माण तथा अन्य शासकीय कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रधान सचिव के पद पर सेवारत या सेवानिवृत्त आई॰ए॰एस॰ अधिकारी अथवा किसी अन्य की नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।

प्रधान सचिव की सहायतार्थ एक अतिरिक्त सचिव, तीन संयुक्त सचिव, चार निदेशक तथा एक विशेषाधिकारी कार्यरत है जो क्रमशः कार्मिक एवं नीति विषयक मामले, विधि एवं न्याय, रेलवे, परिवहन, संचार, विशेष तथा अणुशक्ति, ग्रामीण विकास, गृह मंत्रालय समन्वय, आपातकालीन समस्याएं तथा उत्तरी–पूर्वी राज्यों के प्रकरणों में प्रमुख सचिव की सहायता करते हैं। इन अधिकारियों को प्रदत्त कार्य इस बात पर निर्भर करता है कि सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री के पास कौन से मंत्रालय हैं। विशेषाधिकारी पद पर नियुक्ति प्रायः राजनीतिक तथा मित्रता लाभो के लिए की जाती है। इन्द्र कुमार गुजराल ने जब प्रो॰ भवानी सेन गुप्ता को पी॰एम॰ओ॰ में विशेषाधिकारी नियुक्त किया तो लोकसभा में भारी हंगामा हुआ क्योंकि प्रो॰ गुप्ता भारत के परमाणु बम निर्माण के विरोधी, सी॰टी॰बी॰टी॰ के समर्थक तथा सियाचिन के मामले में पाकिस्तान के समर्थक माने जाते थे। इस विवाद के चलते प्रो॰ गुप्ता को दो दिन में ही त्यागपत्र देना पड़ा। पी॰एम॰ओ॰ में अन्य अधिकारी–कर्मचारी आवश्यकता के अनुसार नियुक्त किए जाते हैं। गृह मंत्रालय के अधीन रहे 'जम्मू–कश्मीर विभाग' को एक नवम्बर, 1994 से प्रधानमंत्री के अधीन कर दिए जाने के

कारण यह कार्यालय इससे संबंधित कार्य भी संभालता था किन्तु मई, 1998 में जम्मू–कश्मीर विभाग पुनः गृह मंत्रालय को सौंप दिया गया। आवश्यकतानुसार अन्य अनुभाग या प्रकोष्ठ भी प्रधानमंत्री कार्यालय में स्थापित किए जा सकते हैं। जैसे–अटल बिहारी वाजपेयी कार्यालय में 'अयोध्या–प्रकरण' पृथक् से बनाया हुआ था।

प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) के कार्य (Functions of Prime Minister Office)

इस कार्यालय (सचिवालय) का प्रमुख कार्य प्रधानमंत्री को उसके समस्त कार्यों एवं दायित्वों के निर्वहन में सचिवीय सहायता प्रदान करना है। देश के सम्मुख सामान्य परिस्थितियां हों अथवा आपातकालीन, प्रधानमंत्री को वास्तविक मुख्य कार्यपालिका के रूप में संघीय सरकार के समस्त प्रशासनिक एवं अन्य दायित्वों को पूर्ण करने में यह कार्यालय कदम–कदम पर सहायता करता है। प्रधानमंत्री कार्यालय प्रधानमंत्री के अतिरिक्त हाथ, आँख और कान का कार्य करता है। यह विभिन्न मामलों से संबंधित सूचना, जानकारियां, आंकड़े, सामग्री एकत्रित कर उन पर गम्भीरता से विचार करता है और आवश्यकतानुसार निर्णय लेने के लिए प्रधानमंत्री को सुझाव देता है। इस प्रकार यह कार्यालय (सचिवालय) प्रधानमंत्री के लिए अतिरिक्त मस्तिष्क का कार्य करता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय के प्रमुख कार्यों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर अधिक स्पष्ट किया जा सकता है–

- 'कार्य व्यापार नियम' सम्बन्धी कार्य (Business Operations Rules) : 'कार्य व्यापार नियमों' के तहत प्रधानमंत्री के अधीन केन्द्रीय सरकार के कुछ विभाग और मंत्रालयों का प्रत्यक्ष दायित्व होता है। इन विभागों और मंत्रालयों के कुशल संचालन का दायित्व प्रधानमंत्री के कन्धों पर होता है। इन विभागों में आन्तरिक सहयोग एवं समन्वय बनाए रखने, कुशल और प्रभावी प्रशासनिक संचालन आदि में यह कार्यालय प्रधानमंत्री को सचिवालय सहायता प्रदान करता है।

- प्रधानमंत्री को दायित्वों के पूर्ण करने में सहायता देना (Support in Performing Prime Minister's Responsibility) : भारत देश में संसदात्मक व्यवस्था के तहत प्रधानमंत्री वास्तविक राजनैतिक कार्यपालिका (सरकार) का मुखिया होता है। इस रूप में प्रधानमंत्री को केन्द्रीय सरकार के समस्त विभागों और मंत्रालयों के मध्य सहयोग और समन्वय बनाए रखना पड़ता है। यही नहीं, उसे समस्त राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों से भी सम्पर्क बनाए रखना पड़ता है। समस्त प्रशासनिक संस्थाएँ प्रधानमंत्री के कुशल प्रशासनिक नेतृत्व की अपेक्षा रखती है। केन्द्रीय सरकार की श्रेष्ठ नीतियों के निर्माण और कुशल संचालन के दायित्वों के निर्वाह में यह कार्यालय प्रधानमंत्री कार्यालय को सहायता देता है।

- योजना सम्बन्धी कार्यों में सहायता देना (Help in Planning Functions) : प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को योजना सम्बन्धी कार्यों के कुशल निर्वाह के लिए भी सचिवीय सहायता उपलब्ध कराता है। प्रधानमंत्री देश के नीती आयोग का अध्यक्ष होता है। यह संस्थान देश के चहुँमुखी विकास के लिए योजनाओं का निर्माण और मूल्यांकन करती है। ऐसी स्थिति में योजनाओं के निर्माण और मूल्यांकन में भी प्रधानमंत्री कार्यालय, प्रधानमंत्री को सचिवीय सहायता उपलब्ध कराता है।

- प्राकृतिक आपदाओं के समय सहायता देना (Assist at the time Natural Disaster) : भारत भौगोलिक दृष्टि से विविधता वाला देश है, जिसमें आए दिन देश के किसी क्षेत्र में बाढ़, अकाल, सूखा, भूकम्प, महामारी आदि अनेक प्राकृतिक आपदाएँ होती रहती हैं। इन आपदाओं से निपटने तथा जनता को तुरन्त राहत प्रदान करने के लिए 'प्रधानमंत्री राहत कोष' का निर्माण किया गया है, जिसका संचालन प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा ही किया जाता है। इस कोष से समस्त राज्यों या नागरिकों को दी गई सहायता का पूरा लेखा–जोखा रखने का दायित्व इसी कार्यालय का होता है।

- जनसम्पर्क सम्बन्धी कार्य (Public Relation Functions) : आज का युग जनसम्पर्क का युग है। सरकार के प्रमुख होने की हैसियत से प्रधानमंत्री को जनसम्पर्क बनाए रखना अति आवश्यक है। प्रधानमंत्री अपने कार्यालय के माध्यम से निरंतर प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन आदि संचार माध्यमों से जनसम्पर्क बनाए रखता है। यह जनसम्पर्क बनाए रखने का कार्य प्रधानमंत्री कार्यालय करता है। इसके अतिरिक्त जनता द्वारा प्रधानमंत्री को व्यक्तिगत तौर पर प्राप्त अनेक आवेदनों, शिकायतों, अनुरोधों का भी संतोषप्रद उत्तर देना प्रधानमंत्री कार्यालय का अनिवार्य कार्य है। इस प्रकार प्रधानमंत्री के जनसम्पर्क सम्बन्धी कार्यों को भी प्रधानमंत्री कार्यालय पूर्ण करता है।

- अन्य कार्य (Miscellaneous Functions) : वे समस्त कार्य जो किसी मंत्रालय अथवा विभाग को नहीं सौंपे गये है प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) के क्षेत्राधिकार में आ जाते हैं। यह कार्यालय प्रधानमंत्री के आवयक सरकारी कागजात तैयार करके उनके संधारण के लिए जिम्मेदार है। प्रधानमंत्री द्वारा मांगी गई सूचना, आंकड़े एवं सामग्री उपलब्ध कराता है। प्रधानमंत्री के अतिथियों का स्वागत–सत्कार करना भी इस कार्यालय का कार्य है। प्रधानमंत्री द्वारा समय–समय पर दिए जाने वाले भाषण तैयार करना भी इस कार्यालय का ही कार्य है। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री की देश–विदेश यात्राओं के विस्तृत कार्यक्रम भी यही कार्यालय तैयार करता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय के उपरोक्त महत्वपूर्ण कार्यों को देखकर समय–समय पर अनेक विद्वानों ने इसे 'सरकार का लघु स्वरूप' तथा 'लघु मंत्रिमण्डल' तक कहा है। प्रधानमंत्री कार्यालय के बढ़ते महत्व के कारण कैबिनेट सचिवालय तथा केन्द्रीय सचिवालय का महत्व कम हो गया है।

प्रधानमंत्री कार्यालय की बदलती भूमिका (Changing Role of Prime Minister Office)

प्रधानमंत्री कार्यालय (सचिवालय) की भूमिका सदैव देश के प्रशासन में एक–सी नहीं रही है। समय के साथ–साथ इसकी भूमिका में भी परिवर्तन होते रहे हैं। इस कार्यालय की भूमिका पर इसमें रहे सचिवों की पृष्ठभूमि, व्यक्तित्व, महत्वाकांक्षा, कार्यक्षमता, कार्यशैली और प्रधानमंत्री द्वारा उन पर किए गए विश्वास का भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा है। प्रधानमंत्री कार्यालय की बदलती भूमिका का वर्णन काल–क्रम के अनुसार निम्नांकित प्रकार से रहा है–

पं॰ जवाहरलाल नेहरू का शासनकाल (15 अगस्त 1947–1964) : नेहरू जी स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे। उनके शासनकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका प्रधानमंत्री को केवल सचिवीय सहायता देने तक ही सीमित थी। नेहरू के काल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका ज्यादा प्रभावी नहीं थी क्योंकि नेहरू जी ने अपने काल में कैबिनेट सचिवालय को अधिक महत्व दिया।

लालबहादुर शास्त्री का शासनकाल (1964 से 1966) : नेहरू जी के बाद शास्त्री जी देश के प्रधानमंत्री बनाए गये। शास्त्री जी के काल में प्रधानमंत्री सचिवालय को प्रभावशाली और शक्तिशाली भूमिका प्राप्त हुई। नेहरू जी एवं शास्त्री जी के प्रशासन में यह अन्तर था कि नेहरू जी कुछ मंत्रालय स्वयं के पास रखते थे जबकि शास्त्री जी अपने स्वयं के पास कोई विभाग या मंत्रालय नहीं रखते थे। सम्भवतः इसी कारण शास्त्री जी की निर्भरता कैबिनेट सचिवालय कि तुलना में प्रधानमंत्री सचिवालय पर बढ़ गई थी। शास्त्री जी मंत्रिमण्डल की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करते थे।

इन्दिरा गांधी का (प्रथम) शासनकाल (1966–1977) : 24 जनवरी, 1966 को श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारतीय शासन की बागडोर संभाली। जब देश की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी बनी तब प्रधानमंत्री सचिवालय के प्रधान पद पर एल.के. झा थे। झा एक अनुभवी और योग्य सचिव थे। इसलिए इंदिरा गांधी ने प्रधानमंत्री सचिवालय को अत्यधिक महत्व दिया। इंदिरा गांधी सभी प्रकार के कार्यों में झा से परामर्श लेती थी। झा को वह इतना महत्व देती थी कि शायद

ही कोई निर्णय वह उनके बिना लेती थी। मंत्रालयों तथा कैबिनेट सचिवालय का काम तो इन्हें क्रियान्वित करने का ही था। इस प्रकार इन्दिरा गांधी के इस काल में प्रधानमंत्री सचिवालय की भूमिका तथा महत्व अत्यधिक प्रभावी और शक्तिशाली था।

मोरारजी देसाई (जनता पार्टी) का शासन काल (1977–79) : मोरारजी देसाई ने देश की सता संभालते ही प्रधानमंत्री सचिवालय का नाम बदलकर प्रधानमंत्री कार्यालय कर दिया। प्रधानमंत्री के सचिव पद से पी.एन. धर को हटाकर वी. शंकर को नियुक्त किया। लोकतांत्रिक रूप प्रदान किया। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने इसी क्रम में प्रधानमंत्री कार्यालय के आकार और शक्तियों में कमी की इस कार्यालय का स्वरूप वही हो गया जो नेहरू काल में था। निजी सचिव और गिने–चुने सहायक मात्र रह गये।

इंदिरा गांधी का (द्वितीय) शासनकाल (1980–1984) : जनवरी, 1980 के आम चुनाव के बाद इन्दिरा गांधी दूसरी बार देश की प्रधानमंत्री बनीं। अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए इन्दिरा गांधी ने फिर से प्रधानमंत्री सचिवालय को शक्ति का केन्द्र बनाया। इसके अधिकारियों और कर्मचारियों की संख्या में फिर से वृद्धि की गई। डॉ॰ पी.सी. अलेक्जेण्डर को संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यालय से बुलाकर प्रधानमंत्री सचिवालय का प्रधान सचिव नियुक्त किया। उन्हें 'प्रिंसीपल सचिव' बनाया गया। आर.के. धवन को प्रधानमंत्री का निजी सचिव बनाया गया। इंदिरा गांधी के द्वितीय काल के शासन में भी प्रधानमंत्री सचिवालय अन्य सचिवालयों तथा मंत्रालयों की तुलना में काफी शक्तिशाली रहा।

राजीव गांधी का शासनकाल (1984 से 1991) : राजीव गांधी को प्रशासनिक राजनैतिक कार्यों का ज्यादा अनुभव नहीं था, अतः प्रधानमंत्री सचिवालय पर राजीव गांधी की अश्रितता स्वाभाविक थी राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री सचिवालय का विस्तार करके इसकी शक्तियों में वृद्धि की। राजीव गांधी हर मामलों में अपने प्रधान सचिव से परामर्श लेते थे। राजीव गांधी के शासनकाल में प्रधानमंत्री सचिवालय देश की सत्ता में इतना छाया हुआ था कि उसे 'लघु मंत्रिमण्डल' कहा जाता था।

पी.वी. नरसिम्हाराव का शासनकाल (1991 से 1996) : नरसिम्हाराव ने अपने प्रधानमंत्री काल में प्रधानमत्री सचिवालय को महत्व दिया। लेकिन इतना नहीं जितना इंदिरा गांधी एवं राजीव गांधी ने दिया। लेकिन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने अपने कार्यालय में 1992 में प्रधानमंत्री सचिवालय में 'अयोध्या प्रकोष्ठ' स्थापित करके एक नई परम्परा डाली।

अटलबिहारी वाजपेयी, एच.डी. देवेगौड़ा एवं इन्द्रकुमार गुजराल का कार्यकाल (जुलाई 1996 से दिसम्बर 1999 तक) : इस काल में तीनों ही प्रधानमंत्री को स्पष्ट बहुमत नहीं था, अतः प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका प्रभावी नहीं रही। इस प्रकार 1947 से 1999 तक प्रधानमंत्री सचिवालय के आकार, शक्तियों में समय के अनुसार वृद्धि तथा कमी होती गई। अक्टूबर 1999 से 13वीं लोकसभा में राजग के सर्वसम्मत नेता अटलबिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री बने और उन्हें 542 सदस्यों की लोकसभा में 300 सदस्यों का बहुमत प्राप्त था। प्रधानमंत्री कार्यालय की छवि को लेकर समय–समय पर आलोचना होती रही हैं।

डॉ॰ मनमोहन सिंह का कार्यकाल (22 मई 2004 से 26 मई 2014) : वर्ष 2004 में डॉ॰ मनमोहन के नेत्तृत्व में अन्य दलों के गठबन्धन के साथ यू.पी.ए. सरकार बनी। किंतु इस कार्यकाल में भी प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका तथा महत्व अधिक शक्तिशाली नहीं था। कार्यात्मक मामलों में प्रधानमंत्री कार्यालय अलग संस्था बन गया था। सुब्रमण्यम समिति की सिफारिशों के अनुसार सुरक्षा पहलुओं की जिम्मेदारियों से इसे अलग कर दिया गया था।

नरेंद्र मोदी (26 मई 2014 से वर्तमान तक) : सरकार के प्रमुख होने और मुख्य कार्यकारी अधिकारी होने के नाते प्रधानमंत्री देश की राजनैतिक और प्रशासनिक व्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण एवं प्रामाणिक भूमिका निभाता है। मनमोहन सिंह सरकार के पश्चात् नरेन्द्र मोदी सरकार के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय शक्ति का केन्द्र है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने कार्यकाल में एक उच्च दायित्व के अतिरिक्त प्रधान पद की कार्यालय में शुरूआत की

है। प्रधानमंत्री कार्यालय का प्रभाव प्रधानमंत्री की निजी प्रकृति का प्रतिबिंब है।

2.5 मंत्रीमण्डल सचिवालय (Cabinet Secretariat)

मंत्रिमण्डल सचिवालय एक ऐसा निकाय है जो उच्च स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण समन्वयकारी भूमिका निभाता है और यह प्रधान मंत्री के निर्देश के अधीन कार्य करता है। स्वतंत्रता से पुर्व गवर्नर जरनल या वायसराय की कार्यकारी परिषद् ही मंत्रिमंडल सचिवालय की भूमिका निभाती थी। लॉर्ड वेलिंग्टन (1931–36) वह प्रथम गवर्नर जनरल थे जिन्होंने अपने निजी सचिव को सन् 1936 से केबिनेट की बैठकों में उपस्थित होने तथा कार्यवाही का विवरण लिखने की अनुमति प्रदान की थी। इसी वर्ष केबिनेट का एक नया पद सृजित किया गया जबकि पूर्व में गवर्नर जनरल का निजी सचिव ही केबिनेट सचिव होता था। सर एरिक कोट्स भारत के प्रथम केबिनेट सचिव नियुक्त हुए। स्वतंत्रता के पश्चात् गवर्नर जनरल के स्थान पर प्रधानमंत्री की पद स्थिति सामने आयी। भारत विभाजन तथा स्वतंत्रता के कारण अनुभवी आई॰सी॰एस॰ अधिकारियों की कमी होने के परिणामस्वरूप केबिनेट सचिवालय को प्रधानमंत्री सचिवालय के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। स्वतंत्रता के बाद एन॰आर॰ पिल्लै प्रथम केबिनेट सचिव नियुक्त किए गए। उन्होंने लन्दन जाकर ब्रिटिश केबिनेट सचिवालय की संरचना तथा कार्यप्रणाली का अध्ययन किया तथा भारत आकर आवश्यक परामर्श सरकार को प्रदान किया। सन् 1948 में आर्थिक तथा सांख्यिकी इकाई इस सचिवालय से जोड़ दी गई। योजना आयोग के निर्माण के पश्चात् यह इकाई केबिनेट सचिवालय से हटा दी गई लेकिन केन्द्रीय सांख्यिकी इकाई इस सचिवालय को दी गई। भारतीय में ओ॰ एण्ड एम॰ (संगठन एवं पद्धति) नामक संभाग बनाया गया जो मार्च, 1964 में गृह मंत्रालय के अधीन गठित प्रशासनिक सुधार विभाग को स्थानान्तरित कर दिया। सन् 1947 के विभाजन, सन् 1962 के चीन आक्रमण तथा सन् 1965 के पाकिस्तान आक्रमण के कारण केबिनेट सचिवालय में गुप्तचर शाखा तथा आपातकालीन शाखा स्थापित की गई थी जो शरणार्थी समस्या, राष्ट्रीय सुरक्षा तथा पुनर्वास संबंधित कार्य सम्पादित करती थी। सन् 1973 में इस सचिवालय के अधीन लगभग 6 विभाग कार्यरत थे। सन् 1973 में ही गृह मंत्रालय से प्रशासनिक सुधार विभाग लेकर वापिस केबिनेट सचिवालय में स्थापित किया गया। सन् 1977 में गृह मंत्रालय को कार्मिक विभाग तथा ओ॰ एण्ड एम॰ स्थानान्तरित कर दिया गया जो अब स्वतंत्र रूप में "कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय" कहलाता है। इस प्रकार केबिनेट सचिवालय की संरचना में निरन्तर परिवर्तन आता रहा है।

मन्त्रिमण्डल सचिवालय का संगठन (Organisation of Cabinet Secretariat)

केन्द्रीय मंत्रिमंडल का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है अतः मंत्रिमण्डल सचिवालय के शीर्ष पर भी प्रधानमंत्री ही आसीन होता है। प्रशासनिक स्तर पर इस सचिवालय का प्रमुख मंत्रिमंडल सचिव कहलाता है, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम तथा योग्यतम लोक सेवक होने के कारण देश का सर्वोच्च प्रशासनिक पद धारण करता है। केबिनेट सचिव केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत कार्यरत समस्त मंत्रालयों तथा विभागों के कार्मिक तंत्र को भी निर्देशित करता है जबकि प्रधानमंत्री का प्रमुख प्रशासनिक सलाहकार होने के कारण वह मंत्रिमण्डल की बैठकों, कार्यसूची तथा निर्णयों के क्रियान्वयन में महती भूमिका निभाता है। केबिनेट सचिव के अधीन तीन सचिव क्रमशः सुरक्षा, समन्वय तथा अनुसंधान एवं विश्लेषण खण्ड (Research and Analysis Wing-RAW) तथा एक निदेशक, लोक शिकायत निवारण के कार्य सम्पादित करते हैं। प्रथम खण्ड का प्रभारी सचिव मुख्यतः प्रधानमंत्री की सुरक्षा, विशेष सुरक्षा कमान्डो की व्यवस्था, पूर्व प्रधानमंत्रियों तथा अतिविशिष्ट सुरक्षा श्रेणी प्राप्त व्यक्तियों की रक्षा से संबंधित कार्य निर्वाहित करता है। यह पद आई॰पी॰एस॰ अधिकारी द्वारा धारण किया जाता है। जिसके अधीन निदेशक (Special Protection Group-SPG) तथा एक संयुक्त सचिव भी कार्यरत होता है। एस॰पी॰जी॰ की स्थापना सन् 1984–85 में की गई थी। इस खण्ड में रक्षा सेवाओं के अधिकारी भी कार्यरत रहते हैं। सचिवालय का दूसरा खण्ड समन्वय का होता है जिसका प्रमुख एक सचिव तथा उसके अधीन एक अतिरिक्त सचिव तथा दो संयुक्त सचिव क्रमशः समन्वय

तथा संयुक्त वार्ता समिति होते हैं। इस खण्ड में अधिकांश अधिकारी आई॰ए॰एस॰ तथा आई॰पी॰एस॰ होते हैं। यह खण्ड मंत्रिमण्डल की बैठकों की कार्यसूची बनाने, मंत्रियों को सूचना देने, बैठक की आवश्यक व्यवस्थाएं करने तथा महत्वपूर्ण फाइलों के रख–रखाव इत्यादि का कार्य करता है।

रक्षा एवं पुलिस अधिकारियों से युक्त केबिनेट सचिवालय का तीसरा खण्ड अनुसंधान एवं विश्लेषण खण्ड (रॉ) से संबंधित है जिसका प्रमुख एक सचिव होता है जिसके अधीन विशेष सचिव, संयुक्त सचिव (2), निदेशक (3), महानिरीक्षक (2) तथा अन्य अधिकारी कार्यरत हैं। यह खण्ड आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा एवं गुप्तचर एजेन्सी का कार्य निर्वाहित करता है जिसे रक्षा एवं गृह मंत्रालयों से समन्वय एवं सहायता प्राप्त होती है। रॉ की स्थापना सन् 1968 में की गई थी तथा आर॰एन॰ काव इसके प्रथम प्रमुख बने। केबिनेट सचिव का चौथा खण्ड 'लोक शिकायत निदेशालय' का है। एक निदेशक तथा अन्य उपसचिव, अवर सचिवों से युक्त यह निदेशालय सन् 1988 में राजीव गांधी सरकार द्वारा स्थापित किया गया था। यह निदेशालय केन्द्रीय मंत्रालयों, विभागों, केन्द्रीय लोक उपक्रमों इत्यादि के जनसाधारण शिकायतों को ग्रहण करता है तथा संबंधित विभाग तक अग्रिम कार्यवाही हेतु अग्रेषित करता है।

पांचवे वेतन आयोग की सिफारिश पर मंत्रिमण्डल सचिवालय के एक भाग के रूप में कार्यकुशलता इकाई भी बनाई गई है जो समस्त केन्द्रीय मंत्रालयों के कामकाज पर निगरानी रखती है। वैसे यह इकाई कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय में है। केबिनेट सचिवालय की आन्तरिक संरचना तथा पदाधिकारियों की नियुक्ति सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री की इच्छा एवं नीति पर अत्यधिक निर्भर करती है। राजीव गांधी के शासन काल (1985–89) के दौरान इस सचिवालय में अनेक सलाहकार तथा विशेषाधिकारी नियुक्त किए गए थे। इस सचिवालय की शक्तियां तथा प्रधानमंत्री कार्यालय का कार्यक्षेत्र परस्पर टकराता रहा है। केबिनेट सचिवालय में नियुक्त होने वाला केबिनेट सचिव सर्वाधिक महत्व तथा गुरूतर दायित्वों का पद है। इस पद पर वरिष्ठ तथा योग्य आई॰ए॰एस॰ अधिकारी की नियुक्ति प्रधानमंत्री का अपना निजी सचिव तथा प्रधानमंत्री कार्यालय का पृथक् से सचिव होता है तथापि केबिनेट सचिव की भूमिका प्रधानमंत्री के आंख तथा कान के समान होती है जो न केवल प्रधानमंत्री को परामर्श एवं सूचना उपलब्ध करवाता है बल्कि मंत्रिमण्डल की बैठकों में उपस्थित होकर मिनिट्स भी तैयार करता है जिन्हें मंत्रियों तथा मंत्रालयों तक पहुँचाने के अतिरिक्त मंत्रिमण्डल के निर्णयों की क्रियान्वति भी सुनिश्चित करवाता है। केन्द्रीय सचिवालय की सचिवों की समिति तथा राज्यों के मुख्य सचिवों की समिति का अध्यक्ष होने के साथ साथ वह केबिनेट की विभिन्न समितियों में भी सम्मिलित होता है। भारत सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों में केबिनेट सचिव की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आपातकाल, कामचलाऊ सरकार तथा समाचार पत्रों पर मानहानि के दावों के मामलें में अनुमति प्रदान करने की स्थिति अत्यंत प्रभावी हो जाती है।

कैबिनेट सचिवालय के कार्य (Functions of Cabinet Secretariat)

कैबिनेट सचिवालय केन्द्रीय प्रशासन का केन्द्रीय बिन्दु है। इसके कार्यों का विवरण निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

1. कैबिनेट सचिवालय के रूप में (As a Cabinet Secretariat)
2. प्रारम्भकर्ता विभाग के रूप में (As an Innitiative Department)
3. समन्वयकर्ता के रूप में, तथा (As a Coordinator)
4. मंत्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में (As an Implementor of Cabinet Decisions)

- कैबिनेट सचिवालय के रूप में : यह केन्द्रीय मंत्रिमण्डल और उसकी समितियों को दैनिक कार्य से संबंधित सचिवालयीय सहायता प्रदान करता है। यह सचिवालय कैबिनेट की बैठकों के लिए कार्य–सूची तैयार करता है, इसके वाद–विवादों तथा निर्णयों का अभिलेख रखता है तथा इसके सम्मुख आने वाले विषयों पर ज्ञापन तैयार करता है। यह सचिवालय सूचना–केन्द्र के रूप में विभिन्न सरकारी संस्थाओं से संबंधित आवश्यक सूचनाएँ केन्द्रीय मंत्रिमण्डल समितियों तथा राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति को प्रेषित करना है। यह मंत्रिमण्डल की बैठकों के निर्णयों की सूचना भी संबंधित विभागों को पहुँचाता है। प्रमुख विषयों पर लिए गए निर्णयों का मासिक प्रतिवेदन तैयार करके यह विभिन्न संबंधित संस्थाओं को प्रेषित करता है। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री अभिलेखों को अपनी इच्छानुसार तैयार कराकर मंत्रियों एवं अधिकारियों के पास भेजने का कार्य भी करता है। इस प्रकार यह सचिवालय संबंधित समस्त कार्यों को सम्पन्न करता है।

- प्रारम्भकर्ता विभाग के रूप में : इस रूप में कैबिनेट सचिवालय तीन प्रकार के प्रारम्भिक कार्य करता है। प्रथम, मंत्रिपरिषद् में मंत्रियों, राज्यमंत्रियों, उपमंत्रियों तथा संसदीय सचिवों की नियुक्तियाँ, उनके विभागों के वितरण, शपथ–ग्रहण समारोह, पदग्रहण, त्यागपत्र आदि मामलों से संबंधित समस्त कार्य इसके अधीन आते हैं। द्वितीय, संविधान के अनुच्छेद 77(3) के प्रावधानों के अन्तर्गत ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो सरकार के कार्यों को सुविधापूर्वक सम्पन्न करने में सहायता करते हों। यह कैबिनेट कार्यालय में होता है। तीसरे, सरकार की नीतियों को लागू करने तथा उनमें समन्वय लाने से संबंधित विभागों की देखरेख रखना इसका महत्वपूर्ण प्रारम्भिक कार्य है। इस कार्य को करने में अन्य मंत्रालयों तथा विभागों की देखरेख रखना इसका महत्वपूर्ण प्रारम्भिक कार्य है इस कार्य को करने में अन्य मंत्रालयों तथा विभागों के अधिकारों को न तो यह कम करता है और न ही छीनता है, अपितु विभिन्न विभागों के बीच समन्वय स्थापित करता है, उन्हें उचित परामर्श देता है तथा सरकारी नीतियों को सुचारू रूप से लागू करता है।

समन्वयकर्ता विभाग के रूप में – अक्टूबर 1945 में वायसराय की कार्यकारिणी परिषद् में समन्वय समिति का गठन हुआ था। इसका कार्यक्षेत्र नागरिक एवं सैनिक मामलों में समन्वय स्थापित करना था। इस समिति के सचिव के पास कोई कार्यपालिका अधिकार नहीं थे, फिर भी वह समिति की ओर से निम्नलिखित कार्य करता था :

- सरकार की प्रमुख प्रशासनिक नीतियों और गतिविधियों में समन्वय स्थापित करने में सहायता प्रदान करना।
- भारत सरकार के मन्त्रालयों के बीच अथवा राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार के मध्य प्रशासनिक क्षेत्र में गतिरोध या मतभेदों कठिनाइयों को दूर करने में सहायता प्रदान करना।
- विभिन्न मन्त्रालयों के बीच किसी विषय पर विवाद उत्पन्न होने पर समन्वयकर्ता का कार्य करना।
- एक से अधिक मन्त्रालयों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रशासनिक विषयों की प्रगति का अवलोकन करना।
- कार्यकारिणी की समन्वय समिति के समक्ष उन विषयों को रखना जहां समिति के आदेश का अवलोकन करना।

किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में सरकारी नीतियों को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए विभागों के बीच समन्वय का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए अनेक तरीकों को अपनाया गया है। कैबिनेट विषयों से संबंधित विभाग एक ऐसा ही अभिकरण है जो प्रभावशाली समन्वय के लिए कार्यरत है। भारत सरकार में अनेक प्रकार की इकाईयां कार्य करती हैं; जैसे – मन्त्रालय, विभाग, निगम बोर्ड, कम्पनियां, नयी–नयी समितियां आदि। इस समय स्थिति यह है कि शायद ही कोई व्यक्ति इन विभिन्न इकाइयों की पूर्ण सूची तैयार कर सके। नित्य नवीन संगठन स्थापित हो रहे हैं। इन विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करना कठिन कार्य है। कैबिनेट सचिव विभिन्न सचिव समितियों

का अध्यक्ष होने के नाते विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह सचिवालय केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच भी समन्वयात्मक कार्य करता है।

- मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को क्रियान्वित करने के रूप में – यह सचिवालय मुख्यतः कैबिनेट सचिव के माध्यम से प्रधानमन्त्री तथा आवश्यक होने पर मन्त्रियों को समय–समय पर महत्वपूर्ण विषयों से संबंधित नीतियों के निरूपण एवं निष्पादन के विषय पर परामर्श देता है। इसे मन्त्रिमण्डल के समक्ष प्रस्तुत सभी विषयों के संबंध में मन्त्रिमण्डल की सहायता और आवश्यक कार्यवाही करनी पड़ती है; जैसे – संसद में व्यवस्थापन के लिए प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्ताव तैयार करना, विदेशों के साथ संधियों एवं समझौतों आदि से संबंधित मामले, संसद के अधिवेशनों को प्रारम्भ करने, स्थगित करने और लोकसभा को भंग करने संबंधी प्रस्तावों पर विचार करना, सार्वजनिक जाँच समितियों नियुक्ति और ऐसी समितियों की रिपोर्ट पर विचार, मन्त्रिपरिषद् द्वारा लिए गए किसी भी पूर्व–निर्णय पर पुनर्विचार, आदि। कैबिनेट सचिवालय का एक महत्वपूर्ण कार्य यह देखना भी है कि मन्त्रिमण्डल या उसकी समितियों द्वारा लिए गए निर्णय लागू हो रहे हैं अथवा नहीं। इस कार्य हेतु यह सचिवालय मासिक प्रवेदन तैयार करता है जिसमें प्रत्येक मन्त्रालय के कार्यों की समीक्षा रहती है कि किस सीमा तक निर्णयों पर अमल हुआ है। यदि यह पाया जाता है कि कैबिनेट के निर्णयों को अमल में लाने के लिए कोई मन्त्रालय प्रगति नहीं कर रहा है तो यह विषय उच्चतर स्तर पर तय किया जाता है ताकि निर्णयों को लागू करने में तेजी लायी जा सके।

- इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय अनेक महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करता है। संक्षेप में, यह उच्चतम स्तर पर निर्णय किये जाने की प्रक्रिया में समन्वय करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और प्रधानमंत्री के निर्देश के अनुसार कार्य करता है। यह सचिवों की समितियों के कार्य भी करता है। समय–समय पर इसकी बैठकें मन्त्रिमण्डलीय सचिव की अध्यक्षता में उन समस्याओं पर विचार करने और परामर्श देने के लिए होती हैं जिन पर मन्त्रालयों के बीच परस्पर परामर्श और समन्वय की आवश्यकता होती है।

कार्य–प्रक्रिया (Working Procedure)

कैबिनेट तथा उसकी समितियों के कार्यों का संचालन उन नियमों के अन्तर्गत होता है। जिन्हें कैबिनेट ने 1947 में निर्मित किया था। कैबिनेट अपने मामलों को तीन तरीकों से सम्पन्न करती है – प्रथम, कैबिनेट में विचार–विमर्श द्वारा; दूसरे, पत्रों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए सदस्यों के पास प्रपत्र भेजकर; और तीसरे, कैबिनेट की समिति में बातचीत द्वारा जिसमें दो से अधिक मंत्री प्रधानमंत्री द्वारा मनोनित किए जाते हैं। बैठकों में सम्मिलित होने के लिए किसी मन्त्रि को निमन्त्रण नहीं भेजा जाता है बल्कि नोटिस द्वारा सूचित किया जाता है। राज्यमंत्री जो स्वतंत्र विभाग के प्रभारी होते हैं तथा उनके विभाग से संबंधित बातों पर जब कैबिनेट में विचार होता है तब उन्हें निमन्त्रण देकर बुलाया जाता है। इन बैठकों की व्यवस्था कैबिनेट और उसके सचिवालय के अधिकारियों द्वारा की जाती है। मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी बैठकें के समय उपस्थिति रहते हैं या आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बैठकों में बुलाया जाता है। बैठकों का विवरण कैबिनेट सचिव द्वारा तैयार किया जाता है जिसे किसी बैठक के 24 घण्टों के अंदर प्रधानमंत्री के समक्ष प्रस्तुत करना होता है। प्रधानमंत्री की अनुमति मिलने पर यह विवरण कैबिनेट मन्त्रियों, राज्यमंत्रियों जो विभागों के स्वतंत्र प्रभारी होते हैं तथा संबंधित सचिवों के पास भेज दिए जाते हैं। यदि इस विवरण में बैठक में उपस्थित किसी मंत्री द्वारा संशोधन कराया जाता है तो उसे प्रधानमंत्री के विचारार्थ भेज दिया जाता है। यदि इस विवरण में बैठक में उपस्थित किसी मंत्री द्वारा संशोधन कराया जाता है तो उसे प्रधानमंत्री के विचारार्थ भेज दिया जाता है। यदि प्रधानमंत्री स्वीकृति दे देते हैं तो संशोधित विवरण पुनः सदस्यों के पास भेज दिया जाता है। प्रत्येक कैबिनेट की बैठक के बाद कैबिनेट सचिव प्रेस को मुख्य निर्णयों की जानकारी देता है।

कैबिनेट सचिव (Cabinet Secretary)

कैबिनेट सचिवालय का प्रमुख कैबिनेट सचिव होता है जो प्रधानमंत्री के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में रहता है। कैबिनेट सचिवालय की अध्यक्षता कैबिनेट सचिव द्वारा की जाती है। वह इस सचिवालय का प्रशासनिक प्रमुख होता है। कैबिनेट सचिव केन्द्रीय संस्थापन मण्डल का पदेन अध्यक्ष भी होता है। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठतम सदस्य होता है। प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार "योग्यतम एवं वरिष्ठतम" अधिकारी को ही कैबिनेट सचिव बनाया जाना चाहिए। यह सचिवों के सम्मेलन की अध्यक्षता भी करता है। भारत में इस पद का प्रारम्भ 1950 में हुआ और एन॰आर॰ पिल्लई प्रथम कैबिनेट सचिव बने। एन॰के॰ मुखर्जी के कार्यकाल तक आई॰ए॰एस॰ वर्ग के सदस्य कैबिनेट सचिव के पद पर पदासीन होते थे। इस पद की महत्ता के विषय में आयंगर प्रतिवेदन (1949) में लिखा है कि "कैबिनेट सचिव प्रशासनिक अधिकारियों में सबसे उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता है, जो अपने गुणों, शक्ति–पहल करने की क्षमता तथा प्रभावशीलता के कारण इस पद पर नियुक्त किया जाता है। वह कैबिनेट सचिवालय में समन्वयात्मक कार्यों को देख सकता है, विशेषतः उन कार्यों को जिनमें मंत्रिमण्डल और प्रधानमंत्री रूचि रखते हों।" भारतीय प्रशासन का यह सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न एव प्रतिष्ठित पद माना जाता है। इस पृष्ठभूमि में भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुशंसा की थी कि इस पद को अधिक प्रभावी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी अवधि 3 या 4 वर्ष की रहे।

मन्त्रिमण्डलीय सचिव अपने सचिवालय के सम्पूर्ण कार्य का पर्यवेक्षण करता है। वह केन्द्रीय सरकार की विभिन्न सचिव समितियों का अध्यक्ष होता है और प्रधानमंत्री, मन्त्रिमण्डलीय समितियों तथा मन्त्रिमण्डल को महत्वपूर्ण नीति–प्रश्नों पर परामर्श देता है। वह विभिन्न विभागों में समन्वय हेतु मुख्य समन्वयक का कार्य करता है। केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच भी वह समन्वयात्मक कार्य करता है वह नई दिल्ली में केन्द्र तथा राज्यों के सचिवों के सम्मेलनों का आयोजन करता है।

मन्त्रिमण्डलीय सचिव यह भी देखता है कि मन्त्रालयों द्वारा मन्त्रिमण्डल के निर्णय क्रियान्वित किये जाएं। वह जब कभी आवश्यक समझे तभी विभागीय सचिवों एवं वरिष्ठ अधिकारियों की बैठक बुला सकता है और उन्हें आवश्यक दिशा–निर्देश दे सकता है। मन्त्रिमण्डलीय सचिव एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकारी है। उसके कार्य संख्या और प्रभाव की दृष्टि से पर्याप्त उल्लेखनीय हैं। यह सभी स्थायी कर्मचारियों के लिए परामर्शदाता का कार्य करता है। वे जब कभी अपनी विभागीय कठिनाईयों को उसके सामने लाते हैं तो वह उन्हें समुचित निर्देशन तथा परामर्श देता है। इस पद के दायित्वों की दृष्टि से यह आवश्यक है कि इस पद को धारण करने वाला व्यक्ति पर्याप्त अनुभवी अधिकारी हो जो उच्च स्तर की प्रतिभा तथा व्यापक कल्पना शक्ति का भी धनी हो।

मंत्रीमण्डल सचिव वे सभी कार्य करता है जो उपरोक्त मंत्रीमण्डल सचिवालय के है।

2.6 केन्द्रीय सचिवालय (Central Secretariat)

भारत सरकार के अधीन समस्त मंत्रालयों तथा विभागों का सामूहिक नाम केन्द्रीय सचिवालय या सेन्ट्रल सेक्रेटेरियट है। आधुनिक केन्द्रीय सचिवालय नामक इस प्रशासकीय व्यवस्था की शुरूआत ईस्ट इण्डिया कंपनी के शासन के दौरान हुई। हालांकि मौर्याकाल, गुप्तकाल, सल्लनत काल तथा मुगलकाल में भी तत्कालीन शासकों के राजकार्यों को पूर्ण करने के लिए कई प्रकार के विभाग एवं राजकर्मचारी कार्यरत रहते थे लेकिन वर्तमान भारतीय प्रशासनिक तंत्र मुख्यतः अंग्रेजों द्वारा स्थापित तथा कालान्तर में किंचित परिवर्तित प्रणाली का पर्याय माना जाता है। ब्रिटिशकाल में इसे 'इम्पीरियल सक्रेटरियट' कहा जाता था।

भारतीय प्रशासन के पद–सोपान में केन्द्रीय सचिवालय का एक संस्था के रूप में महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह प्रशासकीय संगठन का मस्तिष्क है और इसके आदेश सम्पूर्ण देश में प्रचलित होते हैं। किन्तु अन्य प्रशासनिक

संस्थाओं की तरह सचिवालय भी ब्रिटिश शासन काल की देन है। ब्रिटिश साम्राज्य के समय भारत में प्रशासनिक एकता स्थापित करने में केन्द्रीय सचिवालय की एक विशेष भूमिका थी। कम्पनी शासन में बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन केन्द्रीय सरकार का सचिवालय गठित किया गया, जिसमें 1833 के चार्टर अधिनियम के तहत प्रशासनिक मितव्ययता की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किये गये। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था राजस्व एवं वित्त विभागों को मिलाकर एक विभाग बना दिया जाना। 1843, 1855 और 1862 से 1919 तक सचिवालय में विभागों का गठन–पुनर्गठन होता रहा और अनेक नये विभागों का निर्माण हुआ। 1919 से 1947 तक का युग केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न सुधारों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

लार्ड कार्नवालिस ने सचिवालय के पुनर्गठन और शक्तिशाली बनाने की दिशा में कुछ पहल की। उसका प्रुमुख योगदान महामन्त्री के पद का सृजन था। इस पदाधिकारी को बाद में प्रमुख सचिव की संज्ञा दी गयी। इसके हाथ में समस्त शक्तियां तथा उत्तरदायित्व थे। लार्ड वैजेलली का भी सचिवालय के पुनर्गठन में काफी योगदान रहा। उसकी योजना के अन्तगर्त सचिवालय का कार्य काफी मात्रा में बढ़ गया तथा साथ में उत्तरदायित्व में भी वृद्धि हुई। अठारहवीं सदी के अन्त में सरकार में गवर्नर जलरल, तीन पार्षद और सचिवालय के चार विभाग थे। प्रत्येक विभाग एक सचिव के अधीन था और उन पर नियन्त्रण रखने के लिए एक प्रमुख सचिव था। मॉण्टफोर्ड सुधारों (1919) के पूर्व भारत में गवर्नर जनरल और सात सदस्य तथा नौ सचिवालयीय विभाग थे। 1919 की लिविलियन स्मिथ कमेटी के सुझाव के आधार पर विभागीय विषयों को पुनर्गठित किया गया, लिखित आलेखों की प्रथा शुरू की गयी, केन्द्रीकृत भर्ती की व्यवस्था प्रारम्भ की हुई, तथा सचिवालय में प्रतिनियुक्ति व्यवस्था को सुदृढ़ किया गया। 1919 में पुनर्गठित सचिवालय में कुल ग्यारह विभाग थे।

सचिवालय के संगठन और कार्यपद्धति के विषय में बाद के वर्षों में इंचकेप समिति, हीलर समिति और मेक्सवेल समिति ने केन्द्रीय सचिवालय के सुधार के लिए और भी सुझाव प्रस्तुत किये। द्वितीय महायुद्ध के कारण जब स्थिति नाजुक हो गयी तो 1945 में सचिवालय का पुनर्गठन आवश्यक समझा गया। इसके पूर्व 1941 में नागरिक सुरक्षा, सूचना और प्रसारण तथा भारतीय समुद्रपारीय विभाग स्थापित किये जा चुके थे। युद्ध के कारण सुरक्षा समन्वय का नया विभाग स्थापित हुआ और युद्ध–आपूर्ति को पुनः एक कर दिया गया। 1944 में योजना तथा विकास नामक विभाग स्थापित किया गया। युद्ध के बाद यद्यपि सचिवालय में और भी परिवर्तन किये गये, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन शिक्षा, स्वास्थ्य और कृषि मन्त्रालयों का विभाजन था। श्रम–मन्त्रालय का जन्म भी इसी समय हुआ। 15 अगस्त 1947 को सत्ता–हस्तान्तरण के समय केन्द्रीय सचिवालय में 19 विभाग थे।

व्यापक अर्थ में 'सचिवालय' शब्द से तात्पर्य सचिवों के कार्य से है। वह मंत्री का मुख्य सलाहकार होता है जो उसके प्रशासनिक कार्यों में उसकी सहायता तथा आवश्यक सलाह प्रदान करता है। इस शब्द की उत्पति भारत के प्रशासन में उस समय हुई, जब अंग्रेजों ने अपने उपनिवेश में सचिव की सरकार स्थापित की। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकारी सत्ता जनता द्वारा निर्वाचित मन्त्रियों के अधीन रखने की व्यवस्था की गई है। इस बदली हुई स्थिति मे सचिवालय का सम्बन्ध मन्त्री के कार्यालय से जोड़ा जा सकता है।

सचिवालय एक ऐसा संगठन है जो उसके संचालन में सहायता करता हैं। यह सहायता मन्त्रियों द्वारा नीति निर्माण सम्बन्धी कार्यों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त वह सचिवालय की समस्त अपेक्षित सूचनाएं तथा सामग्री मन्त्रियों के सम्मुख रहता है, जिससे कि वह शीघ्रता से सही नीति निर्धारण कर सके।

केन्द्रीय सचिवालय की आवश्यकता के क्रम में निम्नांकित कारण किये जाते हैं :–

- मंत्रिगण प्रायः व्यस्त रहते हैं अतः उनके प्रशासनिक कार्य सचिवालय करता है।
- मंत्रियों को विधि, नीति, कार्यक्रम निर्माण में सचिवालय द्वारा तकनीकी सहायता प्रदान की जा सकती है।

- राजनीतिक कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिपरिषद अस्थायी तथा अकुशल होती है, अतः स्थायी कार्यपालिका (सचिवालय) एवं कुशल कर्मिकों की आवश्यकता है।
- सचिवालय द्वारा मंत्रियों को तटस्थ एवं व्यावहारिक सुझाव दिया जा सकता है।
- वस्तुतः सचिवालय व्यवस्था आधुनिक कल्याणकारी प्रशासकीय राज्यों का अभिन्न अंग हैं जिसका कोई अन्य विकल्प उपलब्ध नहीं हैं।

विशेषताएं (Characteristics) :– भारत में केन्द्रीय सचिवालय की निम्नांकित विशेषताएं कही जा सकती हैः–

- यह ब्रिटिशकाल में स्थापित प्रशासनिक संगठन हैं जो निरन्तर परिवर्तित होता रहता है।
- भारतीय प्रशासन तंत्र का शीर्षस्थ तथा विशालतम संगठन हैं।
- सरकार के बढ़ते दायित्वों तथा कार्यक्षेत्र में विस्तार के कारण केन्द्रीय सचिवालय की आवश्यकता निरन्तर बढ़ रही है।
- लोक सेवाओं तथा नौकरशाही की समस्त अच्छाइयां एवं बुराइयां इसमें व्याप्त हैं।
- वह केन्द्र सरकार के समस्त मंत्रालयों या विभागों का एकीकृत नाम है।
- मंत्रालयों या विभागों के अधीन कुछ कार्यकारी संस्थाएं यथा–निर्देशालय, बोर्ड, आयोग, संस्थान तथा लोक उपक्रम इत्यादि कार्यरत हैं जिनके क्षेत्रीय कार्यालय आवश्यकतानुसार राज्यों में कार्यरत हैं।
- केन्द्रीय सरकार की नीतियों, विधियों तथा कार्यक्रम के निर्माण एवं नियंत्रण में इस सचिवालयी व्यवस्था की अहम् भमिका हैं।
- केन्द्रीय सचिवालय के प्रत्येक मंत्रालय तथा विभाग का शीर्षस्थ पद राजनीतिक मंत्री द्वारा तथा प्रशासनिक स्तर पर सचिव पद भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी द्वारा ग्रहण किया जाता है।
- भारत में केन्द्रीय सचिवालय के अन्तर्गत शासन के प्रत्येक कार्य से सम्बन्धित कोई न कोई विभाग अवश्य कार्यरत हैं, चाहे वह कार्य राज्य सूची से ही सम्बन्धित क्यों न हो।
- सचिवालय नीति निर्माण करता है जबकि क्रियान्वयन का कार्य कार्यकारी संस्थाओं को दिया गया है।

लोक सेवाएं (Public Services) :–केन्द्रीय सचिवालय अर्थात् भारत सरकार के मंत्रालयों तथा विभागों में नियुक्त होने वाले अधिकारी कर्मचारी विभिन्न प्रकार की लोक सेवाओं से सम्बन्धित होते हैं :–

1. अखिल भारतीय सेवाएं (All India Services)
2. केन्द्रीय सेवाएं (Central Services)
3. केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं (Central Secretariat Services)
4. केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवाएं (Central Secretariat Stenographer Services)
5. केन्द्रीय सचिवालय लिपिकीय सेवाएं (Central Secretariat Clerical Services)

तीन अखिल भारतीय सेवाओं यथा–भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय वन सेवा के अधिकारी भारत में कहीं भी पदस्थापित हो सकते हैं। सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर इन अधिकारियों की नियुक्ति होती है। इसके पश्चात् केन्द्रीय सेवाएं हैं जिनके अधिकारी मंत्रालयों तथा कार्यकारी विभागों में कार्यरत होते है। केन्द्रीय सचिवालय सेवा की चार ग्रेड क्रमशः चयनित ग्रेड (उप सचिव या समकक्ष), ग्रेड–1 (अवर सचिव या समकक्ष), अनुभाग अधिकारी ग्रेड तथा सहायता ग्रेड है। केन्द्रीय सचिवालय स्टेनोग्राफर सेवा की वरिष्ठ प्रमुख निजी सचिव ग्रेड, निजी सचिव ग्रेड–ए एव ंबी (अब संयुक्त हैं), ग्रेड–सी तथा ग्रेड–डी नाकम चार ग्रेड हैं जबकि केन्द्रीय सचिवालय लिपिकीय सेवाओं की दो ग्रेड है – उच्च डिविजन ग्रेड तथा निम्न डिविजन ग्रेड। निम्न डिविजन ग्रेड अर्थात् क्लर्क की भर्ती कर्मचारी चयन आयोग करता है तथा उच्च डिविजन ग्रेड पूर्णतया पदोन्नति भरी जाती है। अनुभाग अधिकारी तथा सहायक ग्रेड के पद पदोन्नति एवं सीधी भर्ती दोनों प्रकार से भरे जाते हैं। अवर सचिव से लेकर सचिव तक के पद भारतीय प्रशासनिक सेवा या केन्द्रीय सेवाओं श्रेणी–1 से भरे जाते है। ग्रेड–1 चयनित ग्रेड तथा निजी सचिव ग्रेड के पद कर्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के अधीन हैं। अतः इनका केन्द्रीय सचिवालय के किसी भी विभाग में पदस्थापना हो सकता है जबकि अन्य अधीनस्थ पद सम्बन्धित मंत्रालयों एवं विभागों के अनुसार विकेन्द्रीकृत कर दिए गए हैं।

केन्द्रीय सचिवाल के विभिन्न मंत्रालयों में अवर सचिव से संयुक्त सचिवों तक के पद भरने के लिए शुरू में केन्द्रीय संस्थापना मंडल का गठन किया गया था जिसे सन् 1970 से वरिष्ठ चयन मंडल एवं केन्द्रीय संस्थापना मंडल में विभक्त किया गया। प्रथम मंडल कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में संयुक्त सचिव तथा निदेशक इत्यादि पदों पर नियुक्ति की अनुशंसा करता है जबकि केन्द्रीय संस्थापना मंडल उप सचिव एवं अवर सचिव की नियुक्ति की सिफारिश करता है।

अवधि प्रणाली :– केन्द्रीय सचिवालय के विभिन्न मंत्रालयों या विभागों में अधिकारियों के पद राज्य संवर्गो के अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों, केन्द्रीय सेवाओं के श्रेणी प्रथम अधिकारियों, चयनित सूची के राज्य सेवाओं के अधिकारियों इत्यादि से भरे जाते हैं। एक निश्चित अवधि तक ये अधिकारी किसी मंत्रालय में पदस्थापित रहते हैं जो सन् 1905 से लार्ड कर्जन के शासनकाल में शुरू हुई थी। लॉर्ड कर्जन ने यह प्रणाली जिला एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में नियुक्त प्रशासनिक अधिकारियों के ज्ञान एवं अनुभव को केन्द्रीय स्तर पर उपयोग लाने तथा इन अधिकारियों का केन्द्रीय सत्ता के साथ सामंजस्य बैठाने के लिए शुरू की थी। अवधि प्रणाली के पक्ष एवं विपक्ष में बहुत बार बहस हो चुकी है। निस्संदेह इस प्रणाली में गुण–दोष दोनों विद्यमान हैं।

अवधि प्रणाली के गुण–दोष

गुण	दोष
1. यह संघात्मक शासन व्यवस्था के लिए हितकर हैं क्योंकि इससे केन्द्र–राज्य सम्बन्ध घनिष्ठ होते हैं तथा राष्ट्रीय एकता बढ़ती हैं।	1. विशिष्टीकरण के इस युग में यह प्रणाली बाधक है।
2. सूत्र एवं स्टॉफ अधिकारियों का आपसी सांमजस्य स्थापित होता है।	2. क्षेत्रीय अनुभव प्राप्त अधिकारियों के ज्ञान का केन्द्रीय स्तर पर कोई उपयोग नहीं हो पाता है।
3. प्रशासनिक अधिकारियों की सोच का दायरा विस्तृत हो जाता है।	3. भारत में आज भी राजनीति तथा संकीर्ण मानसिकता के लक्षण स्पष्ट दिखते हैं अतः यह प्रणाली असफल सिद्ध होती है।

4. उत्साही एवं महत्वाकांक्षी अधिकारियों को उच्च स्तर पर कार्य करने का अवसर मिलता हैं।	4. बहुत–सी राज्य सरकारें कुछ अधिकारियों के दण्ड स्वरूप केन्द्र को भेजती है।
5. राज्य अधिकारियों की नीरसता तथा एकाकीपन समाप्त होता है।	5. कतिपय अधिकारी पुनः मूल स्थान पर वापिस नहीं आते हैं।
6. अभिप्रेरणा एवं मनोबल बढ़ता है	6. अवधि प्रणाली की सुव्यवस्थित नीति एवं तंत्र अभी तक नहीं बन पाया है।
7. लोक सेवकों में तटस्थता एवं कार्यकुशलता का भाव उत्पन्न होता है।	7. इससे क्षेत्रीय अधिकारियों को सचिवालय में जाने तथा आराम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं की स्थापना (1951) के कारण अवर सचिव तथा उप सचिव इत्यादि के कुछ पद इन्हीं सेवाओं से भरे जाने लगे हैं, अतः अवधि प्रणाली का क्षेत्र सीमित हुआ है। इसी प्रकार सन् 1957 में 'केन्द्रीय प्रशासनिक पूल' के निर्माण के पश्चात् वित्त एवं वाणिज्य जैसे विशेषज्ञ पद पूल के अधिकारियों से भरे जाते हैं। साथ ही प्रशासन में बढ़ती विशिष्टीकरण की प्रवृत्ति एवं मांग के कारण अवधि प्रणाली की ओर झुकाव स्वाभाविक रूप से कम हुआ है। वर्तमान में सचिव तथा संयुक्त सचिव पदों पर 5 वर्ष, उप सचिव के पद पर 4 वर्ष तथा अवर सचिव पद पर 3 वर्ष की अवधि निर्धारित हैं।

केन्द्रीय सचिवालय में दो प्रकार के कर्मचारी कार्य करते हैं– (अ) अधिकारी वर्ग, (ब) अधीस्थ वर्ग। पहले वर्ग में सचिव, उपसचिव तथा अवर सचिव आते हैं। यदि विभाग बड़ा है तो संयुक्त सचिव या अतिरिक्त सचिव भी होते हैं, जिन्हें विभाग के किसी भी अंग का कार्य सौंपा जाता है। वे अपने क्षेत्र में आने वाले सभी विषयों के सम्बन्ध में मन्त्री से सीधा सम्पर्क रखते हैं। संयुक्त या अतिरिक्त सचिव का स्तर लगभग सचिव के स्तर के समान होता है। वे कार्यभार से बोझिल सचिव का बोझ हल्का करते है। संयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव से आशा की जाती है कि वे महत्वूपर्ण मामलों पर मुख्य सचिव से परामर्श लेते रहें। अधिकारी वर्ग में प्रायः भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं।

केन्द्रीय सचिवालय संगठन (Organization of Central Secretariat)

सचिव (Secretary) :– सचिव विभाग/ मन्त्रालय का प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी होता है। सचिव विभाग के समस्त प्रशासनिक क्रियाकलापों तथा नीतियों पर परामर्श देने के लिए मन्त्री का प्रधान परामर्शदाता होता है। उसका कर्तव्य है कि वह विषय के सभी सम्बद्ध तथ्यों को मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत करें ताकि मन्त्री उस पर उचित निर्णय ले सके। यह आवश्यक है कि वह अपने मन्त्री को पूर्ण सूचना देता रहे। सचिव को निर्भय होकर अपने विचार प्रस्तुत करने चाहिए। परामर्श, संकेत एवं प्रोत्साहन देना तथा समझाना उसका कर्तव्य तथा अधिकार दोनों हैं। केन्द्रीय सचिवालय के किसी–किसी मन्त्रालय में एक से अधिक सचिव होते हैं। सभी सचिव यद्यपि समान वेतन पाते हैं लेकिन वे समान दर्जे के नहीं होते हैं। एक सचिव मन्त्रालय का सचिव होता है जबकि अन्य सचिव मन्त्रालय में विभिन्न विभागों के सचिव होते है और वे मन्त्रालय के अधीन रहकर कार्य करते हैं।

विशेष सचिव (Special Secretary) :– स्वतंत्रता के उपरान्त सत्ता के नवीन स्तर स्थापित करने के फलस्वरूप मौलिक सोपान में व्यवधान उत्पन्न हुआ है। इसका उसकी एकता, कुशलता तथा प्रभावशीलता पर विपरित प्रभाव पड़ा है। विशेष सचिव का पद इस व्यवधान का अच्छा उदाहरण है। 1951 में सर्वप्रथम कृषि–मंत्रालय में विशेष सचिव की नियुक्ति की गई थी।

अतिरिक्त सचिव (Additional Secretary) :– प्रारम्भ में सचिव के बाद प्रशासनिक पद–सोपान में उपसचिव का स्थान होता था परन्तु संयुक्त तथा अतिरिक्त सचिव पद की स्थापना से पद–सोपान वरिष्ठता सूची में अन्तर आया है। प्रशासनिक सुधार सम्बन्धी अधिकांश समितियों ने इस पद की समाप्ति या उनके पदों में कमी करने की अनुशंसा की।

संयुक्त सचिव (Joint Secretary) :– जब किसी मंत्रालय का कार्य अधिक बढ़ जाता है और सचिव कार्य के बोझ में दबा रहता है, तब उसके कार्यो में सहायता के लिए एक या अधिक शाखाओं की स्थापना की जाती है। संयुक्त सचिव स्वतंत्र रूप से शाखा का प्रमुख होता है और वह सौंपे गये कार्यो को करने में सक्षम होता है।

निदेशक (Director) :– यह पद अपेक्षाकृत नवीन है और इसकी स्थापना 1960 में हुई। यह पद कुछ अधिकारियों के अहम की संतुष्टि के लिए सृजित किया गया है। जहां तक उत्तरदायित्व का प्रश्न है यह उपसचिव के समकक्ष होता है।

उपसचिव (Deputy Secretary) :– यह सचिव की ओर से कार्य करता है। सचिवालय में उपसचिव का महत्त्व होता है और वह एक डिवीजन का प्रभारी होता है। इससे सम्बन्धित कार्यों के प्रति वह उत्तरदायी होता है।

अवर सचिव (Under Secretary) :– यह मंत्रालय की एक शाखा का प्रभारी होता है और अपने कार्यक्षेत्र में अनुशासन बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होता है। छोटे–छोटे मामलों को यह स्वयं निपटाता है। उपसचिव के कार्य को हल्का करना इसका एक प्रमुख कार्य है।

विशेष कर्त्तव्यस्थ अधिकारी (Officer on Special Duty) :– प्रशासनिक कार्यों अथवा अप्रत्याशित आपात–स्थिति में व्यक्ति विशेष को स्थान देने के लिए प्राचीन काल से ही ओ॰एस॰डी॰ की व्यवस्था प्रचलित है।

3. आदेशानुसार प्रलेख तैयार करना। कार्यालय अनुभाग (सेक्शन) अधिकारी, सहायक, उच्च श्रेणी और निम्न श्रेणी लिपिक, टाइपिस्ट, आशुलिपिक और चतुर्थ श्रेणी (ग्रेड डी) आदि से मिलकर बनता है।

केन्द्रीय सचिवालय की कार्यप्रणाली (Working Procedure) :– मंत्री को उसकी संसदीय जिम्मेदारियों को निभाने में सहायत देना सचिवालय की कार्य करने की एक निश्चित पद्धति हैं। महत्वपूर्ण नीति विषयक प्रश्नों पर मंत्री और सचिव दोनों ही विचार करते हैं और तब सचिव एक टिप्पणी तैयार करता है, जिसमें विचार–विमर्श से उत्पन्न निर्णयों का उल्लेख होता है। मंत्री द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर ये निर्णय अन्तिम हो जाते हैं। सचिव का कर्त्तव्य है कि वह मंत्री के विचारों को समझकर और मंत्रालयों की सम्पूर्ण नीति का ध्यान रखकर प्रशासन का कार्य संचालित करे।

सचिवालय में कार्य निष्पादित करने के दो पद्धतियां प्रचलित है–(1) कुछ मंत्रालयों अथवा विभागों में अधिकारी अनुस्थापक व्यवस्था के अनुसार कार्य करता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अनुभाग अधिकारी प्राप्त पत्रों के परीक्षण आदि का कार्य स्वयं करता है और उसके अधीन कर्मिक वर्ग पर टंकण अभिलेख समन्वय तथा संचालन में सहायता देने का कार्यभार होता है।

(2) अधिकांश मंत्रालयों और विभागों में परम्परागत व्यवस्था के अनुसार कार्य किया जाता है, जिसके अन्तर्गत अधीनस्थ कर्मिक वर्ग प्राप्त पत्रों की परीक्षा करता है, टिप्पणी तैयार करता है और अपने से उच्च स्तर के अधिकारी के समक्ष निर्देशन या निर्देश हेतु प्रस्तुत करता है। मंत्रालय या विभाग को सम्बोधित किये जाने वाले सभी पक्ष या मामले केन्द्रीय प्राप्ति एवं प्रसार शाखाओं में पहुंचते हैं। यहां से उन्हें विभिन्न सम्बन्धित अनुभागों में वितरित किया जाता है।

अनुभाग का डायरिस्ट (Diarist) :– इन पत्रों को अनुभाग अधिकारी के सम्मुख रखता है। अनुभाग अधिकारी इन्हें दो श्रेणियों में वर्गीकृत करता है– प्राथमिक तथा सहायक नये तथा मौलिक कार्यों से सम्बन्धित पत्र प्राथमिक श्रेणी में रखे जाते हैं और प्राथमिक पत्रों से सम्बन्धित सभी पत्रों को सहायक श्रेणी में लिया जाता है। वर्गीकरण करने के उपरान्त अनुभाग अधिकारी पत्र को सम्बन्धित सहायक के पास भेज देता है। जब कोई पत्र समस्यापरक होता है अथवा उसकी बातों पर व्यक्तिगत ध्यान की आवश्यकता होती है तो अनुभाग अधिकारी या तो स्वयं उसका जवाब देता है अथवा सम्बन्धित सहायक को आवश्यक निर्देश भेज देता है तथा यदि आवश्यक समझे तो उससे जरूरी आदेश प्राप्त कर लेता है। डायरिस्ट को पत्र वापिस मिलने पर वह उन्हें रोजनामचा में चढ़ाकर सम्बन्धित सहायकों के पास भेज देता है। ये सहायक उस पत्र की जांच के लिए सम्बन्धित फाइल, पिछले कागजात, सूची–पत्र, नियम, अधिनियम इत्यादि का अध्ययन करते हैं और अन्त में अपनी टिप्पणी लगाकर अनुभाग अधिकारी को वापस लौटा देते हैं।

अनुभाग अधिकारी इस टिप्पणी की ध्यान से परीक्षा करता है और अपनी राय तथा सुझाव के साथ उसे शाखा अधिकारी (अवर सचिव) के पास भेज देता है। शाखा अधिकारी अपने ही दायित्व पर अधिक से अधिक मामलों को निपटा देता है। महत्वपूर्ण मामलों अथवा नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर वह उप–सचिव या अन्य उच्च अधिकारी संयुक्त सचिव या सचिव के पास भेज देता है। इन अधिकारियों तक प्रायः वे ही विषय भेजे जाते हैं, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रकृति के होते हैं तथा जिनका सम्बन्ध किसी नीति विषयक प्रश्न से होता है। संयुक्त सचिव तथा सचिव यदि आवश्यक समझे तो विषय को मंत्री के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। ऐसा करते समय वे उसके साथ अपनी संक्षिप्त टिप्पणी भी लगा देते हैं। वहां मंत्री को यह स्वविवेक का अधिकार प्राप्त है कि वह या तो स्वयं उस विषय में आदेश प्रसारित करें अथवा निर्णय के लिए मन्त्रिमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत कर दें।

केन्द्रीय सचिवालय के कार्य (Functions of Central Secretariat) :– भारतीय राजव्यवस्था एवं प्रशासनिक तंत्र में सचिवालय की भूमिका थिंक टैंक की मानी जाती है जो राजनीतिक मंत्रियों को परामर्श तथा सहायता प्रदान करने का कार्य करता है ताकि शासन की नीतियां एवं कानून प्रभावी ढंग से क्रियान्वित हो सकें। सचिवालय हैण्डबुक के अनुसार केन्द्रीय सचिवालय सामूहिक रूप से या स्वतंत्र रूप से एक मंत्रालय, निम्नांकित कार्य सम्पादित करता हैः–

- नीति निर्माण एवं संशोधन (Policy Formulation and Amedment) : सरकार द्वारा निर्मित कानून, अध्यादेश, न्यायिक आदेश, कार्यकारी आदेश, निर्णय तथा समसामयिक प्रयास लोक नीति के निर्माण के आवश्यक रूप हैं। किसी भी देश में कई प्रकार की नीतियां हो सकती हैं जो विषयानुसार, आवश्यकतानुसार तथा समस्यानुसार विभाजित की जा सकती है। भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करने, स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने, शिक्षा का प्रसार करने तथा ऊर्जा एवं उद्योग क्षेत्र को विकसित करने इत्यादि कई प्रकार की नीतियां सरकार द्वारा निर्मित तथा संशोधित की जाती रही हैं। ये नीतियां ही सरकार के कार्यक्रमों, उद्देश्यों तथा इच्छाओं को प्रतिबिम्बित करती हैं। नीतियों के निर्माण में सचिवालय स्थित मंत्रालय अपने विषय एवं कार्य क्षेत्र में सम्बन्धित तथ्य, सूचना एवं तकनीकी परामर्श सरकार को देता है। परिवर्तित परिस्थितियों में यदि नीति की प्रासंगिकता कम हो जाए तो उसमें आवश्यकतानुसार संशोधन सुझाने का कार्य भी सचिवालय के अधिकारी करते हैं। यद्यपि लोक नीति के निर्माण में राजनीतिक उद्देश्य तथा बाध्यतांए अभिभावी रहती हैं तथापि सचिवालय नीति निर्माण में अहम भूमिका निर्वाहित करता है। इन नीतियों का मुख्य ध्येय जनकल्याण, सुरक्षा तथा विकास को सार्थक दिशा तथा गति प्रदान करना होता है ताकि कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकें।

- क्षेत्रीय योजनाएं एवं कार्यक्रम निर्माण (Regional Planning and Programme Formulation)

लोक नीति, सरकार के किसी विषय या क्षेत्र के सम्बन्ध में स्थूल प्रारूप होती है जबकि उस नीति के उद्देश्यों की सम्पूर्ति हेतु अनेक कार्यक्रम एवं योजनाएं निर्मित की जाती है। ये योजनाएं क्षेत्रीय आधारों जैसे–कृषि, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, ग्राम विकास, उद्योग इत्यादि विषयों में विभक्त होती हैं। प्रत्येक मंत्रालय किसी न किसी क्षेत्र अथवा विषय के अनुसार कार्य सम्पादित करता है। प्रत्येक विभाग अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित विकास योजनाएं एवं कार्यक्रम सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करता है। संघीय स्तर पर कार्यरत नीती आयोग योजनाओं के माध्यम से इन कार्यक्रमों को एकीकृत तथा संगठित स्वरूप देकर स्वीकृति प्रदान करता है। योजनाओं को निर्मित करने से पूर्व मंत्रालय अपे तकनीकी कार्यकारी संगठनों से विचार–विमर्श करता है, आवश्यक तथ्य एकत्रित करता है तथा पक्ष–विपक्ष के सभी आयामों को सूक्ष्मता से जांचता है। योजना की स्वीकृति के पश्चात् उसके क्रियान्वयन के समय नियंत्रण तथा निर्देशन का कार्य भी सचिवालय करता है।

- कानूनों, नियमों तथा उपनियमों का निर्माण (Formulation of Law, Rules and Regulations) : वर्तमान प्रशासनिक संरचनाएं, मूलतः वैधानिक तथा तार्किक आधारों पर कार्यरत संगठन हैं। प्रशासन का प्रत्येक कृत्य संविधान के मूलभूत प्रावधानों तथा प्रवर्तित कानूनों के अनुसरण में होता है। यह मंत्रालय का दायित्व है कि वह सम्बन्धित विषय में निर्मित तथा प्रवर्तित कानूनों की पालना सुनिश्चित करें। यदि किसी कानून की उपादेयता में कमी आती है अथवा नए कानून की आवश्यकता पड़ती है तो आवश्यक प्रारूप तैयार करना तथा विधि एवं न्याय विभाग से मार्गदर्शन प्राप्त करना पड़ता है। विधानमण्डल द्वारा पारित नए कानून अथवा पूर्व निर्मित कानून में संशोधन के पश्चात् आवश्यक प्रशासनिक नियम और उपनियम बनाए जाते हैं। कानूनों, नियमों, उपनियमों का निर्माण तथा उनका यथोचित क्रियान्वयन करवाना सचिवालय का उत्तरदायित्व है।

- बजट निर्माण एवं नियंत्रण (Formulation and Control of Budget) : वित्त, आधुनिक प्रशासन तंत्र का रक्त कहलाता है क्योंकि वित्त के अभाव में किसी भी प्रशासनिक कार्य का सम्पादन लगभग असंभव होता है। लॉयड जॉर्ज का कथन है – "जिसको शासन कहते हैं, वह वास्तव में वित्त हैं।" लोक प्रशासन के विकास के प्रारंभिक चरणों में जब वस्तु विनिमय के स्थान पर मुद्रा का प्रचलन हुआ तभी से वित्त तथा प्रशासन एक–दूसरे के पर्याय हुए होंगे। केन्द्रीय सचिवालय का प्रत्येक मंत्रालय, विभाग तथा अधीनस्थ कार्यालय अपना–अपना बजट अर्थात् वार्षिक आय–व्यय और योजनाओं के लिए बजट तैयार करते हैं। मंत्रालय में पदस्थापित वित्तीय सलहाकार सम्पूर्ण बजट को एकीकृत रूप से आंकता तथा विश्लेषित करता है। आवश्यकतानुसार बजटीय प्रावधानों में संशोधन करके उसे वित्त मंत्रालय को प्रस्तुत किया जाता है। निर्माण की इस प्रक्रिया में वैधानिक प्रावधानों, संगठन के उद्देश्यों, सरकार की नीतियों, जनता की इच्छाओं तथा उपलब्ध संसाधनों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यह दायित्व सचिवालय के अधिकारी–कर्मचारी निभाते हैं ताकि मंत्री को समूचित परामर्श प्रदान किया जा सके। विधानमण्डल द्वारा बजट की स्वीकृति के पश्चात उसके क्रियान्वयन पर कड़ी नजर रखना भी सचिवालय का कार्य है।

- नीति एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन का पर्यवेक्षण (Supervision of Policy and Programme Implementation): सचिवालय द्वारा सरकार को प्रदत्त परामर्श के पश्चात् अनुमोदित नीति तथा कार्यक्रम का अधीनस्थ कार्यालयों एवं अन्य सम्बद्ध संगठनों द्वारा निष्पादन किया जाता है, जिस पर सचिवालय द्वारा नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण किया जाता है। प्रत्येक परियोजना की प्रगति का प्रबोधन तथा मूल्यांकन करना भी मंत्रालय का दायित्व है। पर्यवेक्षण का आशय केवल ऊपरी निरीक्षण से नहीं बल्कि अधीनस्थ को आवश्यक मार्गदर्शन एवं सहायता प्रदान करना है ताकि कार्य, अधिक कुशलता एवं उद्देश्यपूर्ण ढंग से पूर्ण हो सके। प्रत्येक कार्यालय

अपने स्तर पर सम्पादित हो रहे कार्यक्रमों, योजनाओं तथा परियोजनाओं का मासिक, त्रैमासिक, छमाही अथवा वार्षिक प्रगति–विवरण मंत्रालय को प्रेषित करता है। इसके अतिरिक्त आवश्यक दौरों, निर्देशों, परिपत्रों तथा संशोधन–सुझावों के माध्यम से सचिवालय पर्यवेक्षण करता है। संसद में उठाए जाने वाले प्रश्नों, प्रेस की कतरनों, न्यायलयी निर्णयों तथा जनसाधारण से प्राप्त शिकायतों के आधार पर कार्यक्रमों में परिवर्तन भी किया जाता है।

- समन्वय करना (Coordination) : दो या दो से अधिक व्यक्तियों या संगठनों के मध्य आपसी सकारात्मक सामंजस्य स्थापित करना संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नितांत आवश्यक है। मूने के अनुसार समन्वय संगठन का प्रथम नियम है तथा शेष नियम इसी के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि समन्वय के अभाव में सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो सकती है। वर्तमान प्रशासनिक संस्थाएं विस्तृत, जटिल तथा विशेषज्ञतायुक्त संगठन हैं। ऐसी स्थिति में आपसी असहमति, संशय संघर्ष तथा असहयोग की समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं केन्द्रीय सचिवालय का यह दायित्व है कि वह सभी आवश्यक स्तरों पर समन्वय स्थापित करें ताकि प्रशासनिक कार्य भलीभांति संचालित हो सकें। सामान्यतः केन्द्रीय सचिवालय निम्नांकित स्तरों पर समन्वय करता है–

- विदेशी अभिकरणों एवं भारत सरकार के संगठनों के मध्य
- राज्य सरकार एवं भारत सरकार के संगठनों के मध्य
- स्वयंसेवी संगठनों तथा केन्द्रीय मंत्रालय के मध्य
- एक ही विभाग के विभिन्न कार्यकारी संगठनों के मध्य
- राजनीतिक दलों, दबाव समूहों तथा भारत सरकार के संगठनों के मध्य
- आम जनता, प्रेस तथा केन्द्रीय मंत्रालयों के मध्य
- नीती आयोग, मंत्रिमण्डल सचिवालय, प्रधानमंत्री कार्यालय तथा अन्य मंत्रालयों के मध्य
- संवैधानिक निकायों, स्वायत्तशासी संगठनों तथा भारत सरकार के मंत्रालयों के मध्य।

सारांशतः किसी भी स्तर पर व्यवधान उत्पन्न होने पर केन्द्रीय सचिवालय की यह भूमिका बन जाती है कि वह तत्काल समन्वय स्थापित करने में सहयोग करे।

- **संगठनात्मक कार्यकुशलता में वृद्धि (Increase in Organizational Efficiency)**

संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कई प्रकार के संसाधनों जैसे–मशीन, धन, प्रक्रिया, कच्ची सामग्री तथा मानव श्रमशक्ति की आवश्यकता होती है। संगठन के इन संसाधनों में सर्वप्रमुख है–मानव संसाधन अर्थात् कार्मिकगण। कार्मिकों की भर्ती, वर्गीकरण, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतनमान, सेवा शर्तों तथा अन्य आनुषंगिक लाभों के माध्यम से उन्हें अभिप्रेरित तथा प्रतिबद्ध करने का प्रयास किया जाता है ताकि संगठन में कार्यकुशलता बढ़े। बहुधा मानव संसाधन विकास के अतिरिक्त संगठन के नियमों, कानूनों, संरचना तथा प्रक्रियाओं में भी संशोधन–परिवर्तन किया जाता है ताकि कार्यकुशलता में अभिवृद्धि हो सके। प्रत्येक मंत्रालय अपने अधीनस्थ विभागों और कार्यालयों में कार्यरत कार्मिकों के माध्यम से संगठनात्मक कुशलता का स्तर उच्च बनाने का निरन्तर प्रयास करता है।

- **मंत्रियों को सहायता एवं परामर्श प्रदान करना (Advice and Help to Ministers)**

सचिवालय का मुख्य कार्य सम्बंधित मंत्रालय के मंत्रियों को प्रशासनिक सहायता तथा परामर्श प्रदान करना होता है

क्योंकि राजनीतिक मंत्री समय तथा विशेषज्ञता की कमी के कारण मंत्रालय के कार्य निष्पादन में स्वयं को पूर्ण सक्षम नहीं पाते हैं अतः सचिवालय में पदस्थापित सचिव तथा अन्य कार्मिक मंत्री महोदय को आवश्यक सूचनाओं, तथ्यों, फाइलों, कानूनों और पूर्व निर्णयों के माध्यम से परामर्श प्रदान करते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रदत्त परामर्श को स्वीकारना या अस्वीकारना पूर्णतया मंत्री की इच्छा पर निर्भर करता है तथापि सचिवालयी सहायता मंत्री के निर्णय को व्यापक रूप से प्रभावित करती है।

- **तथ्य एवं सूचना एकत्रण (Collection of Facts and Information)**

तथ्यों पर आधारित क्रमबद्ध ज्ञान, विज्ञान कहलाता है। चूँकि लोक प्रशासन की कार्यप्रणाली भी वैज्ञानिक पद्धतियों पर आधारित है अतः प्रशासन का प्रत्येक निर्णय तथ्य, सूचना तथा आँकड़ों पर निर्भर करता है। सचिवालय अपने सलंग्न, अधीनस्थ एवं अन्य संगठनों के माध्यम से आवश्यक सूचना–सामग्री एकत्र करवाता है ताकि विश्वसनीय एवं व्यावहारिक नीति तथा योजनाएँ निर्मित हो सकें। सूचना क्रांति के वर्तमान युग में बिना सूचना किसी प्रकरण पर निर्णय करना निरर्थक–सा प्रतीत होता है। इसलिए केन्द्रीय सचिवालय के सभी मंत्रालय, राज्यों के सचिवालय तथा जिला प्रशासन, नीती आयोग से जुड़े हुए हैं।

आलोचना (Criticism)

स्वतंत्र भारत की विशेष समस्याओं के संदर्भ में संघीय सचिवालय का रूप बदल गया है। इनके संगठन का आकार तथा कार्यों की मात्रा बढ़ गयी है। फलस्वरूप इसकी कार्यवाही की गति धीमी होने के साथ–साथ अनेक असम्बद्ध बातों को महत्त्व दिया जाने लगा है। सेवीवर्ग की कार्यकुशलता अत्यन्त कम हो गई है। संक्षेप में सचिवालय के दोष निम्नलिखित हैं–

- यह जन–सुविधा को ध्यान में रखकर तत्परता से कार्य नहीं करता है।
- यह हमेशा गैर–महत्वपूर्ण कार्यों से दबा रहता है। प्रशासनिक अनौपचारिकता का निर्वाह करते हुए उच्चाधिकारियों को महत्वपूर्ण कार्य के लिए समय नहीं मिल पाता है।
- दिन–प्रतिदिन के कार्यों में राजनीतिक हस्तक्षेप इतना बढ़ गया है कि अनेक वरिष्ठ कर्मचारियों को निराशा और क्षोभ होता है।
- यह विभिन्न योजनाओं पर स्वीकृति प्रदान न करके और प्रक्रियाओं के कठोर पालन पर जोर न देकर उन्हें क्रियान्वित होने नहीं देता।
- सचिवालय की अधिकांश कार्यवाही अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा सम्पन्न की जाती है और उच्च अधिकारी सहज ही उनके कार्यों को स्वीकार कर लेते हैं।
- कार्य के गलत तरीके अपनाये जाते हैं, कागजों को अनेक स्तरों से होकर निकलना पड़ता है तथा उपयुक्त प्रत्यायोजन नहीं किया जाता है।
- नियोजन तथा वित्त विभाग के कार्यों का अतिराव व दोहराव होता है।
- सचिवालय के अधिकारियों का चयन करते समय पर्याप्त सावधानी नहीं बरती जाती हैं। इन अधिकारियों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता है।
- राष्ट्रीय चरित्र पर व्याप्त जातिवाद, वर्गवाद या भाई भतीजावाद के कारण पक्षपात पनपता है तथा अधीनस्थ कर्मचारी उच्च अधिकारी की भांति व्यवहार करने लगते हैं।

सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Reforms)

सचिवालय की कार्यवाही एवं संगठन में सुधार किया जाना अत्यन्त अनिवार्य है। इसके कार्यकर्त्ताओं के निषेधात्मक दृष्टिकोण को विधेयात्मक बनाना जरूरी है ताकि वे अपने कार्य भली–भांति सम्पन्न कर सकें तथा अपने आपको समयानुसार बदल सकें। इस कार्य द्वारा सरकार को कार्यकुशल तथा राष्ट्र को शक्तिशाली और सम्पन्न बनाया जा सकता है। केन्द्रीय सचिवालय में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

- मध्यवर्तियों की समाप्ति : सरकारी यन्त्र का पुनर्गठन करना अनिवार्य है क्योंकि इसमें मध्यस्थों की अधिकता के कारण कार्य में देरी होती है। सचिवालय द्वारा योजनायें बनायी जाती हैं और नीचे के स्टॉफ द्वारा इन्हें क्रियान्वित किया जाता है। शेष कार्यकर्त्ता अनावश्यक देरी के अतिरिक्त कुछ नहीं करते। अतः यह उचित है कि इन्हें कम किया जाये तथा निदेशकों के पद समाप्त कर दिये जायें। ऐसा होने पर योजनाओं को क्रियान्वित करने में कम से कम देरी होगी।

- स्थायी नीति शाखाओं की स्थापना : एक अन्य सुझाव दिया जाता है कि प्रत्येक विभाग में नीति संबंधी एक स्थायी शाखा रखी जाये ताकि रचनात्मक कार्य में अनुभवी व्यक्ति भाग ले सकें और गैर–अनुभावियों द्वारा उसे थोपा न जाये।

- विभागाध्यक्षों को अधिक शक्तियाँ : विभाग के अध्यक्षों को अधिक शक्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए ताकि इन्हें प्रत्येक कार्य पर सरकारी अनुमति प्राप्त न करनी पड़े। साथ ही उन्हें वित्तीय तथा सेवी–वर्ग प्रशासन की दृष्टि से भी अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिए ताकि अधीनस्थ स्टॉफ पर वांछित नियन्त्रण रख सकें।

- स्थायी शोध शाखा : एक स्थायी शोध शाखा बनायी जाए जो प्रशासनिक यन्त्र को अधिक कार्यकुशल बनाने की दृष्टि से अध्ययन करती रहे। संगठन एवं प्रक्रिया की भांति इसका गठन किया जाये। प्रत्येक विभाग में इसकी एक सैल रहे जो उस विभाग विशेष में सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे।

- गलत नियम बदले जावें : जिन विभागों में आवश्यकता से अधिक या कम कर्मचारी हैं उनको सम्भाला जाये तथा अप्रशिक्षित, अयोग्य, सम्मान की गलत भावनायुक्त तथा नियमों के अन्धभक्त कर्मचारियों को बदला जाये। सेवीवर्ग को नये दायित्वों का महत्त्व बताया जाए। कार्य में देरी तथा अनियमितता बरतने वालों का दायित्व स्पष्ट करके उन्हें दण्डित किया जाए।

- स्थानगत दूरियों में कमी : सचिवालय के कार्यों में कुशलता लाने के लिए विभागाध्यक्ष, सचिव तथा मंत्री के मध्य स्थानगत दूरियाँ कम की जाएँ। सचिव विभागाध्यक्ष के कार्यालय निकटवर्ती कक्ष में हों तथा मंत्री भी अधिक दूर न रहे।

- क्रियान्विति में सुधार : नीतियों तथा नियमों को सही तरीके से उपयुक्त समय में क्रियान्वित करने की व्यवस्था की जाए। क्रियान्विति के समय प्रायः मूल उद्देश्य की अवहेलना करते हुए व्यक्तिगत स्वार्थों को ध्यान में रखा जाता है। इस पर रोक लगाई जाये, जो अधिक नियमों को पढ़ने की परवाह नहीं करते और लिपिकों को मनमानी व्याख्या के लिए छोड़ देते हैं, उन्हें दण्डित किया जाये।

- विशेषज्ञों का सम्मान : प्रशासनिक विभागों की अध्यक्षता विशेषज्ञ अधिकारियों द्वारा की जानी चाहिए। प्रायः होता यह है कि गैर अनुभवी भारतीय प्रशासनिक सेवा के युवा अधिकारियों को विभागाध्यक्ष बना दिया जाता है और दो–तीन वर्ष के अन्तर पर उन्हें एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरित कर दिया जाता है, यह गलत है। तकनीकि विभागों का संचालन हमेशा विशेषज्ञों को सौंपा जाना चाहिए और सामान्यज्ञों का स्थान केवल नियोजन, समन्वय, मण्डल आयोग इत्यादि में ही शीर्ष पर रहें, शेष कार्यों में उन्हें सहयोगी बनाया जाऐ।

2.7 सारांश (Summary)

केन्द्र सरकार के कृत्यों को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए संघ कार्यपालिका सम्पूर्ण देश की जनाकांक्षओं एवं भावनाओं की प्रतीक है। इसमें मुख्य कार्यपालक अर्थात् राष्ट्रपति देश की शासन व्यवस्था का सिरमोर होता है। इसलिए भारतीय संविधान में इस पद के लिए विशेष योग्यताऐं, चुनाव प्रक्रिया, शपथ, कार्यकाल, महाभियोग प्रक्रिया, विशेषाधिकार, शक्तियां व कर्त्तव्यों को उल्लेखित किया है। भारतीय राष्ट्रपति को संविधान का संरक्षक माना जाता है और इसकी स्थिति मंत्रिपरिषद् के परामर्श को सहज रूप से स्वीकार करने वाले संवैधानिक अध्यक्ष की प्रतीत होती है। राष्ट्राध्यक्ष रूप में राष्ट्रपति की कार्यशैली और व्यापक दृष्टिकोण न केवल भारतीय नागरिकों पर अपितु विदेशों पर भी गहरा प्रभाव छोड़ता है। राष्ट्रपति जिस मन्त्री परिषद् की सलाह व सहायता से देशहित के उद्देश्यों को पूरा करता है उस मन्त्रीपरिषद् का मुखिया प्रधानमंत्री होता है। संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार जो कार्यकारी शक्तियां राष्ट्रपति को सौंपी गई है, वास्तविक रूप में प्रधानमंत्री उनका निर्वहन करता है। इन शक्तियों के उपयोग में वह विभिन्न दलों, जनभावनाओं, विधि व्यवस्थाओं, विदेशी सहयोग, राष्ट्रीय सुरक्षा, संघ व राज्यों में समन्वय तथा राष्ट्रपति को सूचित कर एक कड़ी एवं संयोजक के रूप में दायित्व निभाता है। व्यवहारिक रूप से भारतीय प्रधानमंत्री की स्थिति उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। प्रधानमंत्री अपने कार्यों को क्रियान्वित करने के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय, मन्त्रीमण्डल सचिवालय तथा केन्द्रीय सचिवालय की मद्द लेता है। प्रधानमंत्री कार्यालय में प्रधान सचिव, मंत्रिमण्डल सचिवालय में मंत्रिमण्डल सचिव तथा केन्द्रीय सचिवालय में विभिन्न मन्त्रालयों के सचिवों के माध्यम से देश कल्याण के निर्णयों व नीतियों को अन्तिम रूप देता है। अतः केन्द्रीय शासन व्यवस्था एक सामुहिक निर्णय पूंज है जो विभिन्न व्यवस्थाओं से समन्वय स्थापित कर विकास व चुनोतियों को सफलतम रूप में नियोजित व प्रबन्धित करता है।

2.8 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

महाभियोग प्रक्रिया :– यह प्रक्रिया राष्ट्रपति को उसके पद से हटाने के लिए संविधान द्वारा व्यवस्थित की गई है। अनुच्छेद 61 के अनुसार संसद के किसी भी सदन द्वारा आरोप संकल्प कम से कम एक चौथाई सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति के विरूद्ध उसी सदन में संचालित किया जाऐ और उसी सदन के दो तिहाई सदस्यों द्वारा पारित किया जाए, जिसमें यह कार्यवाही आरम्भ हुई है। इस बारे में राष्ट्रपति को 14 दिन का नोटिस भेजा जाता है। दूसरा सदन पहले सदन में पारित हुए आरोप संकल्प को स्वयं या किसी न्यायालय व न्यायाधिकरण की जांच करवाकर यदि दो तिहाई बहुमत से पास कर देता है तो उसी समय राष्ट्रपति को पद त्यागना पड़ेगा।

राष्ट्रपति शासन :– संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार जब राज्य सरकार अपने दायित्वों के निर्वहन में असफल होती है तो उस राज्य का राज्यपाल इस बारे प्रतिवेदन सोंपता है और राष्ट्रपति को ऐसा विश्वास हो जाए कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चल रहा तो राष्ट्रपति संकटकाल की घोषणा करते हुए राज्य में राष्ट्रपति शासन लगा सकता है।

वित्तीय आपातकाल :– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 360 के अनुसार जब भारत या इसके किसी भाग पर आर्थिक साख का खतरा हो तो राष्ट्रपति वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है।

बहुदलीय व्यवस्था :– जब किसी विधानपालिका में किसी दल का स्पष्ट बहुमत ने हो तो सरकार संचालन के लिए अन्य दलों को साथ मिलाकर सरकार चलाना ही बहुदलीय व्यवस्था है।

मनोनीत सदस्य :– भारत का राष्ट्रपति राज्यसभा के लिए 12 सदस्यों तथा 2 सदस्यों को लोकसभा के लिए मनोनीत करता है। लोकसभा में 2 सदस्य ऐंग्लों–इण्डियन तथा राज्यसभा में कला, साहित्य, विज्ञान, खेल अथवा सामाजिक सेवा में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की हो उन्हें राष्ट्रपति मनोनीत कर सकता है।

सामूहिक उत्तरदायित्व :– संविधान के अनुसार मंत्रीपरिषद् का कोई एक सदस्य कोई कार्य करता है तो वह मंत्रीपरिषद् का कार्य समझा जाऐगा।

अन्तरंग मंत्रीमण्डल :– मंत्रीमण्डल एक बड़ा समूह होता है इसमें से प्रधानमंत्री अपने विश्वासपात्र कुछ मंत्रीयों को शीघ्र निर्णय लेने के लिए शासन व्यवस्था के नितीगत फैसलों में निरन्तर शामिल रखता है, उसे अन्तरंग मंत्रीमण्डल कहते हैं।

2.9 अपनी प्रगति जाचिऐं (Check your Progress)

- संघ कार्यपालिका का अध्यक्ष कौन होता है ?
- राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए निर्वाचक मण्डल की व्यवस्था किस अनुच्छेद में की गई है ?
- वित्तीय आपातकाल की व्यवस्था किस संवैधानिक अनुच्छेद में है ?
- राष्ट्रपति पर महाअभियोग चलाने की प्रक्रिया किस अनुच्छेद में है ?
- प्रधानमंत्री की नियुक्ति कौन करता है ?
- मंत्रीपरिषद् की अध्यक्षता का दायित्व किसका होता है ?
- प्रधानमंत्री का वेतन व भत्ते कौन निर्धारित करता है ?
- मंत्रीमण्डल की अध्यक्षता कौन करता है ?
- मंत्रीमण्डल सचिवालय के प्रशासनिक कार्यभार का अध्यक्ष कौन है ?
- भारत में कैबिनेट सचिव का पद कब सृजित किया गया ?
- केन्द्रीय सचिवालय का पुनर्गठन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद कब हुआ ?
- केन्द्रीय सचिवालय कहां स्थित है ?
- प्रधानमंत्री कार्यालय का नामकरण कब किया गया ?
- सन् 1947 में प्रधान निजी सचिव कौन थे ?
- प्रधानमंत्री कार्यालय को शक्तिशाली किस प्रधानमंत्री ने बनाया ?

2.10 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

- राष्ट्रपति की योग्यताओं व चुनावी प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।
- राष्ट्रपति की आपातकाल शक्तियों का वर्णन कीजिए।
- भारतीय राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति का विश्लेषण कीजिए।
- भारत का प्रधानमंत्री शासन व्यवस्था का व्यवहारिक अध्यक्ष है, स्पष्ट करें।
- प्रधानमंत्री की शक्तियों व कार्यों का विवरण दीजिए।

- प्रधानमंत्री भारतीय शासन व्यवस्था का समन्वयक है, उल्लेख कीजिए।
- भारत के मंत्रीमण्डल सचिवालय के संगठन एवं कार्यों पर विस्तारपूर्वक विचार करें।
- कैबिनेट सचिवालय में कैबिनेट सचिव की भुमिका का परीक्षण कीजिए।
- कैबिनेट सचिवालय का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
- कैबिनेट सचिवालय के संदर्भ में प्रशासनिक सुधारों की समीक्षा कीजिए।
- मंत्रीमण्डल सचिवालय के ऐतिहासिक विकास पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।
- मंत्रीमण्डल सचिवालय के संगठन व कार्यों का वर्णन कीजिए।
- मंत्रीमण्डल सचिव कार्यालय के कार्यों का विश्लेषण कीजिए।
- केन्द्रीय सचिवालय की संरचना व कार्यों का विवेचन कीजिए।
- प्रधानमंत्री कार्यालय वर्तमान शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दू है, स्पष्ट करें।

2.11 पठन सामग्री सूचि (Further Reading List)

- B.L. Fadia and Kuldeep Fadia (2017), Indian Administration, Agra: Sahtya Bhawan.
- R. Abrar (2016), Indian Public Administration, New Delhi: Lisdern Press.
- Nazim Uddin Ahmed (2013), Indian Administration: Evolution and Development, New Delhi: Wizdam Press.
- R.K. Arora (2012), Indian Public Administration: Institutions and Issues, New Delhi: New Age International.
- P.D. Sharma (2009), Indian Administration: Retrospect and Pnspects, Jaipur: Rawat.
- अमरेश्वर अवस्थी एंव आनन्द प्राकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल : आगरा, 1995
- होशियार सिंह, भारतीय प्रशासन किताब महल : इलाहाबाद
- बी.एल.फड़िया, भारतीय प्रशासन, साहित्य भवन : आगरा
- श्री राम माहेश्वरी, भारतीय प्रशासन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन : हैदराबाद
- मधुसदून त्रिपाठी, भारतीय प्रशासन, ओमेगा मब्लिकेशन्स : नई दिल्ली, 2012

ईकाई–3

केन्द्रीय स्तर के मंत्रालयों का संगठन व कार्य : गृह मंत्रालय, वित्त मंत्रालय, रक्षा मंत्रालय एवं कार्मिक, लोक शिकायत व पेंशन मंत्रालय

(Organization and function of Central Level Ministries: Home Ministry, Financie Ministry, Defence Ministry and Ministry of Personnel, Public Grievances and Pension)

3.0 परिचय (Introduction)

भारतीय संविधान में शासन पद्धति के लिए एक व्यापक संरचना की व्यवस्था की गई है। संवैधानिक अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और इसका उपयोग उनके द्वारा तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाता है। अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति की सहायता और सलाह देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक मंत्री परिषद् के गठन का प्रावधान है जो कार्यपालिका शक्ति के सुचारू संचालन में सहयोग करती है। अतः मंत्रीपरिषद् केन्द्र स्तर पर बहुत सारे मंत्रालयों का एक समूह है जो केन्द्र सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों को क्रियान्वित करने व निर्णय निर्माण के यथा–शक्ति सहयोग करते हैं। इस इकाई में सरकार की कार्यव्यवस्था का हृदय कहे जाने वाले मुख्य मंत्रालयों की संरचना एवं कार्यों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। भारत सरकार के मंत्रालयों का विकास एक लम्बी अवधि तथा संरचनात्मक सुधारों पर आधारित है। वर्तमान मंत्रीपरिषद् के मंत्रालयों का संगठनात्मक व कार्यात्मक संशोधन मुख्यरूप से मंत्रालय पुर्नगठन वर्ष 1985 में किया गया। इस इकाई में गृह मंत्रालय के संगठन व कार्यों का वर्णन है, जिसे भारतीय सरकार का सर्वोत्म मंत्रालय माना जाता है और इसका दायित्व भारत की शासन व्यवस्था में कानून व्यवस्था व शान्ति बनाए रखने का है। दूसरे वित्त मंत्रालय की संरचना व कार्य पद्धति का विवरण है जो सम्पूर्ण देश की शासन व्यवस्था के वित्त पोषण का काम संभालता है। तीसरे स्थान पर रक्षा मंत्रालय की भूमिका व कार्यव्यवस्था उल्लेख किया गया है जो तीनों सेनाओं के सहयोग व समन्वय से देश को बाहरी शक्तियों की दखलन्दाजी से दिन रात सुरक्षा प्रदान करने के कठिन कार्य का निर्वहन करता है। चौथा मंत्रालय इस इकाई में कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन वर्णित है जो उपरोक्त तीनों मंत्रालय व शासन व्यवस्था के अन्य सभी मंत्रालयों के लिए कुशल मानव संसाधन प्रदान करने के कार्य के साथ–साथ उनकी शिकायतों के निवारण से लेकर उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात् तक के अधिकारों को सुरक्षित एवं संरक्षित करने का कार्यभार संजोए हुए है।निष्कर्षतःउपरोक्त मंत्रालयों को केन्द्रीय शासन व्यवस्था की धूरी कहा जा सकता है।

3.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के सीखने के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :–

- गृह मंत्रालय की संरचनात्मक व कार्यात्मक व्यवस्था को जानना तथा इसके आन्तरिक शासन संचालन में योगदान का विश्लेषण करना।
- वित्त मंत्रालय की केन्द्र व राज्य सरकारों को वित्त पोषण प्रक्रिया में भूमिका का विवरण देना।
- रक्षा मंत्रालय के संगठनात्मक कार्य संचालन का परिस्थितियों के अनुरूप विश्लेषण व संशोधन करना।

- कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के मानव संसाधन विकास, जन शिकायत निवारण तंत्र तथा सेवानिवृत्ति पश्चात् कार्मिकों को दिए जाने वाली सुविधाओं से संबंधित विभिन्न प्रबन्धों का ज्ञान और भूमिका का उल्लेख करना।
- उपरोक्त मन्त्रालयों का विभिन्न शासकीय संस्थाओं के साथ समन्वय एवं सहयोग का आंकलन करना।

3.2 गृह मंत्रालय की भूमिका (Introduction of Home Ministry)

भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों में गृह मंत्रालय का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इसी महत्व के कारण प्रोटोकोल नियमों के अनुसार कैबिनेट में प्रधानमंत्री के बाद 'गृहमंत्री' का ही नाम आता है। 1843 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में पहली बार 'गृह विभाग' की स्थापना की गई। उस समय इस विभाग में विदेश, वित्त एवं सैनिक विभाग भी सम्मिलित थे। उस समय इस विभाग में 6 शाखाएँ – सामान्य, राजस्व, समुद्रीय, न्यायिक, विधि एवं चर्च थी। 1855 में पहली बार 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' को इससे अलग किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अगस्त, 1947 में इसका नाम गृह विभाग से बदलकर 'गृह मंत्रालय' (मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स) किया गया। 1964 में गृह मंत्रालय में 'सामाजिक सुरक्षा विभाग' जोड़ा गया। 1965 में अगस्त से 'असम राइफल्स' का कार्य भी गृह मंत्रालय को सौंपा गया। 1966 जनवरी में 'प्रशासनिक सुधार आयोग' को भी इसमें जोड़ा गया। 1970 में इसके अंतर्गत 'कार्मिक विभाग' की स्थापना की गई। 1974 में इसके अन्तर्गत 'राजभाषा विभाग' की स्थापना की गई। जून 1977 में गृह मंत्रालय में 'कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग' स्थापित किया गया। जनवरी, 1986 में कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग इससे अलग करके इसको अलग मंत्रालय का दर्जा दिया गया। 1994 में जम्मू–कश्मीर विभाग इसमें जोड़ा गया तथा जनवरी, 2004 को इस मंत्रालय में सीमा प्रबंधन विभाग स्थापित किया गया। अतः वर्तमान में गृहमंत्रालय में कुल छः विभाग हैं।

संगठन (Organisation)

गृह मंत्रालय का शीर्ष पद एक कैबिनेट स्तर में मंत्री द्वारा ग्रहण किया जाता है। गृहमंत्री की स्थिति मंत्रालय की विशालता, गंभीरता तथा उपादेयता के कारण प्रधानमंत्री के पश्चात् नम्बर दो पर होती है। गृहमंत्री के अधीन राज्य मंत्री तथा उपमंत्री भी आवश्यकतानुसार नियुक्त किए जाते हैं। गृह मंत्रालय के समस्त नीतिगत निर्णय गृह मंत्री द्वारा अथवा प्रधानमंत्री एवं केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के परामर्शानुसार लिए जाते हैं। देश की आंतरिक सुरक्षा, शांति एवं व्यवस्था से सम्बद्ध यह मंत्रालय छः विभागों में विभक्त हैं जिसके प्रशासनिक प्रमुख गृह सचिव कहलाते हैं। गृह सचिव के अधीन आंतरिक सुरक्षा विभाग, राज्य विभाग, गृह विभाग तथा जम्मू–कश्मीर विभाग हैं जबकि एक अन्य सचिव के अधीन केवल राजभाषा विभाग रखा गया है। मंत्रालय के सचिव आई॰ए॰एस॰ होते हैं। कार्यों की दृष्टि से आंतरिक सुरक्षा विभाग सबसे बड़ा विभाग है। इन विभागों के अधीन कई संभाग तथा अनुभाग कार्यरत हैं जिनमें सैंकड़ों अधिकारी–कर्मचारी पदस्थापित हैं। गृह मंत्रालय के अधीन कई प्रकार से सुरक्षा बल कार्यरत हैं। सन् 1965 में स्थापित सीमा सुरक्षा बल देश की सीमाओं की रक्षा तथा तस्करी एवं घुसपैठ नियंत्रण का कार्य करता है जबकि असम राइफल्स (1835 में काचेर लेवी नाम से शुरू) पूर्वोत्तर राज्यों में, भारत–तिब्बत सीमा पुलिस (1962) उत्तरी सीमा पर आंतरिक सुरक्षा का जिम्मा उठाते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड, आतंकवाद के विरूद्ध, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (1939) विद्रोह, दंगों तथा आंदोलनों के नियंत्रण के लिए तथा औद्योगिक सुरक्षा बल (1968), लोक उपक्रमों में पदस्थापित किये जाते हैं। इस मंत्रालय के विशद् तथा गंभीर कार्यों को पूरा करने के लिए केन्द्रीय गुप्तचर ब्यूरो कार्यरत है जिसकी स्थापना सन् 1887 में 'ठगी विभाग'

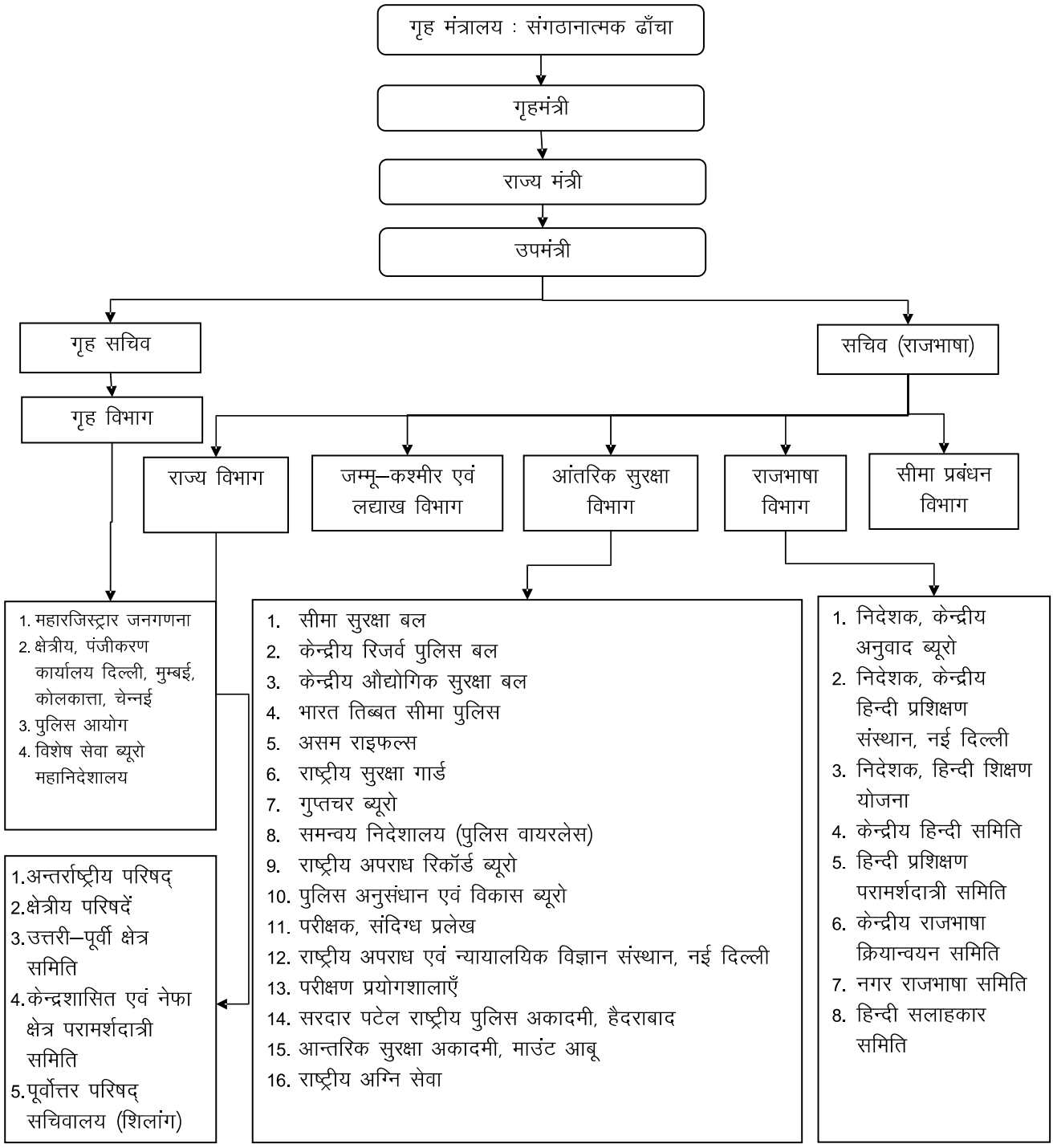

की एक शाखा के रूप में हुई थी। अग्निशमन, अपराध, न्यायालयिक विज्ञान (Forensic Science) जनगणना, विदेशी नागरिक पंजीकरण, पुलिस प्रशिक्षण, अपराध रिकार्ड, अनुसंधान इत्यादि से संबंधित अनेक संस्थाएँ एवं कार्यालय भी इस मंत्रालय से संबंधित हैं। सन् 1990 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्, राष्ट्रीय एकता परिषद् तथा क्षेत्रीय परिषदों को प्रशासनिक सहायता प्रदान करना इस मंत्रालय के अधीन हैं। 1 नवम्बर, 1994 से इस मंत्रालय के 'जम्मू–कश्मीर विभाग' को प्रत्यक्षः प्रधानमंत्री के अधीन कर दिया गया था जिसे वाजपेयी सरकार ने 23 मई, 1998 को प्रधानमंत्री

कार्यालय से हटाकर पुनः गृह मंत्रालय को सौंप दिया। मंत्रालय की आन्तरिक संरचना केन्द्रीय सचिवालय की संगठनात्मक पद्धति तथा कार्य प्रक्रियानुसार कई शाखाओं में विभक्त गृह हैं। मंत्रालय में एक आसूचना ब्यूरो भी है जिसकी शाखाएँ राज्यों में भी कार्यरत हैं। यह ब्यूरो आन्तरिक गड़बड़ियों पर नियंत्रण का कार्य करता है। सन् 1946 में गठित गृह रक्षक दल (Home Guards) एक स्वयंसेवी बल है जो पुलिस कार्यों में गृह विभाग की सहायता करता है। केरल राज्य के अतिरिक्त समस्त भारत में होम गार्डस हैं।

गृह मंत्रालय के विभिन्न विभागों के अधीन या सम्बद्ध अभिकरणों का विवरण इस प्रकार है–

- महारजिस्ट्रार, जनगणना तथा क्षेत्रीय जनगणना कार्यालय
- क्षेत्रीय पंजीकरण (विदेशी नागरिक) कार्यालय, दिल्ली, मुम्बई कोलकात्ता, चेन्नई
- गुप्तचर ब्यूरो
- समन्वय निदेशालय
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो
- परीक्षक, संदिग्ध प्रलेख
- परीक्षण प्रयोगशालाएँ
- पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो
- केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो
- विशेष सेवा ब्यूरो महानिदेशालय
- सचिवालय सुरक्षा संगठन

पुलिस बल (Police Force)

- सीमा सुरक्षा बल
- केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल
- केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल
- भारत–तिब्बत सीमा पुलिस
- असम राइफल्स
- राष्ट्रीय सुरक्षा गार्ड
- होम गार्ड (स्वयंसेवी बल) राज्यों में

प्रशिक्षण संस्थान (Training Institutes)

- केन्द्रीय हिन्दी प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली
- सरदार पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
- राष्ट्रीय अग्निसेवा महाविद्यालय, नागपुर
- राष्ट्रीय नागरिक सुरक्षा महाविद्यालय, नागपुर

- आन्तरिक सुरक्षा अकादमी, माउंटआबू
- राष्ट्रीय अपराध एवं न्यायालयिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली
- पूर्वोत्तर पुलिस अकादमी, उमसों, उमियस, (मेघालय)
- केन्द्रीय गुप्तचर प्रशिक्षण केन्द्र, कोलकाता, हैदराबाद, चंड़ीगढ़।

परिषदें/समितियाँ/आयोग

- राष्ट्रीय एकता परिषद्
- अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्
- क्षेत्रीय परिषदें
- साम्प्रदायिक सौहार्द्र के लिए राष्ट्रीय फाउंडेशन
- केन्द्रीय हिन्दी समिति
- हिन्दी प्रशिक्षण परामर्शदात्री समिति
- केन्द्रशासित एवं नेफा क्षेत्र परामर्शदात्री समिति
- उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र समिति
- केन्द्रीय राजभाषा क्रियान्वयन समिति
- नगर राजभाषा समिति
- हिन्दी सलाहकार समितियाँ
- केन्द्रीय आपातकालीन सहायता परामर्शदात्री समिति
- पुलिस आयोग
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (स्वतंत्र तथा वैधानिक संस्था)

उपरोक्त अधीनस्थ कार्यालयों, समितियों, प्रशिक्षण संस्थाओं तथा पुलिस बलों के माध्यम से गृह मंत्रालय अपने गुरूतर दायित्वों को पूरा करता है। पुलिस आयोग, पुलिस प्रशासन तथा कार्यप्रणाली में सुधार हेतु सुझाव देता है जबकि संसदीय कानून द्वारा अक्टूबर, 1993 में स्थापित राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एक स्वतंत्र एवं वैधानिक संस्था के रूप में आम व्यक्ति के मानवाधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करता है। मानवाधिकार आयोग के सम्मुख आने वाली अधिकांश शिकायतें पुलिस के अत्याचारों से संबंधित होती हैं। यद्यपि पुलिस तथा आन्तरिक सुरक्षा का अधिकांश कार्य राज्य प्रशासन से संबंधित हैं तथापि अनेक कानून ऐसे हैं जिनका क्रियान्वयन केन्द्रीय गृह मंत्रालय करता है। जैसे–

- राजभाषा अधिनियम, 1963
- पासपोर्ट (भारत में प्रवेश) अधिनियम, 1920

- विदेशी नागरिक पंजीकरण अधिनियम, 1939
- नागरिकता अधिनियम, 1955
- विदेशी अंशदान (नियमन) अधिनियम, 1976
- राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980
- अस्त्र, आग्नेयास्त्र, गोलाबारूद तथा विस्फोटक सामग्री अधिनियम, 1908
- सरकारी गोपनीयता अधिनियम, 1923
- उग्रवाद प्रभावित क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1984
- आतंकवाद निरोधक अधिनियम (पोटा), 2002
- आवश्यक सेवा नियमन अधिनियम, 1981
- गैर कानूनी गतिविधियाँ (नियंत्रण) अधिनियम, 1967
- विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर एवं पुनर्वास) अधिनियम, 1954
- जन्म एवं मृत्यु पंजीकरण अधिनियम, 1969

कार्य (Functions)

गृह मंत्रालय का कार्यक्षेत्र सदैव से ही विस्तृत तथा गंभीर प्रकृत्ति का रहा है। वर्तमान में मंत्रालय के कार्य इसके विभागों के अनुसार यहाँ वर्णित किए जा रहे हैं।

गृह विभाग (Home Department)

यह विभाग संवैधानिक प्रावधानों की क्रियान्विति तथा मंत्रालय की शीर्ष नीतियों का निर्माण एवं निष्पादन करता है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्य हैं –

- राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् के सदस्यों, राज्यपालों, उपराज्यपालों इत्यादि के पदग्रहण, पदत्याग तथा निलम्बन इत्यादि की सूचना जारी करना।
- विधायिका में आचार संहिता तथा शांति व्यवस्था सुनिश्चित कराना।
- संसद में सदस्यों का मनोनयन
- अनुच्छेद–352 तथा अनुच्छेद–356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन
- राष्ट्रीयगीत, राष्ट्रगान, राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय पर्व, राजभाषा, गणवेश, राष्ट्रचिन्ह् तथा अन्य महत्वपूर्ण मानकों पर निगरानी एवं राष्ट्रीय चरित्र की स्थापना।
- राजनीतिक बन्दियों, निष्काषितों, अल्पसंख्यकों, शरणार्थियों, स्वतंत्रता सेनानियों, भाषायी अल्पसंख्यकों इत्यादि के मामले निस्तारण।
- जन्म–मृत्यु पंजीकरण तथा जनगणना से संबंधित कार्य

- राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के पास भेजे जाने वाले विधेयकों पर आवश्यक कार्यवाही
- राष्ट्रपति द्वारा क्षमादान की शक्तियों के मामले
- नागरिकता तथा विदेशी पंजीकरण के मामले
- केन्द्रीय एवं राज्य लॉटरीज पर नियमन
- महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा तथा मृत्यु के समय अन्य आवश्यक कार्यवाहियाँ
- विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सम्मान, अलंकरण एवं सुविधा देना।
- अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के प्रकरण निस्तारित करना
- स्वयंसेवी संगठनों को मिलने वाली विदेशी सहायता राशि पर नियंत्रण करना।
- पुलिस आयोग से संबंधित अनुशंसाओं की अनुपालना करना।
- मानवाधिकारों की स्थापना करना तथा उल्घंन होने पर कार्यवाही करना।

गृह मंत्रालय द्वारा प्रति 10 वर्ष पश्चात् की जाने वाली जनगणना विश्व की सबसे बड़ी प्रशासनिक प्रक्रिया मानी जाती है।

आंतरिक सुरक्षा (Internal Security Department)

राष्ट्रीय स्तर पर शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना इस विभाग का मुख्य दायित्व है। यद्यपि पुलिस, लोक व्यवस्था तथा कारागार, राज्य सूची के विषय हैं यथापि अति महत्वपूर्ण तथा संवेदनशील विषय होने के कारण केन्द्रीय गृह मंत्रालय का सहयोग एवं समन्वय आवश्यक हो जाता है। यह विभाग अग्रंकित कार्य करता है–

1. राज्य में आंतरिक सुरक्षा एवं व्यवस्था सुनिश्चित करना।
2. राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रशासन को समुचित मार्गदर्शन एवं सहायता देना।
3. साम्प्रदायिक सौहार्द, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता, विधि का शासन, समानता एवं भाईचारा तथा आपसी सामंजस्य बनाने में सहयोग करना।
4. देश की सीमाओं तथा आंतरिक तंत्र में पुलिस बल तैनात करना।
5. लोक उपक्रमों में सुरक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करना।
6. आंतकवाद, अलगाववाद, घुसपैठ, अशांति एवं विद्रोह पर नियंत्रण पाना।
7. देश भर की जेलों की दशा तथा कैदी जीवन स्तर में सुधार करवाना।
8. अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक पुलिस संगठन (इन्टरपोल) से समन्वय स्थापित करना।
9. नागरिक सुरक्षा, अग्निशमन, होम गार्ड्स तथा युद्धकाल में व्यवस्था से संबंधित कार्य।
10. भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों की संवर्ग वृद्धि, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य पुलिस कर्मियों के वृत्तिका विकास प्रकरण।
11. शरणार्थी समस्या पर नियंत्रण तथा उनका पुनर्वास।
12. पुलिस अनुसंधान, विकास तथा आधुनिकीकरण के प्रयास करना।

13. पुलिसकर्मियों को शौर्य पदक तथा अन्य प्रमाणपत्र इत्यादि प्रदान करना।
14. कतिपय केन्द्रीय अधिनियमों की क्रियान्विति पर निगरानी करना जैसे–
    i. अस्त्र, आग्नेयास्त्र गोलाबारूद तथा विस्फोटक सामग्री अधिनियम, 1908
    ii. सरकारी गोपनीयता अधिनियम, 1923
    iii. उग्रवाद प्रभावित क्षेत्र (विशेष न्यायालय) अधिनियम, 1984
    iv. आवश्यक सेवा नियमन अधिनियम, 1981 (एस्मा)
    v. गैरकानूनी गतिविधियाँ (नियंत्रण) अधिनियम, 1996
    vi. विदेशी अंशदान नियमन अधिनियम, 1976
    vii. प्रतीक एवं नाम (अनुचित प्रयोग निवारण) अधिनियम, 1971
    viii. मानवता की रक्षा हेतु शारीरिक–मानसिक साहस प्रदर्शित करने वालों को कबीर पुरस्कार प्रदान करना।

राज्य विभाग (Department of States)

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह विभाग राज्यों से संबंधित कार्यों का निरस्तारण करता है। केन्द्र–राज्य संबंधों में सुधार तथा केन्द्रशासित प्रदेशों के प्रशासन का सुचारू संचालन इसके मुख्य दायित्व हैं। फरवरी 1990 में गठित राष्ट्रीय एकता परिषद् तथा मई, 1990 में बनी अंतर्राष्ट्रीय परिषद् एवं विभिन्न क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से केन्द्र–राज्यों, केन्द्रशासित प्रदेशों तथा राज्यों के मध्य आपसी विवाद सुलझाने का प्रयास किया जाता है। यह विभाग कई प्रकार की गुरूतर जिम्मेदारियाँ पूरी करता है, जैसे–

1. केन्द्र–राज्य संबंधों को सुधारना तथा बाधाओं को दूर करना।
2. अंतर्राष्ट्रीय परिषद्, राष्ट्रीय एकता परिषद्, क्षेत्रीय परिषदों तथा अन्य परामर्शदात्री निकायों या समितियों को प्रशासनिक सहायता।
3. नये राज्यों का निर्माण, क्षेत्र में परिवर्तन, नाम में परिवर्तन तथा इससे संबंधित अन्य कार्य।
4. पूर्व नरेशों तथा रजवाड़ों से संबंधित विवादों का निस्तारण।
5. राज्यों से संबंधित मामलों में जाँच आयोगों का गठन एवं सहायता।
6. राज्यों के साथ समझौते एवं अन्य कार्यवाहियाँ।
7. राज्यों को शांति–व्यवस्था हेतु मार्गदर्शन, सहायता एवं समन्वय।
8. सीमावर्ती तथा विशिष्ट क्षेत्रों में विकास एवं कल्याणकारी गतिविधियों का संचालन।
9. केन्द्र शासित प्रदेशों तथा नेफा (North East Frontier Agency) क्षेत्र के प्रशासन से संबंधित कार्य निष्पादन।

राजभाषा विभाग (Official Language Department)

संघीय सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों में राजभाषा हिन्दी के प्रसार तथा मान्यता हेतु विभाग केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो तथा केन्द्रीय हिन्दी समिति के माध्यम में राजभाषा अधिनियम, 1963 की क्रियान्विति सुनिश्चित कराता है। मानव

संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अधीन कार्यरत केन्द्रीय हिन्दी संस्थान तथा अन्य प्रशिक्षण संस्थानों के माध्यम से केन्द्रीय लोक सेवकों को हिन्दी में प्रवीण बनाने का प्रयास करता है। राजभाषा विभाग के अन्य कार्य निम्नलिखित हैं:

- केन्द्रीय सचिवालय में राजभाषा सेवाओं का संचालन, निर्धारण तथा विकास करना।
- विभिन्न मंत्रालयों में हिन्दी में कार्य को प्रोत्साहन।
- केन्द्रीय मंत्रालयों में पदस्थापित निदेशक (राजभाषा) के माध्यम से प्रत्येक मंत्रालय एवं विभाग द्वारा हिन्दी में किये गये कार्य का मासिक प्रबोधन एवं मूल्यांकन।
- राजभाषा प्रसार हेतु प्रशिक्षण, कार्यशाला तथा अन्य आवश्यक व्यवस्थाएँ करना।
- पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो के माध्यम से पुलिस विषय पर हिन्दी में लिखी पुस्तकों को पंड़ित गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार प्रदान करवाना।
- केन्द्र सरकार के मंत्रालयों या विभागों या अन्य संबंधित संगठनों के कार्मिकों द्वारा हिन्दी में लिखी किसी भी विषय की पुस्तक पर इन्दिरा गांधी राजभाषा पुरस्कार योजना संचालित करना।
- केन्द्रीय मंत्रालयों तथा विभागों को हिन्दी पुस्तकों की सूची उपलब्ध कराना तथा टी॰वी॰ स्पॉट इत्यादि कार्यक्रम तैयार करना।
- हिन्दी में कम्प्यूटर प्रयोग, द्विभाषी प्रयोग, निकनेट से सम्पर्क तथा हिन्दी प्रयोग को बढ़ावा देने के समस्त प्रयास करना।
- हिन्दी–प्रयोग को सुनिश्चित करने हेतु केन्द्रीय कार्यालयों का निरीक्षण करना तथा उत्कृष्ट कार्य करने वाले मंत्रालय या कार्यालय को राजभाषा शील्ड प्रदान करना।

जम्मू–कश्मीर एवं लद्याख विभाग (Jammu-Kashmir and Ladakh Department)

भारत के संविधान के अनुच्छेद–370 के अनुसार जम्मू–कश्मीर एक विशेष दर्जा प्राप्त राज्य था अतः इस राज्य के संविधान, कानून तथा केन्द्र के साथ संबंधों को लेकर अनेक प्रकार की तकनीकी समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। दूसरी ओर पाकिस्तान के साथ लगी जम्मू–कश्मीर की दुर्गम सीमा को लेकर भी अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। इसीलिए जम्मू–कश्मीर नामक पृथक विभाग कार्यरत है जो इस राज्य से संबंधित समस्त नीति विषयक, उग्रवाद–नियंत्रण, केन्द्र–राज्य संबंध तथा विकास कार्यक्रमों से संबंधित मुद्दों पर आवश्यक कार्यवाही करता है।

इस प्रकार गृह मंत्रालय का कार्यक्षेत्र अत्यंत व्यापक तथा गंभीर दायित्वों से युक्त है। इसलिए इस मंत्रालय में सामयिक परिवर्तन होते रहते हैं। डॉ॰ पी॰डी॰ शेनाय समिति (अक्टूबर, 2002) की सिफारिश पर गृह मंत्रालय ने जनवरी, 2002 से आम नागरिकों को राष्ट्रीय झण्डा फहराने की अनुमति दे दी है। सन् 1991 से मंत्रालय में पुलिस नियोजन संभाग की स्थापना की गई है जो पुलिसकर्मियों की आवश्यकता, वृत्तिका विकास, प्रशिक्षण, पदोन्नति, सेवा–दशा सुधार तथा जनसाधारण के साथ बेहतर संबंधों के क्रम में कार्य करता है। राष्ट्रपति शासन के अधीन राज्यों के बजट का निर्माण तथा केन्द्रशासित एवं अन्य सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रशासन तथा विकास कार्यक्रमों का निष्पादन भी मुख्यतः गृहमंत्रालय द्वारा निर्देशित–नियंत्रित किया जाता है। होमगार्ड्स के प्रशिक्षण एवं विकास तथा नागरिक भूमिका रहती है। बढ़ते आतंकवाद, अपराध, साम्प्रदायिक दंगों तथा धरना–प्रदर्शन की भारतीय मानसिकता के कारण गृह मंत्रालय का कार्य निसंदेह अत्यंत कठिन तथा चुनौतीपूर्ण हो गया है।

सीमा प्रबन्धन विभाग (Border Management Department)

भारतवर्ष की भू–सीमा 15106.7 कि॰मी॰ तथा द्विप क्षेत्रों सहित तटरेखा 7516.6 कि॰मी॰ है। बांग्लादेश के साथ हमारी सीमा की लम्बाई 4096.7 कि॰मी॰, चीन 3488 कि॰मी॰ पाकिस्तान 3323 कि॰मी॰, नेपाल 1751 कि॰मी॰, म्यांमार 1643 कि॰मी॰, भूटान 699 कि॰मी॰ और अफगानिस्तान 106 कि॰मी॰ है। अंतर्राष्ट्रीय भू–सीमा और तटवर्ती सीमाओं के प्रबन्धन, सीमावर्ती पुलिस व्यवस्था, सीमाओं पर सड़क बनाने, बाड़ लगाने तथा तेज रोशनी की व्यवस्था करने जैसी अवसंरचना के सृजन से संबंधित मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करने तथा सीमावर्ती क्षेत्र विकास कार्यक्रम का क्रियान्वयन करने के लिए जनवरी, 2004 में सीमा प्रबन्धन विभाग को गृह मंत्रालय में गठित किया गया। इस विभाग के उद्देश्यों में देश की सीमाओं की सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रणालियों की व्यवस्था करने के लिए प्रशासनिक, राजनयिक, सुरक्षा, कानून व्यवस्था, विनियामक और आर्थिक अभिकरणों द्वारा समन्वय आदि शामिल हैं। सीमाओं की सुरक्षा के लिए अवसंरचना के सृजन की रणनीति तैयार करना, अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं पर एकीकृत जांच चौकियों का विकास करना भी इसी विभाग का कार्यक्षेत्र है। सीमाओं पर सुरक्षा बलों की तैनाती 'एक सीमा एक सीमा रक्षक बल' के सिद्धान्तानुसार व्यवस्थित करना इसी का दायित्व है। बांग्लादेश तथा पाकिस्तान की सीमाओं पर सीमा सुरक्षा बल (Border Security Force), चीन सीमा पर भारत–तिब्बत सीमा पुलिस (India-Tibbat Boarder Police), नेपाल व भूटान सीमाओं पर सशस्त्र सीमा बल (Border Guard Force), म्यांमार सीमा पर असम राइफल्स (Assam Rifles), भारतीय नौ सेना (Indian Navy), समग्र समुद्री सुरक्षा के लिए तथा भारतीय वायु सेनाबल (Indian Air Force), सम्पूर्ण भारतीय वायुक्षेत्र की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार हैं। अतः सीमा प्रबंधन विभाग भारतीय सीमाओं के प्रबंधन के लिए नियोजन व नीति निर्माण, क्रियान्वयन प्रक्रिया तथा मूल्यांकन व्यवस्था की रूपरेखा पर निर्णय निर्माण के लिए जिम्मेवार है। सीमाओं के नवीनीकरण, सुधार, अद्योसंरचना निर्माण, नई तकनीकियों के आयोजन बारे में फैसला लेकर गृहमंत्री को सौंपना भी इसी के कार्यक्षेत्र का भाग है।

सामान्य व आपात् काल में गृह मंत्रालय का योगदान (Contribution of Home Ministry in Normal and Emergency Times)

सामान्यकाल में भी गृह–मंत्रालय के कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। देश में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने का महत्वपूर्ण दायित्व इसी पर है। लोक–सेवाओं की भर्ती और उनका प्रशासन तथा संघीय क्षेत्रों का प्रशासन व्यवस्थित करना इसके महत्तवपूर्ण दायित्व है। संघीय क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाये रखने का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व गृह–मंत्रालय का है, जबकि राज्यों की स्थिति में गृह–मंत्रालय इस कार्य के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी नहीं होता क्योंकि यह विषय राज्य–सूची के अन्तर्गत आता है। यहां गृह–मंत्रालय परामर्श संबंधी और समन्वयकारी योगदान करता है। गृह मंत्रालय सभी राज्यों के पुलिस बल के प्रशिक्षण, साज–सज्जा, उपकरण एवं कार्य सम्पादन के स्तर का निर्धारण करना है। राज्यों के उच्च पुलिस अधिकारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, स्थानान्तरण आदि का नियमन भी गृह–मंत्रालय द्वारा ही किया जाता है क्योंकि वे भारतीय पुलिस सेवा के सदस्य होते हैं। भारत में विदेशियों के प्रवेश, आवास, भ्रमण करने आदि नियन्त्रण गृह–मंत्रालय ही करता है। लोक सेवाओं की भर्ती और प्रशिक्षण के लिए समान स्तरों की स्थापना करने, पदोन्नति वरिष्ठता, आचरण, अनुशासन तथा सेवा–शर्तों को नियमित करने वाले सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण इसी मंत्रालय द्वारा किया जाता है।

केन्द्र के राज्यों के साथ संबंध (Relations with States) के क्षेत्र में गृह मंत्रालय का कार्य यह देखना होता है कि ऐसे राष्ट्रीय प्रकृत्ति के मामलों के संबंध में किसी न किसी प्रकार तालमेल तथा एकरूपता बनी रहे। गृह–मंत्रालय अन्य अनेक ऐसे कार्य सम्पन्न करता है जो कि उपर्युक्त किसी भी श्रेणी में नहीं आते हैं। इनमें प्रमुख है भारत के गजट का प्रकाशन, राष्ट्रपति के पदो ंके चुनाव परिणामों की अधिसूचना जारी करना और उच्चतम तथा उच्च

न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों, महालेखा परीक्षक (Auditor General), महान्यायवादी तथा संघीय लोक सेवा आयोग, अंतर्राष्ट्रीय आयोग, चुनाव आयोग, भाषा आयोग एवं भाषाई अल्पसंख्यकों के आयोग के चेयरमैन व सदस्यों की नियुक्तियों की विज्ञप्तियाँ जारी करना। यह मंत्रालय पूर्वता अधिपत्र (Warant of Precedence) तथा राष्ट्रीय छुट्टियों की सूची तैयार करता है। राष्ट्रपति द्वारा दिये जाने वाले पदकों के संबंध में यही निश्चित करता है। इसका संबंध राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्र–चिन्ह् व जनगणना से तथा भारत सरकार व भूतपूर्व भारतीय रियासतों के शासकों के मध्य के विलय तथा पारस्परिक करारों से होता है जिसमें कि भूतपूर्व राजाओं के प्रिवीपर्स शामिल हैं। यही नहीं विदेशियों को नागरिकता, प्रेस संबंधी कानूनों, सेंसर व्यवस्था चुनाव शास्त्रास्त्र संबंधी अधिनियम व नियम, संकटकालीन सहायता, अग्निशामक सेवाएं, अपराधी जनजातियों, अन्तर्राज्यीय आवागमन, सरकारी भाषा तथा राज्यसभा के लिए सदस्यों का नामांकन भी गृह मंत्रालय द्वारा ही होता है। इस प्रकार से सामान्य काल में गृह–मंत्रालय की देश की राजनीतिक व्यवस्था में अत्यन्त प्रभावशाली और सक्रिय भूमिका है।

आपातकाल में गृह–मंत्रालय की अत्यंत विशिष्ट भूमिका होती है। यह संविधान के अनुच्छेद 352 और 356 में निहित व्यवस्थाओं का प्रयोग करता है। आपात्कालीन अथवा संकटकालीन व्यवस्थाओं से संबंधित मामलों के विषय में (वित्तीय संकटकाल से संबंधित मामलों को छोड़कर) गृह–मंत्रालय को प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। विदेशी आक्रमण से उत्पन्न राष्ट्रीय आपात्काल की स्थिति में गृह–मंत्रालय को जनता का मनोबल (Morale) बराबर ऊँचा बनाए रखना होता है। गृह–मंत्रालय इस संबंध में राजनीतिक निर्णय करता है कि संकटकालीन स्थिति की घोषणा को कब समाप्त किया जाये।

गृह मंत्रालय के सम्मुख मुख्य चुनौतियाँ (Main Challenges befor Home Ministry)

भारत जैसे विशाल देश में गृह–मंत्रालय की भूमिका चुनौतीपूर्ण रही है। वर्तमान में भारत के गृह–मंत्रालय को निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है–

- काफी लम्बे समय से चल रही आतंकवादी गतिविधियों ने गृह–मंत्रालय के सम्मुख प्रबल चुनौती उपस्थित की हैं।
- उत्तरी–पूर्वी सीमान्त प्रदेशों में अराजकतावादी शक्तियों की गतिविधियाँ गृह–मंत्रालय के सामने चुनौती है। नागा–विद्रोहियों की भूमिगत गतिविधियाँ आदि।
- बांग्लादेश से आने वाले घुसपैठियों की समस्या।
- विगत कुछ वर्षों से अनेक कारणों से देश में साम्प्रदायिकता का उफान आया है।
- बम्बई, कलकत्ता और देश के अन्य महानगरों में हुए बम–विस्फोट।
- माफिया–गिरोहों की गतिविधियों सार्वजनिक जीवन को अस्त–व्यस्त कर रही हैं अवैध कार्यों को प्रोत्साहित करती हैं। सरकारी भूमि पर कब्जा करने अथवा अतिक्रमण।
- भारतीय पुलिस की बिगड़ी हुई छवि।
- गृह–मंत्रालय की केन्द्र–राज्य संबंधों के निर्धारण में प्रमुख भूमिका है।
- राज्यों के अनुच्छेद 356 का भी व्यापक प्रयोग रहा है जिसके कारण गृह मंत्रालय के कार्य में बढ़ोतरी हुई है।

- देश में संसदीय तथा राज्य विधानसभाओं के निर्वाचनों को शांतिपूर्ण ढंग से सम्पन्न कराना।
- अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन–जाति के लोगों का कल्याण।
- अल्पसंख्यकों में विश्वास भाव जागृत करना।
- केन्द्रीय जाँच ब्यूरो व अन्य महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता को बनाये रखने का गहन दायित्व।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यही कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् गृह–मंत्रालय की भूमिका में निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।

3.3 : वित्त मंत्रालय : संगठन और कार्य (Ministry of Finance : Organisation and Functions)

वित्त मंत्रालय का दायित्व केन्द्रीय सरकार का वित्तीय प्रबंध करने और सारे देश पर प्रभाव डालने वाले सभी वित्तीय मामलों को निपटाने का है। इस मंत्रालय को अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने सुशोभित किया है, जिनमें सी.डी. देशमुख, मोरारजी देसाई, टी.टी. कृष्णामाचारी, यशवन्तराव चव्हाण, एच.एम. पटेल, वी.पी. सिंह, नारायणदत्त तिवारी, एस.बी. चव्हाण, डॉ॰ मनमोहन सिंह के नाम उल्लेखनीय रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद डॉ॰ मनमोहन सिंह ही ऐसे वित्तमंत्री रहे, जो पूरे पाँच वर्ष तक इस पद पर बने रहे।

वित्त मंत्रालय भारत की केन्द्रीय सरकार का गृह मंत्रालय के बाद दूसरा महत्वपूर्ण मंत्रालय है। यह मंत्रालय केन्द्रीय सरकार के वित्त प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। यह सम्पूर्ण देश को प्रभावित करने वाले सभी आर्थिक और वित्तीय मामलों से संबंधित हैं जिसमें विकास के लिए संसाधनों को जुटाने का काम भी शामिल है। यह मंत्रालय केन्द्रीय सरकार के व्यय का विनियमन करता है जिसमें राज्यों को संसाधनों को जुटाने का काम भी शामिल है। वित्त मंत्रालय उन अनुमानों तथा मदों पर व्यापक नियंत्रण रखता है जो संसद द्वारा समय–समय पर स्वीकृत किये जाते हैं तथा जिनके लिए संसद द्वारा साधनों का नियोजन भी किया जाता है। यह मंत्रालय विभिन्न व्यय कारक विभागों पर प्रशासकीय नियंत्रण रखता है साथ ही उनके क्रियाकलापों में समन्वय भी रखता है। केन्द्र सरकार की सामान्य आर्थिक व वित्तीय नीतियाँ और विकास कार्यक्रमों का निर्धारण भी वित्त मंत्रालय द्वारा ही किया जाता है। वित्त मंत्रालय सरकार के आय–व्यय के वार्षिक अनुमान (बजट) तैयार करता है तथा उन्हें स्वीकृति हेतु संसद के समक्ष प्रस्तुत करता है। बजट की क्रियान्विति के लिए भी यह आवश्यक कार्यवाही करता है। इस प्रकार भारत सरकार का वित्त मंत्रालय वित्त पर मुख्य नियंत्रण और पर्यवेक्षण करने वाला प्रमुख संगठन है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वित्तीय कार्यों का सम्पादन प्रारम्भ में गठित जन विभाग द्वारा किया जाता था जिसे इंग्लैण्ड से दिशा निर्देश प्राप्त होते थे किन्तु कम्पनी के कार्यों में विस्तार के कारण पृथक् से वित्त विभाग की आवश्यकता अनुभव होने पर सन् 1810 में जन विभाग की वित्त शाखा को स्वतंत्र 'वित्त विभाग' का स्वरूप प्रदान किया गया। सन् 1843 में वित्त विभाग, गृह विभाग, विदेश विभाग तथा मिलिट्री विभाग नामक चार विभाग इम्पीरियल सचिवालय में कार्यरत थे।

सन् 1843 में वित्त विभाग की राजस्व शाखा, गृह विभाग में समाहित कर दी गई। सन् 1860 में राजस्व शाखा (गृह विभाग) के वाणिज्यिक कार्य वित्त विभाग को प्रदाने करते हुए इसे 'वित्त एवं वाणिज्य विभाग' नाम दिया गया लेकिन सन् 1905 में 'वाणिज्य एवं उद्योग विभाग' की पृथक् से संरचना की गई। सन् 1909 तथा 1919 के भारत सरकार अधिनियमों के माध्यम से वित्त विभाग के कार्यक्षेत्र में अनेक परिवर्तन किए गए। लन्दन स्थित भारत सचिव का इस विभाग पर निरन्तर नियंत्रण बना रहा जो स्वतंत्रता के पश्चात् ही समाप्त हुआ। सन् 1947 में इसे वित्त मंत्रालय का

नाम दिया गया जिसमें व्यय, आर्थिक मामले तथा राजस्व नामक तीन शाखाएँ कार्यरत थी। सन् 1949 में वित्त मंत्रालय के अधीन दो विभाग बनाए गए :–

1. राजस्व एवं व्यय विभाग
2. आर्थिक मामले विभाग।

सन् 1955 में वित्त मंत्रालय के अधीन 'कम्पनी लॉ विभाग' गठित किया गया जिसे 1958 में वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय को हस्तान्तरित कर दिया गया। सन् 1963 के आर्थिक सुधारों हेतु वित्त मंत्रालय के अधीन 'समन्वय विभाग' बनाया गया तथा कम्पनी लॉ विभाग को वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय से लेकर वित्त मंत्रालय के अधीन 'राजस्व एवं कम्पनी लॉ विभाग' नामक विभाग के अधीन कर दिया गया। अगले वर्ष 'कम्पनी लॉ एवं बीमा विभाग' का गठन किया गया। इस प्रकार सन् 1964 में वित्त मंत्रालय के अधीन राजस्व, व्यय, आर्थिक मामलात, समन्वय तथा कम्पनी लॉ एवं बीमा नामक पांच विभाग कार्यरत थे। सन् 1966 में कम्पनी लॉ को विधि मंत्रालय को सौंप दिया गया। सन् 1967 में समन्वय विभाग भी समाप्त कर दिया गया। इस प्रकार सन् 1967 में वित्त मंत्रालय के अधीन तीन विभाग राजस्व एवं बीमा विभाग, व्यय विभाग तथा आर्थिक मामलात विभाग कार्यरत थे।

वित्त मंत्रालय की संगठनात्मक तथा कार्यात्मक संरचना में निरन्तर परिवर्तन आता रहा है क्योंकि प्रशासनिक कार्यों में संशोधन का प्रत्यक्ष प्रभात वित्त मंत्रालय पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है। उपर्युक्त वर्णित परिवर्तनों के अतिरिक्त सन् 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण, सन् 1972 में साधारण बीमा का राष्ट्रीयकरण, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1969 एवं कम्पनी अधिनियम, 1956 में हुए संशोधन ने वित्त मंत्रालय की संरचना को बार–बार प्रभावित किया है। नब्बे के दशक में इस मंत्रालय में चार विभाग यथा–राजस्व एवं बीमा, व्यय आर्थिक मामलात तथा बैंकिंग कार्यरत थे। वर्ष 1996–97 के दौरान विधि एवं न्याय मंत्रालय से कम्पनी कार्य विभाग लेकर वित्त मंत्रालय में मिला दिया गया था जिसे सन् 1998 में फिर से विधि एवं न्याय मंत्रालय के अधीन कर दिया गया है। इस प्रकार वर्तमान में वित्त मंत्रालय के अधीन पाँच विभाग कार्यरत हैं :

1. आर्थिक मामले विभाग (Economic Affairs Department)
2. व्यय विभाग (Expenditure Department)
3. राजस्व विभाग (Revenue Department)
4. वित्तीय सेवाएं विभाग (Financial Services Department)
5. निवेश एवं सार्वजनिक सम्पत्ति प्रबंधन विभाग (Investment and Public Asset Management Department)

संगठन एवं कार्य (Organisation and Functions)

वित्त मंत्रालय का सर्वोच्च पद वित्त मंत्री द्वारा धारण किया जाता है जो केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में एक वरिष्ठ, अनुभवी तथा कार्यकुशल राजनीतिज्ञ होता है। वित्त मंत्री की सहायतार्थ वित्त राज्य मंत्री तथा उप मंत्री भी नियुक्त किए जाते हैं। सत्तारूढ़ दल की नीतियों तथा कार्यकुशलता, आम बजट तथा जनकल्याण हेतु शुरू की जाने वाली नवीन योजनाओं के माध्यम से वित्त मंत्री ही राष्ट्र के सम्मुख आता है। वित्त मंत्री को प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए वित्त सचिव कार्यरत होता है जो सामान्यतः भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। वित्त सचिव की सहायतार्थ पांच सचिव कार्यरत हैं जो अपने–अपने विभागों के प्रमुख भी होते हैं। पांचों सचिवों की सहायतार्थ अनेक विशिष्ठ सचिव, अतिरिक्त सचिव, उप सचिव इत्यादि पदस्थापित होते हैं जो भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षण सेवा, केन्द्रीय राजस्व सेवा, केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क सेवा, भारतीय

रेलवे सेवा तथा केन्द्रीय सचिवालय सेवा से संबंधित होते हैं।

(क) आर्थिक कार्य विभाग (Economic Affairs Department) : देश के आम बजट तथा राष्ट्रपति शासन वाले राज्य का बजट तैयार करने, आर्थिक मामलों पर निगरानी रखने तथा मुद्रा, बैंकिंग, बीमा को नियंत्रित करने का दायित्व यह विभाग निभाता है जो आठ प्रभागों में बंटा हुआ है –

1. आर्थिक प्रभाग – यह प्रभाग भारत सरकार की आर्थिक नीतियों से संबंधित कार्य सम्पादित करता है। अर्थव्यवस्था के कार्य निष्पादन पर पर्यवेक्षण रखना, समसामयिक परिवर्तनों पर निगरानी रखना, आर्थिक नीतियों की समीक्षा करना, विकास में गति लाने के सुझाव देना, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण करना तथा 'आर्थिक समीक्षा' तैयार करना इसके प्रमुख दायित्व हैं। आर्थिक समीक्षा के अंतर्गत विदेशी क्षेत्र, राजकोषीय नीति तथा मुद्रा, उद्योग तथा आधारभूत संरचना, कीमतें तथा कृषि, समन्वय तथा सामाजिक क्षेत्र पर चर्चा की जाती है। इस प्रभाग में वित्तीय नीति तथा लोक वित्त, संतुलित भुगतान, उत्पादन तथा सूचना, मूल्य, धन तथा उधार नामक कई इकाइयाँ कार्यरत हैं।

2. बैंकिंग प्रभाग – यह प्रभाग वाणिज्यिक बैंक नीति, शाखा विस्तार, कृषि सुधार, देश–विदेश के बैंक तथा राष्ट्रीय आवास बैंक से संबंधित कार्य निष्पादित करता है जो मुख्यतः बैंकिंग परिचालन, औद्योगिक वित्त, प्राथमिकता क्षेत्र, कार्मिक संबंध तथा सतर्कता से संबंधित होते हैं। 19 जुलाई, 1969 के अध्यादेश द्वारा बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। अगस्त, 1991 में वित्तीय प्रणाली के ढांचे, संगठन तथा कामकाज को लेकर बनी एम. नरसिंहम समिति की अनुशंसा के पश्चात् यह प्रभाग बैंकों की बैलेंस शीट पर अधिक निगरानी रखने लगा है। भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के अन्तर्गत 1 अप्रैल, 1935 को गठित तथा 1 जनवरी, 1949 को राष्ट्रीयकृत्त रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया इस क्रम में वित्त मंत्रालय को तकनीकि परामर्श प्रदान करता है। एक रूपये का नोट वित्त मंत्रालय ही जारी करता है।

3. बीमा प्रभाग – बीमा प्रभाग बीमा से संबंधित गतिविधियों को नियंत्रित करता है। एक सितम्बर, 1956 को गठित भारतीय जीवन बीमा निगम तथा नवम्बर, 1972 में गठित भारतीय साधारण बीमा निगम जो नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी लि॰, न्यू इण्डिया इंश्योरेन्स कम्पनी लि॰, ओरियण्टल इन्श्योरेन्स कम्पनी लि॰ तथा यूनाइटेड इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लि॰ के माध्यम से कार्य करती है तथा डाक बीमा योजना को यह प्रभाग मार्गदर्शन प्रदान करता है। बीमा नीति एवं प्रशासन संचालन में यह विभाग प्रमुख अधिकरण है। प्रमुख बीमा योजनाओं की घोषणा तथा जनकल्याण की नीति भी इसी प्रभाग द्वारा निर्मित होती है। बीमा क्षेत्र में बनी निजी कम्पनियों को भी यह प्रभाग निंयत्रित–निर्देशित करता है।

4. बजट प्रभाग – यह प्रभाग देश के आम बजट, संघ शासित प्रदेशों तथा राष्ट्रपति शासन के अधीन आए हुए राज्यों के बजट का निर्माण, अनुदान मांगों, अतिरिक्त एवं पूरक मांगों को तैयार करने, मंत्रिमण्डल के सम्मुख प्रस्तुत करने, लोक ऋण, बाजार ऋण, आर्थिक मार्गोपाय, उधार एवं ब्याज की दरों तथा भारत की आकस्मिक निधि से संबंधित कार्य संचालित करता है। 'राष्ट्रीय बजट संगठन' भी इसी प्रभाग के संलग्न रहकर कार्य करता है।

5. पूंजी निवेश प्रभाग – यह प्रभाग पूंजी निर्गम नियंत्रण, विदेशी निवेश–नीति, विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में बहुराष्ट्रीय निगमों के लिए आचार संहिता, भारतीय निवेश केन्द्र, अनिवासी भारतीय को भारत के निवेश के लिए सुविधाएं, शेयर बाजार तथा 'भारतीय यूनिट ट्रस्ट' से संबंधित कार्य सम्पादित करता है। इस प्रभाग का मुख्य कार्य अधिक से अधिक पूंजी निवेश करवाना है।

6. विदेशी वित्त विभाग – विदेशी सरकारों द्वारा भारत को मिलने वाले अनुदान, आपात सहायता, मानवीय सहायता तथा ऋणों को यह प्रभाग निर्देशित करता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ, एशियाई विकास बैंक, अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास निधि, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम, राष्ट्रमण्डल तकनीकी सहयोग निधि, विदेशी मुद्रा बजट तथा ऋण अदायगी से संबंधित कार्यों के अतिरिक्त ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, कनाडा, नीदरलैण्ड, बेल्जियम, इटली, आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड, रूस, चैकोस्लोवाकिया तथा कोलम्बों प्लान से प्राप्त सहायता भी नियंत्रित करता है।

7. फंड बैंक प्रभाग – यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया द्वारा सन् 1986 से लन्दन स्टॉक एक्सचेंज से संबंद्ध 'इण्डिया फंड' तथा सन् 1997 में विदेश में पहला 'इण्डिया डेट फंड' नामक ऋण कोष चालू किया गया है जो मिस्त्र तथा श्रीलंका को सहायता प्रदान करता है। इसी प्रकार के वित्तीय संसाधन एकत्र कर वित्त मंत्रालय ने फंड बैंक प्रभाग स्थापित किया है जो मूलतः वित्तीय सहायता से संबंधित कार्य देखता है।

8. मुद्रा तथा सिक्के प्रभाग – भारतीय मुद्रा, सिक्के, रूपये, स्टाम्प, डाक सामग्री, टिकिट, ज्यूडिशियल स्टाम्प, नॉन–ज्यूडिशियल स्टाम्प, भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारतीय स्टेट बैंक के चैक, राष्ट्रीय बचत प्रमाण–पत्र, इंदिरा विकास पत्र, किसान विकास पत्र, पोस्टल ऑर्डर, पासपोर्ट तथा प्रोमिसरी नोट इत्यादि छपवाने में यह प्रभाग नियंत्रण करता है। इण्डिया सिक्यूरिटी प्रेस, नासिक रोड़ की दो इकाइयाँ स्टाम्प प्रेस तथा सेंट्रल स्टाम्प डिपो हैं। करेंसी नोट प्रेस, नासिक रोड़, सिक्यूरिटी पेपर मील होशंगाबाद, बैंक नोट प्रेस, देवास, सिक्यूरिटी प्रिन्टिंग प्रेस, हैदराबाद में हैं। मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद एवं नोएडा में चार सरकारी टकसाल हैं जो सिक्के ढालने, सोने–चांदी की परख करने तथा पदकों का उत्पादन करती हैं। करेंसी नोट प्रैस (नासिक रोड़) 10, 50 तथा 100 रूपये के नोट छापती है जबकि करेंसी नोट प्रैस (देवास) 20, 50, 100 तथा 500 रूपये के नोट छापती है। सिक्यूरिटी प्रिंटिंग प्रैस (हैदराबाद) द्वारा पोस्टकार्ड, लिफाफे, नॉन ज्यूडिशियल स्टाम्प तथा केन्द्रीय एक्साइज स्टाम्प मुद्रित किए जाते हैं। सिक्युरिटी पेपर मिल (होशंगाबाद) बैंक नोट तथा अन्य महत्वपूर्ण कागजात मुद्रित करती है। मुम्बई, कोलकाता, हैदराबाद तथा नोएडा स्थित टकसालों द्वारा सिक्कों का उत्पादन, सोना तथा चांदी की परख, मैडल तथा स्मृति सिक्कों का निर्माण किया जाता है।

   सन् 1985 में गठित 'आर्थिक आसूचना ब्यूरो' जो आर्थिक अपराधों पर नियंत्रण, आसूचना तथा समन्वय करता है तथा 12 अप्रैल, 1988 को गठित 'भारतीय प्रतिभूति और एक्सचेंज बोर्ड' जो 1995 से वैधानिक संस्था है, पूंजी जारी करने वाली प्रतिभूतियों के अंतरण से संबंधित कार्य देखता है, इसी विभाग के सहायक अभिकरण हैं। आर्थिक कार्य विभाग चैरिटेबल एण्डोमेण्ट एक्ट, 1890, इण्डियन सिक्यूरिटी एक्ट, 1906, करेन्सी आर्डिनेन्स, 1990, पूंजी निर्गम (नियंत्रण) अधिनियम, 1947 तथा एशियाई विकास अधिनियम, 1966 का क्रियान्वयन भी नियंत्रित करता है।

(ख) व्यय विभाग (Expenditure Department) – यह विभाग मुख्यतः भारत सरकार के समस्त विभागों में मितव्ययता लाने, व्यय को नियंत्रित करने, लोक सेवाओं पर नियंत्रण रखने, वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन करने, लागत–लेखा पर परामर्श देने तथा रक्षा लेखा के कार्यों को सम्पादित करता है। इस विभाग के अधीन कार्यरत प्रभागों का विवरण निम्नानुसार है–

1. संस्थापना प्रभाग – संस्थापना प्रभाग वेतन पाने वाले केन्द्र सरकार के लोक सेवकों की सेवा शर्तों से संबंधित कार्य नियंत्रित करता है जिसके अंतर्गत वेतनमान संशोधन एवं नियमन, भत्ते निर्धारण तथा अन्य लाभ सम्मिलित हैं। यह प्रभाग वेतनमान संशोधन, वेतनवृद्धि, प्रतिनियुक्ति भत्ता, कैडर रिव्यू इत्यादि मामलों में तुलनात्मक आपेक्षिकता तथा कर्त्तव्य को ध्यान में रखकर परीक्षण कर परामर्श देता है। वेतन आयोगों की

अनुशंसाएं भी यही प्रभाग संचालित कराता है। सन् 1968 में बनी 'वेतन अनुसंधान इकाई' महंगाई भत्ते, शहरी क्षतिपूर्ति भत्ते तथा मकान किराया भत्ते पर विश्लेषण करती है। एक जनवरी, 1990 से कार्यरत 'केन्द्रीय पेंशन लेखा कार्यालय' भी इस प्रभाग से समन्वित रह कर कार्य करता है।

2. योजना वित्त प्रभाग – पूर्व में योजना वित्त प्रभाग दो शाखाओं में विभक्त था जो अब एकीकृत कर दिया गया है। राज्यों की वार्षिक योजनाओं के लिए चाहे वे केन्द्र द्वारा प्रायोजित हों या विदेशी सहायता प्राप्त हों, पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सीमा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, गैर योजना राजस्व घाटा अनुदान, राज्यों में आपदा राहत कोष के लिए केन्द्र का हिस्सा तथा राष्ट्रीय आपदा राहत कोष में केन्द्रीय सहायता के हिस्से के निर्धारण से संबंधित व्यवस्था करता है।

3. वित्त आयोग प्रभाग – संविधान के अनुच्छेद–280 के अंतर्गत प्रति पांच वर्ष पश्चात् राष्ट्रपति वित्त आयोग गठित करता है जो केन्द्र एवं राज्यों में करों के बँटवारे तथा अनुदान इत्यादि पर परामर्श देता है। यह प्रभाग वित्त आयोग को प्रशासनिक सहायता उपलब्ध कराता है तथा वित्त आयोग की अनुशंसाओं की क्रियान्विति के क्रम में सहायता प्रदान करता है। अब तक 15 वित्त आयोग रिपोर्ट दे चुके हैं।

4. लेखा एवं महानियंत्रण प्रभाग – यह प्रभाग भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक कार्यालय से समन्वय करता है तथा उसे आवश्यक सामग्री, प्रशासनिक सहायता एवं संरचना उपलब्ध कराता है। एक संवैधानिक संस्था के रूप में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ तथा राज्यों के लेखाओं के स्वरूप निर्धारित करने तथा लेखा परीक्षण करने की राष्ट्रपति की शक्तियों का (अनुच्छेद 150) प्रयोग करता है। वस्तुतः नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कार्यालय ही 'भारतीय लेखा एवं अंकेक्षण विभाग' होता है।

5. लागत लेखा प्रभाग – यह प्रभाग लागत तथा लेखाशास्त्र में विशेषज्ञता प्राप्त अभिकरण है जो भारत सरकार के समस्त मंत्रालयों या विभागों एवं अन्य अभिकरणों को औद्योगिक लागत तथा मूल्य इत्यादि विषयों पर व्यावसायिक सहायता प्रदान करता है। मुख्यतः मितव्ययता लाना तथा कुशलता प्रदर्शित करना इस प्रभाग का प्रयास रहता है।

6. कर्मचारी निरीक्षण शुल्क – सन् 1964 से गठित यह प्रभाग प्रशासनिक कुशलता तथा मितव्ययता की स्थापना करने का प्रयास करता है। कार्य निष्पादन मानक तथा पद्धतियां तैयार करना, तरीके–प्रणाली परिवर्तित करना, कार्य–विधियों में नवाचार करना तथा कार्य प्रणाली इत्यादि का अध्ययन करना एवं प्रशासनिक सुधार तथा सार्वजनिक शिकायत विभाग को आवश्यक कार्यवाही की अनुशंसा करना इसके मुख्य कृत्य हैं। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस एकक अनुशंसाएँ परामर्श नहीं बल्कि आदेशात्मक होती हैं जिन्हें एक निश्चित अवधि में पूर्णरूपेण अमल में लाना आवश्यक होता है।

7. क्रियान्वयन प्रकोष्ठ – यह प्रकोष्ठ योजना कार्यों के निष्पादन के समय हो रहे व्यय को निंयत्रित करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। साथ ही योजनाओं की प्रगति में योजना आयोग (वर्तमान नीति आयोग) से समन्वय करता है एवं राज्य सरकारों से रिपोर्ट इत्यादि प्राप्त कर योजना वित्त प्रभाग से समन्वय करता है।

8. समन्वित वित्त प्रभाग – यह प्रभाग नवगठित है जो समस्त वित्तीय संसाधनों को एकीकृत स्वरूप प्रदान कर विश्लेषण करता है। कर, शुल्क, गैर कर प्राप्तियाँ, विदेशी सहायता तथा आंतरिक ऋण इत्यादि से संबंधित आय अनुमान लगाकर तत्सम्बन्धी व्यय नीति बनाना इसके मुख्य कार्य हैं।

व्यय विभाग में ही सन् 1965 ये गठित 'लोक उपक्रम ब्यूरो' कार्यरत है। यह ब्यूरो सरकारी निगमों तथा कम्पनियों से संबंधित वित्तीय कार्यों पर निगरानी रखता है।

विक्रय कर विंग प्रभाग – यह प्रभाग राजस्व विभाग माल के अन्तर्राज्यीय विक्रय कर पर उद्ग्रहण केन्द्रीय विक्रय कर से संबंधित विधायी कार्य को देखता है। जबकि केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम 1956 को लागू करने का कार्य राज्य सरकारों का है। विक्रय कर प्रभाग भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 से संबंधित कुछ मामलों को भी देखता है।

केन्द्रीय आर्थिक आसूचना ब्यूरो प्रभाग – इस प्रभाग की स्थापना जुलाई 1985 में की गई जिसका मुख्य कार्य आर्थिक अपराधों की जाँच–पड़ताल करके और आर्थिक कानूनों को लागू करने से संबंधित विभिन्न एजेन्सियों द्वारा आसूचना एकत्र करने की कार्यवाहियों, जाँच–पड़ताल के प्रयासों और प्रवर्तन कार्यवाही का समन्वय करना तथा उसे सुदृढ़ बनाना। यह केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तर पर इन कार्यों से संबंधित विभागों और निदेशालयों के साथ सम्पर्क बनाये रखता है। यह राजस्व विभाग में कार्यरत जाँच–पड़ताल करने वाली एजेन्सियों को पूर्व निर्देश देने और नियंत्रण रखने का कार्य भी करता है।

प्रवर्तन निदेशालय प्रभाग – प्रवर्तन निदेशालय प्रभाग मुख्यतः देश में विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के उपबन्धों को लागू करवाने तथा विदेशी मुद्रा के बाहर जाने को रोकने से संबंधित कार्य करता है। इसके लिए यह प्रभाग विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 के द्वारा भारत के विदेशी मुद्रा कारोबार के लिए विनियमन एवं नियंत्रण के लिए व्यापक प्रबन्ध करता है।

व्यापक नियंत्रण ब्यूरो प्रभाग – यह प्रभाग भारत में व्यापक औषधि एवं मन प्रभाव पदार्थ अधिनियम, 1985 को लागू करके देश–विदेश में इसका अवैध प्रचलन और प्रसार रोकता है।

समपहृत सम्पत्ति अपील अधिकरण प्रभाग – देश में इसकी स्थापना 1977 से की गई है। यह प्रभाग तस्कर और विदेशी मुद्रा छल साधक (सम्पत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 के तहत अपील अधिकरण के रूप में आर्थिक अपराधी द्वारा स्वयं और कोफेकोसा के अधीन नजरबन्द व्यक्तियों अथवा उनके नाम पर विशिष्टीकृत रिश्तेदारों/सम्बन्धियों द्वारा गैर–कानूनी तरीकों से प्राप्त सम्पत्ति को समपहरण के लिए सक्षम प्राधिकारियों की हैसियत से तैनात अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरूद्ध अपीलें सुनता है।

आयकर समझौता आयोग प्रभाग – इस प्रभाग के अन्तर्गत आयकर समझौता आयोग से संबंधित कार्य किये जाते हैं। आयकर समझौता आयोग 1–4–1976 को आयकर और धनकर के मामलों के निपटाने हेतु आयकर अधिनियम 1961 के अध्याय XIX क तथा धनकर अधिनियम, 1957 के अध्याय V-क के अन्तर्गत गठित किया गया है। आयकर समझौता आयोग की चार पीठें (बैंचें) स्थापित की गई हैं। प्रथम पीठ नई दिल्ली में है जिसमें एक अध्यक्ष एवं दो सदस्य हैं जबकि अतिरिक्त पीठ (बैंचें) मुम्बई, चेन्नई तथा कलकत्ता में स्थापित हैं जिसमें प्रत्येक में एक उपाध्यक्ष एवं दो सदस्य होते हैं।

सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क, स्वर्ण नियंत्रण अपील अधिकरण प्रभाग – यह प्रभाग सीमा शुल्क अधिनियम 1962, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं नमक अधिनियम 1944 तथा स्वर्ण नियंत्रण अधिनियम 1968 के अंतर्गत आयुक्त एवं आयुक्त (अपील) के द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपीलों के निपटान के लिए स्थापित किया गया है। इसे सीमा शुल्क (टैरिफ) अधिनियम, 1985 के अन्तर्गत एन्टी डम्पिंग शुल्क और सेवा कर से संबंधित मामलों के संबंध में पदनामित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों के खिलाफ अपील सुनने का अधिकार भी प्रदान किया गया है। इस अधिकरण में एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्ष तथा 18 सदस्य हैं। इसकी दिल्ली, मुम्बई में दो–दो तथा कलकत्ता एवं चेन्नई में एक–एक बैंच है।

अग्रिम विनिमय प्राधिकरण प्रभाग – यह 1 जून 1993 से प्रारम्भ हुआ है। इसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा वित्त अधिनियम, 1993 के आधार पर आयकर अधिनियम 1967 के तहत की गई है। इस प्राधिकरण में एक अध्यक्ष तथा दो सदस्य हैं। यह प्राधिकरण जो अनिवासी आवेदनकर्त्ता द्वारा किये गए अथवा किये जाने वाले प्रस्तावित कारोबार

के संबंध में इसकी कर देयताएँ निर्धारित करने में उठ सकने वाले मामलों से संबंधित कानूनी प्रश्नों अथवा आवेदन–पत्र में विनिर्दिष्ट तथ्यों के संबंध में अनिवासियों के लिए बाध्यकारी निर्णय देता है।

आन्तरिक कार्य अध्ययन एकक प्रभाग – यह प्रभाग राजस्व विभाग के अन्तर्गत आने वाले संगठनों में प्रशासन में स्वच्छता लाने हेतु मार्गदर्शी सिद्धान्तों का प्रचार–प्रसार करता है। इसके लिए यह प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग तथा राष्ट्रीय अभिलेखागार से सम्पर्क बनाये रखता है।

राजभाषा नीति कार्यान्वयन प्रभाग – यह प्रभाग निदेशक (राजभाषा) के नियंत्रण में कार्य करता है। इसकी सहायता के लिए इसमें दो उप–निदेशक, चार सहायक निदेशक तथा अन्य सहायक स्टाफ कार्यरत हैं। यह प्रभाग राजभाषा नीति के कार्यान्वयन तथा राजभाषा विभाग द्वारा समय–समय पर जारी आदेशों और अनुदेशों का कार्यान्वयन करता है। इस प्रभाग का यह प्रयास रहता है कि सभी स्तरों पर सरकारी काम में हिन्दी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग हो।

सहायता एवं अनुदान प्रभाग – यह प्रभाग राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अनुसंधान कार्यक्रमों को सहायता अनुदान देता है। इसके अतिरिक्त यह राजस्व विभाग के देशभर में संबंधित कार्यालयों के कर्मचारियों के खेलकूद एवं सांस्कृतिक क्रियाक्लापों के लिए सहायता अनुदान देता है।

राजस्व विभाग (Revenue Department)

वित्त मंत्रालय का राजस्व विभाग तीसरा महत्वपूर्ण विभाग है, जो दो सांविधिक बोर्डों–केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड के माध्यम से देश में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संघीय करों से संबंधित राजस्व मामलों के बारे में निंयत्रण रखता है। इसका इंचार्ज सचिव (राजस्व) होता है। इसके कार्यों में सहायता हेतु अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं। राजस्व विभाग को कार्यों की दृष्टि से निम्न 14 प्रभागों में संगठित किया गया है–

1. सामान्य प्रशासन प्रभाग,
2. केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड प्रभाग,
3. केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड प्रभाग,
4. विक्रय कर विंग प्रभाग,
5. केन्द्रीय आर्थिक आंकलन ब्यूरो प्रभाग,
6. प्रवर्तन निदेशालय प्रभाग,
7. स्वायत्त नियंत्रण ब्यूरो प्रभाग,
8. समपहृत सम्पत्ति अपील अधिकरण प्रभाग,
9. आयकर समझौता आयोग,
10. सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क एवं स्वर्ण नियंत्रण अपील अधिकरण प्रभाग,
11. अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण प्रभाग,
12. आन्तरिक कार्य अध्ययन एकक प्रभाग,
13. राजभाषा नीति कार्यान्वयन प्रभाग,
14. सहायता अनुदान प्रभाग

सामान्य प्रशासन प्रभाग – यह प्रभाग राजस्व विभाग के मुख्यालय से संबंधित सभी प्रशासनिक कार्यों, दोनों बोर्डों के मध्य समन्वय, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899, केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 और समझौता आयोग (धनकर, सम्पत्ति कर), समपहृत सम्पत्ति अपील अधिकरण, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क, स्वर्ण नियंत्रण अपील अधिकरण, अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण, प्रवर्तन निदेशालय और तस्करी एवं विदेशी मुद्रा ऋण माध्यम अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारियों एवं स्वापक औषधि एवं मनप्रभावी पदार्थ अधिनियम से संबंधित कार्यों को देखता है।

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड प्रभाग – यह प्रभाग केन्द्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क बोर्ड से संबंधित कार्य देखता है। बोर्ड में एक अध्यक्ष तथा पाँच सदस्य होते हैं जो भारत सरकार के क्रमशः पदेन विशेष सचिव एवं अपर सचिव होते हैं। यह प्रभाग बोर्ड के माध्यम से सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्कों के उदग्रहण तथा वसूली करने, तस्करी की रोकथाम करने तथा इस बोर्ड के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले सीमा शुल्क; केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा नारकोटिकस से संबंधित मामलों के प्रशासन हेतु नीति तैयार करता है। यह बोर्ड अपने अधीनस्थ संगठनों जैसे–सीमा शुल्क गृहों, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आयुक्तालयों तथा केन्द्रीय राजस्व नियंत्रण प्रयोगशाला के लिए प्रशासनिक प्राधिकरण का भी कार्य करता है।

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड प्रभाग – यह राजस्व विभाग का एक महत्वपूर्ण प्रभाग है जो देश में प्रत्यक्ष करों के द्वारा राजस्व प्राप्त करता है। आयकर तंत्र में केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड एक शीर्षस्थ संस्था है जो विभिन्न कानूनों के माध्यम से विभिन्न सांविधिक कार्यों को निष्पादित करने के अलावा कर प्रशासन से संबंधित नीतियों को तैयार करने और लागू करने के लिए भी उत्तरदायी है। इस बोर्ड में एक अध्यक्ष और पाँच सदस्य हैं। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड निम्न अधिनियमों को प्रशासन देखता है तथा इसके माध्यम से प्रत्यक्ष कर लगाकर राजस्व वसूली करता है – आयकर अधिनियम, 1961, धनकर अधिनियम 1957, दानकर अधिनियम, 1958, ब्याज कर अधिनियम, 1974, व्यय कर अधिनियम, 1987 तथा बेमानी लेनदेन (निषेध) अधिनियम, 1988 आदि।

वित्त मंत्रालय के कार्य (Function of Finance Ministry)

1. करों की प्राप्ति – संसद द्वारा प्रस्तावित स्वीकृत्ति और अनुमोदित सभी प्रकार के करों को प्राप्त करने का कार्य वित्त मंत्रालय का महत्वपूर्ण दायित्व है। इन करों को प्राप्त करने के लिए वित्त मंत्रालय देश के केन्द्रीय, क्षेत्रीय एवं सम्भागीय आधार पर अपने कार्यालय को सचेत करता है। वित्त मंत्रालय को सभी धन खजानों के माध्यम से प्राप्त होता है और वहीं वह जमा हो जाता है।
2. कराधान नीति का नियमन – सरकार के विभिन्न विभाग सम्भावित प्राप्तियों और व्यय का उल्लेख विवरण–पत्र मंत्रालय को प्रेषित करते हैं। अतिरिक्त व्यय के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती है। धन की प्राप्ति को अंतिम रूप देने का भी दायित्व वित्त मंत्रालय सम्पन्न करता है। सरकार की ऋण–नीति का भी निर्धारण वित्त मंत्रालय करता है।
3. आय व्यय का अनुमान – वित्त मंत्रालय के विविध कार्य केवल आय के साधनों तथा व्ययों के आवश्यक तथ्यों के विचार–विमर्श से संबंधित है। ये अनुमान तथ्यों पर आधारित होने के बाद ही सम्भावित होते हैं। अनुमान के बाद भी उनमें अधिक उलट–फेर संभव नहीं है।
4. व्यय पर नियंत्रण –वित्त मंत्रालय राष्ट्रीय आय के विवरण को बजट के रूप में प्रस्तुत करता है। संसद द्वारा स्वीकृत्ति प्रेषित कर दी जाती है। इस विभाग का कार्य इससे भी अधिक है। यह प्रत्येक विभाग के व्यय को कड़ी निगरानी से देखता है। यह अनावश्यक व्यय की सुविधा नहीं देता।

5. बजट की प्रस्तुति – वित्त मंत्रालय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बजट के निर्माण का है। वित्त मंत्रालय की दृष्टि से समस्त विभागों से प्राप्त आय–व्यय के विवरण को संचालित और वर्गीकृत करके बजट तैयार करता है तथा उसे संसद से पास होने पर निष्पादन हेतु सम्बद्ध विभागों को सूचित करता है।

इस प्रकार केन्द्र सरकार की सम्पूर्ण व्यवस्था वित्त मंत्रालय के नियंत्रण में है। सरकार के अन्य मंत्रालय भी अपने महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में वित्त मंत्रालय पर निर्भर रहते हैं। वित्त मंत्रालय वास्तव में विभिन्न मंत्रालयों में समन्वयकर्त्ता की भूमिका अदा करता है। इस मंत्रालय के पास वित्त व्यवस्था का उत्तरदायित्व होने से अन्य मंत्रालय या विभाग अपने को इसी पर आश्रित समझते हैं एवं इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं।

निवेश एवं सार्वजनिक सम्पत्ति प्रबन्धन विभाग (Investment and Public Asset Management Department)

प्रारम्भिक रूप से यह विभाग 10 दिसम्बर, 1999 को एक विभाग के रूप में स्थापित किया गया जिसका नाम विनिवेश विभाग था। सितम्बर, 2001 में इस विभाग को विनिवेश मंत्रालय बना दिया गया परन्तु मई 27, 2004 को इसे फिर से वित्त मंत्रालय में विनिवेश विभाग बना दिया गया। वर्तमान सरकार ने 2016 में इस विभाग का नाम बदलकर निवेश एवं सार्वजनिक सम्पत्ति प्रबन्धन विभाग रख दिया गया। इस विभाग का प्रमुख कार्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों व उद्यमों में निवेश तथा विनिवेश का प्रबंधन करना है। विनिवेश नीति के माध्यम से सरकार सार्वजनिक उद्यमों में कर्मचारी, वित्तीय व्यवस्था, उत्पाद व बाजार तकनीकों के प्रबंधन का कार्य चुस्ती से कर रही है जैसे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का निर्णय लेना, एयर इण्डिया, भारत पैट्रोलियम् निगम व अन्य सार्वजनिक कम्पनियों में विनिवेश करने का फैसला लेना आदि। इस विभाग का क्षेत्राधिकार निवेश व विनिवेश की योजनाओं व नीतियों का निर्माण, क्रियान्वयन व मूल्यांकन के दिशा–निर्देशों का संचालन करना, केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमों की रूपरेखा पर निर्णय लेना, राष्ट्रीय निवेश कोष का प्रबंधन, बाजार पूंजी व्यवस्थापन नियम व उपनियम निर्माण, निवेशकों के लिए नियम व शर्तें आदि निर्धारित करना है।

वित्तीय सेवाऐं विभाग (Financial Services Department)

वित्तीय सेवाऐं विभाग को वित्त मंत्रालय का भाग बनाया गया। इस विभाग का कार्य भारतीय बैंकों का कार्य संचालन, वित्तीय संस्थाओं, बीमा कम्पनियों तथा राष्ट्रीय पेंशन व्यवस्था का प्रबन्धन करना है। इन वित्तीय व्यवस्थाओं के वित्त प्रबन्धन के नियमों का निर्माण, क्रियान्वयन व मूल्यांकन संबंधित विधायी व कार्यकारी प्रबंधन करना है। यह विभाग वित्तीय समावेशी, सामाजिक सुरक्षा, अर्थव्यवस्था, किसान व आम आदमी कल्याण से संबंधित वित्तीय सुधारों के लिए पहल कदमी करता है। इसके कार्यक्षेत्र की फ्लेगसिप कुछ स्कीमों के नाम इस प्रकार है :– प्रधानमंत्री जन–धन योजना, प्रधानमंत्री सुरक्षा बीमा योजना, प्रधानमंत्री जीवन ज्योति बीमा योजना, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, अटल पैंशन योजना, प्रधानमंत्री व्यय वन्दन योजना आदि। यह विभाग सार्वजनिक क्षेत्र बैंकों, सार्वजनिक बीमा कम्पनियां, नाबार्ड, लघु उद्योग विकास बैंक, राष्ट्रीय गृह बैंक भारतीय आयात निर्यात बैंक, भारतीय उद्योग वित्त निगम तथा भारतीय रिर्जव बैंक को नीति सहायता करता है।

3.4 रक्षा मंत्रालय (Defence Ministry)

भारत के केन्द्रीय प्रशासन में रक्षा मंत्रालय की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके पीछे लम्बा अतीत है। सन् 1776 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में सैनिक विभाग के रूप में रक्षा मंत्रालय की स्थापना हुई थी। सन् 1938 में सैनिक विभाग के नाम में परिवर्तन कर इसे 'रक्षा विभाग' कहा जाने लगा। सन् 1942 में रक्षा विभाग का विभाजन कर इसे युद्ध विभाग तथा रक्षा विभाग में परिवर्तित कर दिया गया। इस तरह से रक्षा विभाग दो भागों में विभक्त हो गया। महायुद्ध की समाप्ति के बाद स्थिति में पुनः परिवर्तन हुआ और पूर्व स्थिति को बहाल करने का निर्णय लिया गया। परिणामस्वरूप युद्ध विभाग और रक्षा विभाग का पुनः एकीकरण करते हुए 'रक्षा विभाग' की स्थापना की गई। सन्

1946 में देश में अन्तरिम सरकार की स्थापना के साथ ही रक्षा मंत्रालय की स्थिति में परिवर्तन किया गया। अब इस विभाग की अध्यक्षता का दायित्व मुख्य सेनाध्यक्ष या सेनापति के स्थान पर मंत्री को सौंपा गया। सन् 1947 में रक्षा विभाग का नाम परिवर्तित करके रक्षा मंत्रालय कर दिया गया। इस तरह से रक्षा मंत्रालय का समय–समय पर पुनर्गठन होता रहा है।

1906 में सैनिक विभाग को समाप्त कर दो नये विभागों का निर्माण किया गया। प्रथम, सेना विभाग को सेनापति के अधीन तथा सेना आपूर्ति विभाग को सैनिक सदस्य के नियंत्रण में रखा गया। दोनों अपने–अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी थे। कुछ वर्षों बाद 1909 में सैनिक सदस्य के पद को समाप्त करके सेनापति सर्वोच्च सत्ता सहित सैनिक सदस्य बन गया। 1938 में सैनिक विभाग का नाम बदलकर रक्षा विभाग कर दिया गया। 1942 में रक्षा विभाग पुनः दो हिस्सों में विभाजित किया गया – युद्ध विभाग प्रमुख सेना कमाण्डर के अधीन और रक्षा विभाग भारत के रक्षा सदस्य के अधीन था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् दोनों विभागों को मिलाकर एक विभाग कर दिया गया जिसे रक्षा विभाग के नाम से सम्बोधित किया गया। स्वाधीनता के पश्चात् यह रक्षा मंत्रालय बन गया जो एक स्वतंत्र कैबिनेट मंत्री के अधीन था। इसी समय थल, वायु और नौसेना को अलग–अलग सेनापति के अधीन कर दिया गया। नवीन संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को रक्षा सेवाओं का सर्वोच्च सेनापति घोषित किया गया। इसके फलस्वरूप प्रमुख सेनापति का पद समाप्त (1955) कर दिया गया और सेना के प्रमुखों को थल सेना प्रमुख, नौसेना प्रमुख और वायु सेना प्रमुख कहा जाने लगा। सन् 1962 में 'रक्षा उत्पादन विभाग' की स्थापना की गयी और 1965 में 'रक्षा पूर्ति विभाग' स्थापित किया गया। सन् 1980 में रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग को इस मंत्रालय में स्थापित किया गया तथा 2004 में सेवा निवृत्त सैनिक कल्याण विभाग गठित किया गया। वर्तमान में इस मंत्रालय में कुल पाँच विभाग हैं। पांचवा विभाग दिसम्बर, 2019 में सैन्य मामले विभाग का गठन किया गया है।

कार्य–योजना और समितियाँ

सामान्यतः रक्षा मंत्रालय का काम करने का तरीका वही है जो अन्य मंत्रालयों का है। यद्यपि फाइलों की आवाजाही, टिप्पणियाँ, प्रारूप और पत्राचार के माध्यम से सभी सूचनाएँ उपलब्ध करने का औपचारिक तौर–तरीका मंत्रालय द्वारा अपनाया जाता है फिर भी प्रशासनिक प्रक्रिया, उच्च अधिकारियों के साथ सम्पर्क, बातचीत और परामर्श की पद्धति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कई वर्षों से रक्षा मंत्री की सहायता के लिए अनेक समितियाँ कार्य कर रही हैं जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण सेनाध्यक्षों की समिति है। इसी समिति में थल सेनाध्यक्ष, नौसेनाध्यक्ष और वायुसेनाध्यक्ष होते हैं। इस समिति का अध्यक्ष उसे बनाया जाता है, जो इस समिति में सबसे अधिक समय से काम कर रहा हो। इसी समिति की सहायता के लिए बहुत–सी उप–समितियाँ होती हैं, जो योजना, प्रशासन संचार आदि विशिष्ट विषयों पर विचार करती हैं। ये समितियाँ विभागीय समन्वय के साथ–साथ निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होती है।

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर तत्काल निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, उन पर रक्षा मंत्री की प्रायःकालीन बैठकों में विचार–विनियम किया जाता है। इन बैठकों में तीनों सेनाध्यक्ष, मंत्रिमण्डल के सचिव और रक्षा मंत्रालय के सभी विभागों के सचिव भाग लेते हैं।

मुख्य रक्षाध्यक्ष : दिसम्बर, 2019 में भारतवर्ष को जनरल विपिन रावत के रूप में प्रथम चीफ ऑफ डिफेंस नियुक्त किया गया।

सेनाध्यक्ष : सशस्त्र सेनाएँ अर्थात् थल सेना, नौसेना और वायुसेना अपने–अपने सेनाध्यक्षों के अधीन काम करती हैं और प्रधान स्टॉफ अफसर इनकी सहायता करते हैं।

समन्वित वित्त : वित्तीय सलाहकार (रक्षा सेवाएँ) अपने दायित्वों का निर्वाह करने में रक्षा मंत्रालय की सहायता करते हैं। मंत्रालय तथा सेना मुख्यालय से ये निकट सम्पर्क बनाए रखते हैं। वित्तीय सलाहकार के अधीन काम कर रहे वित्त विभाग के कार्य अनुबन्ध 2 में दिये गए हैं।

प्रशासन को कुशल बनाना :

समय–समय पर रक्षा–मंत्रालय के कार्य को गतिशील बनाने एवं प्रशासन को चुस्त व अधिक कुशल बनाने के लिए अनुशासनबद्धता तथा समय की पाबन्दी आदि अनेक उपाय अपनाए गये हैं। कुछ मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

- प्रशासन को अधिक कुशल बनाने में लगने वाले समय को कम करने और खर्च में मितव्ययता अपनाने के लिए अनेक अध्ययन किये गए। मंत्रालय का रिकॉर्ड ठीक प्रकार से रखने पर निरन्तर निगरानी रखी गयी है। बेकार और पुराने रिकार्ड को नष्ट करने के लिए प्रयत्न किए जाते रहे हैं।

- निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सभी अनुभागों का नियमित निरीक्षण करने के अलावा वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा विभिन्न परिसरों में स्थित कार्यालयों का नियमित अचानक निरीक्षण किए जाने की परम्परा और पद्धति का सहारा लिया जाता है। इनका उद्देश्य समय की पाबन्दी, सफाई और काम को शीघ्र निपटाना होता है। इसके परिणामस्वरूप मंत्रालय के काम के तौर–तरीके में काफी सुधार हुआ है।

- देश के लिए सुरक्षा योजना का निर्माण करना रक्षा मंत्रालय का सर्वोपरि और प्राथमिक कर्त्तव्य है। चीन के आक्रमण के बाद 1964 ई॰ में रक्षा के संबंध में निरन्तर योजना बनाए रहने का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। तब से निरन्तर विस्तृत योजना बनाने और उसका प्रबोधन करने रहने की योजना प्रचलित है।

- एक प्रक्रिया के रूप में योजना का विस्तार करते हुए रक्षा संगठन की विभिन्न युनिटों के कार्य कलापों में सामंजस्य लाया जाता है। अपने कार्य को सर्वोच्च महत्व प्रदान करते हुए इसका उद्देश्य आयोजकों की सहायता करना है ताकि वे भविष्य को अधिक स्पष्ट रूप से देख सकें और उपलब्ध सीमाओं के अन्तर्गत उसके लिए समुचित योजना तैयार कर सकें। इस प्रकार के प्रयत्नों के निर्धारण में विभिन्न तत्व कार्यनीति, सक्रियात्मक आवश्यकता, गुप्त जानकारियाँ और राजनीतिक सूझबूझ का योगदान रहता है।

रक्षा क्षेत्र का आकार बढ़ने के साथ–साथ उसकी योजना में जटिलताएँ बढ़ गई हैं। सक्रियात्मक आवश्यकता के स्तर पर आयोजना के काम में दो प्रकार के अभ्यास करने पड़ते हैं–

1. देश के संशोधनों का निश्चित कर उनमें से कितनी मात्रा में रक्षा के कार्यों में व्यय कर सकता है, और
2. इन संसाधनों को विभिन्न कार्यों के लिए आवंटित करना, जो बहुत ही आवश्यक है।

विभिन्न स्पर्धात्मक आवश्यकताओं को इस प्रकार समन्वित करना होता है कि समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके। इस बात का अभ्यास एक बहुत कठिन कार्य होता है।

रक्षा मंत्रालय का सचिवालय (Defence Ministry Secretarait)

रक्षा मंत्रालय का सचिवालय (Secretarait) की निम्नांकित 13 शाखाएँ (Branches) हैं–

- आर्डिनेंस शाखा (Ordinance Branch)
- एडजुटेण्ट जनरल की शाखा (Adjutant General's Branch)

- वायु शाखा (Air Branch)
- वेतन तथा पेंशन शाखा (Salary and Pension Branch)
- सामान्य स्टाफ शाखा (General Staff Branch)
- समन्वय शाखा (Co-ordination Branch)
- सावधानी व सतर्कत्ता शाखा (Vigilance Branch)
- नौ–सेना शाखा (Navy Branch)
- कर्मचारी वर्ग शाखा (Personnel Branch)
- पंजीकरण शाखा (Registration Branch)
- कर्मचारी सम्पर्क शाखा (Personnel Relations Branch)
- क्वार्टर मास्टर जनरल शाखा (Quarter-master General's Branch)
- प्रशासन शाखा (Administration Branch)

थल–सेना, नौ–सेना तथा वायु–सेना के प्रधान कार्यालय अथवा सदर मुकाम (Headquarters) इस मंत्रालय से सलंग्न होते हैं।

रक्षा व्यय (Defence Expenditure)

रक्षा योजना तैयार करने वालों को विश्व स्तर पर हुए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र में उत्पन्न विशिष्ट खतरों के संदर्भ में कार्यक्रमों की समीक्षा का चुनौतीपूर्ण कार्य करना होता है। रक्षा योजना तैयार करने वालों का यह प्रयास रहता है कि भारत की रक्षा सेनाओं की न्यूनतम अनुरक्षण आवश्यकताओं और उनके आधुनिकीकरण के कार्य में संतुलन रखा जाए जिससे अर्थव्यवस्था पर उसका अनावश्क बोझ न पड़े। भारत के आकार और सुरक्षा के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, रक्षा व्यय का निर्धारण जो केन्द्रीय सरकार के कुल व्यय का सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में किया गया है, पड़ोसी देशों के व्यय की तुलना में सबसे कम है।

रक्षा मंत्रालय के कार्य (Functions of Defence Ministry)

रक्षा मंत्रालय अपने तीनों विभाग – रक्षा विभाग, रक्षा उत्पादन एवं आपूर्ति विभाग, रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग तथा रक्षा वित्त विभाग के द्वारा निम्नलिखित कार्य करता है –

1. **रक्षा विभाग (Defence Department)** : इस विभाग के निम्नलिखित कार्य हैं :

- भारत और उसके प्रत्येक भाग की रक्षा करना, इसमें रक्षात्मक तैयारियाँ तथा ऐसे सभी काम आते हैं जो युद्ध के समय युद्ध को ठीक ढंग से चलाने तथा युद्ध के बाद सेना को ढंग से विकसित करने के लिए आवश्यक हैं।
- संघ की सशस्त्र सेनाएँ थल सेना, नौसेना, वायुसेना।
- थल सेना, नौसेना और वायुसेना के रिजर्व।

- प्रादेशिक सेना।
- राष्ट्रीय कैडिट कोर।
- थल सेना, नौसेना, वायुसेना और आयुध निर्माणियों से संबंधित कार्य।
- रिमाउंट, वेटरनरी और फार्म संगठन।
- कैंटीन स्टोर विभाग (भारत)
- रक्षा प्राक्कलनों से वेतन भोगी सिविलियन सेवाएँ।
- हाईड्रोग्राफिक सर्वेक्षण और नेवीगेशनल चार्ट बनाना।
- छावनियों के निर्माण, छावनी क्षेत्रों की हदबंदी और कुछ क्षेत्रों को उसकी सीमा से बाहर निकालना एवं क्षेत्रों के स्थानीय स्वायत्त शासन, ऐसे क्षेत्रों में छावनी बोर्डों का गठन तथा प्राधिकारियों और उनका अधिकार क्षेत्र तथा उनमें आवास संबंधी विनियमन (इसमें किराया नियंत्रण भी शामिल है)।
- रक्षा प्रयोजनों के लिए भूमि और सम्पति का अर्जन, अधिग्रहण, अभिरक्षा औश्र उसे वापसी, अनाधिकृत कब्जा करने वालों को रक्षा भूमि और सम्पति से बेदखल करना।
- भूतपूर्व सैनिकों से संबंधित मामले, इनमें पेंशन भोगी भी शामिल हैं।
- रक्षा लेख विभाग।
- सेना की जरूरतों की पूर्ति के लिए खाद्य सामग्री की खरीद और उसका निपटान (इसमें खाद्य और सिविल सप्लाई मंत्रालय (खाद्य विभाग) को सौंपी गयी मदें शामिल नहीं है)।
- तटरक्षक संगठन।
- देश में गोताखोरी और संबंधित कार्य–कलापों से सम्बद्ध मामले।
- रक्षा मंत्रालय के अधीन निम्नलिखित अंतर सेवा संगठन कार्य करते हैं–

    1) मुख्य प्रशासन अधिकारी का कार्यालय,
    2) सशस्त्र सेना चिकित्सा सेवा,
    3) राष्ट्रीय रक्षा कॉलेज,
    4) जन सम्पर्क निदेशालय,
    5) सेना चित्र प्रभाग,
    6) विदेशी भाषा निदेशालय,
    7) इतिहास अनुभाव,
    8) रक्षा संपदा महानिदेशालय,
    9) सेना खेलकूद नियंत्रण बोर्ड,

10) रक्षा प्रबंध कॉलेज, सिकंदराबाद और

11) रक्षा मंत्रालय पुस्तकालय।

2. रक्षा उत्पादन विभाग (Defence Production Department)

- आयुध निर्माणी बोर्ड और आयुध निर्माण,
- हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड,
- भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड,
- मझगाँव डॉक लिमिटेड,
- गार्डन रीच शिपबिल्डर्स एवं इंजीनियर्स लिमिटेड,
- गोवा शिपयार्ड लिमिटेड
- भारत डायनामिक्स लिमिटेड,
- मिश्र धातु निगम लिमिटेड,
- तकनीकी विकास और उत्पादन (वायु) निदेशालय सहित गुणवत्ता आश्वासन महानिदेशालय,
- मानकीकरण निदेशालय सहित रक्षा उपस्करों और भंडारों का मानकीकरण,
- भारत एवं मूवर्स लिमिटेड,
- वैमानिकी उद्योग का विकास और नागर विमानन विभाग तथा अंतरिक्ष विभाग से संबंधित प्रयोक्ताओं को छोड़कर अन्य प्रयोक्ताओं के कामकाज में समन्वय,
- रक्षा प्रयोजन के लिए आवश्यक वस्तुओं का देशीकरण, विकास और उत्पादन,
- मात्र रक्षा सेवाओं के लिए सामान की खरीद।

3. रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग (Defence Research and Development Department) : इस विभाग के कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट में निम्नानुसार प्रकाश डाला गया है–

- रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग इसके समस्त प्रकार के प्रशासनिक कार्यों को देखता है। इसके अलावा यह राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में रक्षा संबंधी अनुसंधान, विकास और परीक्षण का समन्वय कर राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादन–क्षमताओं संबंधी मुख्य विकास कार्यक्रमों में केन्द्रीय अभिकरण के रूप में कार्य करता है।
- रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन की देश भर में फैली हुई 40 प्रयोगशालाएँ, स्थापनाएँ तथा फील्ड यूनिटें हैं।
- रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन के विज्ञान और तकनीकी में अनेक विधाएँ शामिल हैं, जैसे – वैमानिकी, राकेट और प्रक्षेपास्त्र, इलेक्ट्रॉनिक और इंस्ट्रूमेंटेशन, समाघात वाहन, सामान्य इंजीनियरी, नौ–सेना की प्रणालियाँ, विस्फोटक अनुसंधान सहित शस्त्र तकनीक, कम्प्यूटर विज्ञान सामग्री खाद्य सामग्री और कृषि अनुसंधान, जीव–विज्ञान, व्यावहारिक विज्ञान, थल अनुसंधान, कार्य अध्ययन और प्रणाली

विश्लेषण के विस्तृत क्षेत्र शामिल हैं। रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग तीनों सेनाओं की निर्दिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने अथवा भविष्य में राष्ट्रीय सुरक्षा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उक्त सभी क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास परियोजनाएँ एवं तकनीकी विकास परियोजनाएँ चलाता है।

- स्टाफ परियोजनाओं की श्रेणी में सशस्त्र सेनाओं की विनिर्दिष्ट आवश्कताओं को पूरा करने के लिए मुख्य हथियार पद्धति के डिजाइन और विकास पर बल दिया जाता है। यह मुख्य कार्यक्रम अक्सर सामूहिक प्रयासों के रूप में शुरू किए जाते हैं जिसमें रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग की कई प्रयोगशालाएँ भाग लेती हैं। उत्पादन अभिकरण इन कार्यक्रमों के प्रारम्भिक चरण में ही इनके डिजाइन और विकास कार्यक्रमों से सम्बद्ध होते हैं।

- तकनीकी विकास परियोजनाओं की भावी प्रणालियों के डिजाइन और विकास के लिए अपेक्षित विज्ञान और तकनीकी आवश्यकता पूरी करना इन परियोजनाओं का मुख्य कार्य है। रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इस समय जो निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं तथा खतरों और संक्रियात्मक आवश्यकताओं में जो परिवर्तन आ रहे है उनको देखते हुए इस प्रकार के मूल अनुसंधान तथा विकास का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

- रक्षा अनुसंधान तथा विकास विभाग का देश में तकनीकी के विकास में काफी सराहनीय योगदान रहा है। अनुसंधान तथा विकास संगठन के वैज्ञानिकी, प्रक्षेपास्त्रों, इलेक्ट्रॉनिकी और शस्त्रों जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में हाल ही के निवेश स्तर में वृद्धि से यह आशा की जाती है कि अगले कुछ वर्षों में अनुसंधान तथा विकास की देशी तकनीकी के उपयोग से रक्षा उत्पादन में काफी वृद्धि होगी।

- मुख्य रक्षा प्रणालियों के विकास कार्यक्रमों के निष्पादन में केन्द्रीय अभिकरण की भूमिका निभाते हुए रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन समुचित प्रबंध संगठनों के माध्यम से कार्य करता है। समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार कार्य आगे बढ़ सके, इसके लिए संगठनों को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। परियोजनाओं की जानकारी हासिल करने और उच्च वैज्ञानिक तथा तकनीकी तत्वों वाले इन कार्यक्रमों की समीक्षा के लिए समुचित व्यवस्था की गई है।

- अनुसंधान तथा विकास कार्यकलापों के अलावा, रक्षा अनुसंधान तथा विकास योजनाओं को उनकी आवश्यकताएँ बताने, प्राप्त किए जाने वाले यन्त्र का मूल्यांकन करने, आग और विस्फोटकों से सुरक्षा करने तथा संक्रियात्मक समस्याओं को सुलझाने में मदद् दी जाती है। इस विभाग के कारण भारत अत्याधुनिक हथियारों का उत्पादन करने में सफल रहा है।

अन्य सेवा संगठन (Other Service Organization)

तीनों सेनाओं अर्थात् थल–सेना, नौ–सेना और वायु–सेना के लिए चिकित्सा, जन–सम्पर्क, खेलकूद, आवास और विदेशी भाषाओं की पढ़ाई आदि जैसी समान सुविधाएं उपलब्ध कराने के कार्य अन्तर–सेवा संगठनों के हैं। ये अन्तर–सेवा संगठन सीधे रक्षा मंत्रालय के अधीन काम करते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण संगठन इस प्रकार हैं–

- मुख्य प्रशासन अधिकारी का कार्यालय,
- सशस्त्र सेना चिकित्सा सेवा,
- रक्षा भूमि तथा छावनी,
- राष्ट्रीय रक्षा कॉलेज,

- जन–सम्पर्क निदेशालय,
- सेना चित्र प्रभाग,
- इतिहास अनुभाग,
- सेना खेलकूद नियंत्रण बोर्ड,
- विदेशी भाषा विद्यालय,
- रक्षा मंत्रालय पुस्तकालय।

मुख्य प्रशासन अधिकारी तीनों सेना मुख्यालयों और सेवा संगठनों के असैनिक कर्मचारियों के कार्मिक प्रबंध, प्रशासनिक और कल्याण सम्बन्धी मामलों को देखता है। मुख्य प्रशासन अधिकारी सशस्त्र सेना मुख्यालयों, अन्तर–सेवा संगठनों और सम्बद्ध यूनिटों के सभी सैनिक अफसरों के लिए रिहायशी आवास की व्यवस्था करता है। मुख्य प्रशासन अधिकारी, निदेशक (सुरक्षा) के रूप में रक्षा मुख्यालय सुरक्षा क्षेत्र में सुरक्षा संबंधी व्यवस्था और सुरक्षा अनुदेशों के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है।

सहायता प्राप्त संस्थान :

रक्षा मंत्रालय, रक्षा अध्ययन तथा विश्लेषण संस्थान, दिल्ली तथा दार्जिलिंग और उत्तरकाशी में स्थित पर्वतारोहण संस्थानों को उनके दैनिक कार्यों के लिए सहायता प्रदान करता है। एक अन्य सहायता प्राप्त संस्थान जवाहर पर्वतारोहण और शीतकालीन खेल संस्थान की स्थापना अक्टूबर, 1983 में की गई है।

4. **सेवा निवृत्त सैनिक कल्याण विभाग (Ex-Servicemen Welfare Department)** : यह विभाग सेवा निवृत्त सैनिकों की पेंशन, कल्याण व पुर्नस्थापना मामलों की देखरेख करता है। विभिन्न पूर्वसैनिकों की पेंशन व्यवस्थाओं का प्रबंधन व नीतिगत निर्णय लेना जैसे वन रैंक वन पैंशन आदि इस विभाग क्षेत्र का कार्य है। पूर्व सैनिकों के कल्याण की कार्ययोजनाओं के लिए दिशा–निर्देश तैयार करना, ठेका व्यवस्था के नियम, स्वास्थ्य सेवाओं के नियम, केन्द्रीय सैनिक बोर्डो का व्यवस्थापन, प्रधानमन्त्री स्कॉलरशिप स्कीम, सैनिक विश्राम गृह, सैनिकों के परिवारों का संरक्षण, सैनिक परिवारों के दैनिक उपयोग की वस्तुओं के लिए कैन्टीन व अन्य विभिन्न प्रकार की पूर्व सैनिकों के लिए सुविधाओं पर योजना व नीति निर्माण का अधिकार क्षेत्र सेवा निवृत्त सैनिक कल्याण विभाग के पास है।

5. **सैन्य मामले विभाग (Department of Military Affairs)** : सैन्य मामले विभाग की कमान भी भारत के प्रथम चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ जनरल बिपिन रावत ही संभाल रहे हैं। इस विभाग में सैन्य और असैन्य कर्मचारी होंगें। विभाग को तीनों सेनाओं के लिए संयुक्त योजना और उनकी आवश्यकताओं के एकीकरण के माध्यम से खरीद, प्रशिक्षण तथा स्टाफ में एकजुटता को बढ़ावा देने का कार्य सौंपा गया है। इस विभाग को एकजुटता के माध्यम से संसाधनों के इष्टतम उपयोग के लिए मौजूदा कमानों के पुनर्गठन की सुविधा और स्वदेशी उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा देने का कार्य सौंपा गया है। 30 दिसम्बर, 2019 रात्रि में जनरल बिपिन रावत को चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ व सैन्य मामले विभाग की कमान सौंपी गई। उपरोक्त सभी कार्यों को तीन वर्ष के अन्तर्गत लागू किया जाना है।

सशस्त्र सेनाओं तथा नागरिक अधिकारियों में सहयोग

कानून और व्यवस्था या आवश्यक सेवाएं बनाए रखने और प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित क्षेत्रों में जब कभी भी

राहत पहुँचाने के लिए सशस्त्र सेनाओं से कहा जाता है तो वे नागरिक अधिकारियों को आवश्यक सहयोग प्रदान करती हैं। ऐसे अवसर आते हैं जब विकास योजनाएँ शुरू करने के समय ऐसे विशेष प्रकार के उपकरण या विशेष जानकारी की जरूरत पड़ती है, जो सेनाओं के अलावा अन्यत्र सुलभ नहीं होती है। ऐसी स्थिति में सशस्त्र सेनाएँ नागरिक अधिकारियों को समुचित सहायता प्रदान करती है। सेनाएँ विभिन्न प्रकार का सर्वेक्षण करने वाली एजेन्सियों को सामरिक और अन्य सहायता देती हैं– विशेष रूप से ऐसी एजेन्सियों को जो दुर्गम स्थानों में सर्वेक्षण कर रही हों। इसके अलावा अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं के समय सशस्त्र सेनाएँ आवश्यक मद्द प्रदान करती हैं। सशस्त्र सेनाओं से सहायता केवल तभी मांगी जाती है, जब अन्य सभी विकल्प नकारात्मक और अपर्याप्त पाये गए हों। ऐसी व्यवस्था सशस्त्र सेनाओं के संक्रियात्मक एवं सैनिक कार्यों की दृष्टि से की जाती है।

कानून और व्यवस्था कायम रखना मूलतः नागरिक अधिकारियों का काम है लेकिन जब सशस्त्र सेनाओं से सहायता लेना अपरिहार्य हो जाए तो नागरिक अधिकारी उसकी मांग कर सकते हैं। यद्यपि नागरिक अधिकारियों की ओर से इस प्रकार की माँग आने पर उसकी पूर्ति करना सशस्त्र सेनाओं के लिए आवश्यक हो जाता है फिर भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उनसे प्राप्त सहायता का उपयोग कम से कम समय के लिए और किसी विशेष स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए ही किया जाए।

समय–समय पर देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने, साम्प्रदायिक दंगों को कुचलने, बाढ़ और भूकम्प से हुए विनाश में राहत कार्यों में सेना का उपयोग और नागरिक अधिकारियों और कर्मचारियों की हड़तालों के समय आवश्यक सेवाओं को बनाए रखने के लिए सेना का उपयोग किया जाता रहा है। सेना ने इन सब दायित्वों को अत्यंत कुशलता और अनुशासन के साथ निभाया है। भारतीय सेना को विश्व की सबसे अनुशासित सेना माना जाता है। इस प्रकार देश की रक्षा सेनाओं की नागरिक प्रशासन में महत्त्वपूर्ण स्थान है इसीलिए रक्षा सेनाओं की भूमिका ने जनसाधारण में उसकी 'छवि' को उज्जवल बनाया है।

आतंकवादियों और राष्ट्र–विरोधी तत्वों के विरूद्ध सेना की सक्रिय भूमिका :

भारतीय सेना ने देश की एकता और अखण्डता को नुकसान पहुँचाने वाले आतंकवादियों और उग्रवादियों के विरूद्ध कठोर और सफल कार्यवाही करके उनकी कमर तोड़कर रख दी है। पंजाब, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा और मिजोरम में आतंकवादियों और पृथकवादी तत्वों के विरूद्ध सेना ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। जूनत्र 1984 में पंजाब में 'ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार' और मई 1987 में 'ऑपरेशन ब्लैक थण्डर' द्वारा सेना ने सफलतापूर्वक आतंकवादियों का सफाया किया। त्रिपुरा में टीएनवी छापामारों को कुचलने में भी सेना ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह किया है। यह सेना का ही करिश्मा था कि नागालैण्ड में विद्रोही नागाओं को कुचला जा सका। सेना ने लालडेंगा के नेत्तृत्व वाले मिजो नेशनल फ्रन्ट को काबू में करके उसे राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा में सम्मिलित होने के लिए विवश किया। सन् 1990 में असम में 'उल्फा' उग्रवादियों को कुचलने के लिए सेना ने जो अभियान चलाया, उसे 'ऑपरेशन बजरंग' कहा गया। असम के कोंकराझार क्षेत्र में जातीय हिंसा को दबाने में सुरक्षा बलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि सामान्य और आपातकाल दोनों में रक्षा मंत्रालय अपनी सार्थक तथा सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करता आया है।

3.5 कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय (Ministry of Personnel, Public Grievances and Pension)

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय अपने आप में भारत सरकार का एक अनोखा मंत्रालय है। क्योंकि इसमें दो तरह की विषय वस्तु शामिल है। पहला कर्मचारी वर्ग, जिसमें कार्यरत्त कर्मचारियों तथा सेवानिवृत्त कर्मचारियों से संबंधित व्यवस्था की देखरेख के पहलू सम्मिलित हैं। दूसरा पहलू लोक शिकायतों के निपटारे बारे व्यवस्थाऐं स्थापित का कार्यभार इस मंत्रालय के उत्तराधिकार का क्षेत्र है। इस मंत्रालय के दृष्टिकोण में कुशल, प्रभावी, जवाबदेही, अनुक्रियाशील तथा पारदर्शी और नैतिक शासन हेतु सरकार के मानव संसाधन के विकास एवं प्रबंधन के

लिए समर्थकारी माहौल बनाना आदि शामिल है। इसके लक्ष्य (Mission) में सार्वजनिक सेवाओं को अधिक कार्यकुशल, प्रभावी, जवाबदेह तथा अनुक्रियाशील बनाने के लिए सर्वोत्तम प्रतिभाओं को आकर्षित कर, करिअर में उन्नत्ति के उत्कृष्ट अवसर प्रदान कर, सक्षमता और नवाचार को प्रोत्साहित कर, कार्मिक नीतियों और प्रक्रियाओं के एक गतिशील ढांचे को अपनाकर, सभी स्तरों पर क्षमता विकास सुनिश्चित कर, सार्वजनिक मामलों में पारदर्शिता, जवाबदेही तथा भ्रष्टाचार के प्रति शून्य सहनशीलता का माहौल बनाकर व उसका समर्थन कर तथा पदाधारियों के साथ सत्तत एवं रचनात्मक भागीदारी की प्रणाली को संस्थागत बनाकर सार्वजनिक सेवाओं का विकास प्रबंधन आदि शामिल हैं। यह मंत्रालय उत्तरदायी केन्द्रक मंत्रालय के रूप में जाना जाता है, क्योंकि यह विशेष रूप से भर्ती, प्रशिक्षण, करियर विकास, कर्मचारी कल्याण व सेवानिवृत्ति पश्चात् मामलों की देखरेख करता है। इस मंत्रालय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को खंगालने पर पता चलता है कि सर्वप्रथम 1954 में पॉल एच॰ ऐपबली की अनुशंसा के अनुसार संगठन एवं विधि (Organization and Methods) संभाग को मंत्रीमण्डल सचिवालय में स्थापित किया गया था। वर्ष 1964 में प्रशासनिक सुधार नामक विभाग को गृह मंत्रालय में स्थापित किया गया और संगठन एवं विधि संभाग को भी इसमें शामिल किया गया। इसी प्रकार प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिश के अनुसार 1 अगस्त, 1970 मंत्रीमण्डल सचिवालय में कार्मिक विभाग का गठन किया गया। सन् 1973 में दो विभागों को मिलाकर एक कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग बना दिया गया। 1977 में इस विभाग को गृह मंत्रालय का हिस्सा बना दिया गया। इन सभी परिवर्तनों के पश्चात् वर्ष 1985 में एक स्वतंत्र मंत्रालय बनाकर इसका नाम कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय रख दिया गया। वर्तमान में यह मंत्रालय भारतवर्ष के प्रधानमंत्री के उत्तरदायित्व में एक राज्य मंत्री के सहयोग से कार्यरत्त है। इस मंत्रालय के अधीन देश की प्रमुख संस्थाऐं काम करती हैं, जैसे संघ लोक सेवा आयोग, केन्द्रीय सत्तर्कता आयोग, लोकपाल, केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण, केन्द्रीय सूचना आयोग, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, कर्मचारी चयन आयोग, लोक उद्यम चयन बोर्ड, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंधन संस्थान आदि। इस मंत्रालय में कार्मिक तथा प्रशिक्षण विभाग, प्रशासनिक सुधार और शिकायत विभाग एवं पेंशन व पेंशनभोगी कल्याण विभाग शामिल हैं।

संगठनात्मक ढांचा (Organizational Structure)

<table>
<tr><td colspan="3">केबिनेट मंत्री (वर्तमान में प्रधानमंत्री)</td></tr>
<tr><td colspan="3">राज्य मंत्री</td></tr>
<tr><td>कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग</td><td>प्रशासनिक सुधार व जन शिकायत विभाग</td><td>पेंशन तथा पेंशनभोगी कल्याण विभाग</td></tr>
<tr><td>सचिव–1</td><td>सचिव–1</td><td>सचिव–1</td></tr>
<tr><td>अतिरिक्त सचिव–4</td><td>अतिरिक्त सचिव–1</td><td>संयुक्त सचिव–1</td></tr>
<tr><td>संयुक्त सचिव–4</td><td>संयुक्त सचिव–2</td><td>निदेशक–3</td></tr>
<tr><td>निदेशक–7</td><td>निदेशक–1</td><td>उप–सचिव–1</td></tr>
<tr><td>मुख्य स्टाफ अधिकारी–1</td><td>उप–सचिव–6</td><td>अवर सचिव –9</td></tr>
<tr><td>उप सचिव–20</td><td>अवर सचिव–10</td><td rowspan="4">सहायक निदेशक–1</td></tr>
<tr><td>वरिष्ठ मुख्य नीजि सचिव–7</td><td rowspan="3">मुख्य नीजि सचिव–1</td></tr>
<tr><td>मुख्य नीजि सचिव–25</td></tr>
<tr><td>अवर सचिव–56</td></tr>
</table>

उपरोक्त मंत्रालय संरचना के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग में स्थापना स्कंध (Establishment wing), सेवा तथा सतर्कता स्कंध (Service and Vigilance wing), स्थापना अधिकारी स्कंध (Establishment officer wing), प्रशिक्षण स्कंध (Training wing), व प्रशासन स्कंध (Administrative wing) शामिल हैं। स्थापना स्कंध का दायित्व अखिल भारतीय सेवा अधिकारियों तथा केन्द्रीय सेवा कर्मचारियों की सेवा शर्तों तथा कार्मिक नीतियों, नियमों और विनियमों में संशोधन का है। इनके साथ–साथ यह स्कंध सरकार की आरक्षण नीति, संयुक्त परामर्शी तन्त्र तथा सिविल सेवा अधिकारी संस्था से संबंधित कार्य भी करता है। सेवा तथा सतर्कता स्कंध अखिल भारतीय सेवाओं के सवर्ग प्रबंधन नियमावली प्रशासन तथा सतर्कता व भ्रष्टाचार के केन्द्रक (Nodal) अभिकरण के रूप में कार्य करता है। यह स्कंध प्रशासनिक न्यायाधिकरणों और केन्द्रीय सूचना आयोग के प्रशासनिक मामले भी देखता है। स्थापना अधिकारी स्कंध मंत्रीमण्डल समिति के अनुमोदन पर भारत सरकार की वरिष्ठ नियुक्तियों से संबंधित मामले सम्भालता है। इसी प्रकार प्रशिक्षण स्कंध सरकारी अधिकारियों का प्रशिक्षण, प्रशासन स्कंध केन्द्रीय सचिवालय सेवा, राज्य पुनर्गठन व सरकारी कर्मचारियों के लाभ के लिए कल्याणकारी क्रियाकलाप के मामले देखता है। प्रशासनिक सुधार तथा लोक शिकायत विभाग में सात प्रभाग हैं जिनमें प्रशासनिक सुधार प्रभाग (Administrative Reforms Division), संगठन व पद्वतियां प्रभाग (Organization and Methods Division), ई–गवर्नेंस प्रभाग (E-Governance Division), प्रलेखन तथा प्रचार प्रभाग (Documentation and Disemination Division), अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Cooperation Division), प्रशासन एवं समन्वय प्रभाग (Administrative and Communication Division) और लोकशिकायत प्रभाग (Public Grievances Division) आदि। पेंशन व पेंशनभोगी कल्याण विभाग रक्षा, रेलवे, डाक तथा दूरसंचार पेंशनभोगियों के सेवा निवृत्ति लाभों को छोड़कर अन्य सभी केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के नीति तैयारी को कार्यभार सम्भाले हुए है।

विभागवार मंत्रालय के कार्य (Department-wise Functions of Ministry)

अ. कार्मिक व प्रशिक्षण विभाग के कार्य (Functions of Personnel and training Department) : इस विभाग के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं :–

- कार्मिक नीतियाँ निर्माण (Formulation of Personnel Policies) : शासन की कार्यव्यवस्था विभिन्न नीतियों द्वारा संचालित होती हैं। इसी प्रकार यह विभाग भी कार्मिक नीति निर्माण का दायित्व निर्वहन करता है। मुख्य रूप यह विभाग अखिल भारतीय व केन्द्रीय सेवाओं के वर्ग 'क' तथा 'ख' पदो के लिए भर्ती नियमों, सेवानियमों की नीति निर्माण व संशोधन का कार्य सम्भालता है। विभागीय पदोन्नति समिति की प्रक्रिया सम्बन्धी नीति निर्माण, वरिष्ठता नीति, कार्मिक नियुक्ति पूर्व चरित्र सत्यापन नीति, लोचशील पूरक योजना, अवकाश, आयु में छूट तथा सेवा शर्त संबंधित अन्य नीतिगत मामलों को कार्यरूप देना इसी विभाग के क्षेत्राधिकार का भाग है।

- केन्द्र सरकार सेवा आरक्षण प्रबंधन (Centre Government Service Reservation Management) : यह विभाग केन्द्रीय सरकार की सेवाओं से संबंधित आरक्षण व्यवस्था को सुचारू बनाने के लिए नीतिगत मामलों में निर्णय निर्माण का कार्य करता है। इस आरक्षण व्यवस्था में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग, विकलांग व पूर्व सैनिक आदि शामिल हैं। यह विभाग संविधान के अनुच्छेद–16 तथा 335 प्रशासन की कार्यकुशलता को नियमित रूप से बनाए रखने, संघ व राज्यों के मामलों से संबंधित सेवाओं और पदों पर नियुक्ति करने के समय अनुसूचित जातियों व जनजातियों के सदस्यों के दावों पर विचार करने का प्रावधान बारे निर्णय लेता है।

- संवर्ग प्रबंधन (Cadre Management) : यह विभाग अखिल भारतीय सेवा संवर्गों, केन्द्रीय सचिवालय सेवा तथा केन्द्रीय सचिवालय लिपिक व आशुलिपिक सेवाओं के संवर्गों के प्रबंधन हेतु जिम्मेदार है। यह विभाग गृह मंत्रालय तथा पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के परामर्श से अखिल भारतीय सेवाओं की शर्तों के सम्बन्ध में नियमों और विनियमों को बनाता व संशोधन करता है। यह आवधिक आधार पर 61 केन्द्रीय समूह 'क' सेवाओं की संवर्ग समीक्षा भी करता है।

- वरिष्ठ पदों पर नियुक्ति (Appointment of Senior Positions) : भारत सरकार में वरिष्ठ पदों की भर्ती के लिए मंत्रीमण्डलीय नियुक्ति समिति के अनुमोदन से सम्बन्धित सभी प्रस्तावों पर कारवाई इसी विभाग द्वारा की जाती है। इन नियुक्तियों में केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बोर्ड स्तर की नियुक्तियां और मन्त्रालयों व विभागों में संयुक्त सचिवों, निदेशकों, उप सचिवों आदि पदों पर नियुक्ति शामिल हैं। उपरोक्त पदों पर पदोन्नति का कार्यभार भी इसी विभाग पर है।

- प्रशिक्षण नीति तथा कार्यक्रम प्रबंधन (Training Policy and Programme Management) : इस विभाग को सरकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण का नोडल विभाग माना जाता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की रूपरेखा व प्रबंधन करना इसी विभाग का दायित्व है। यह विभाग निम्नलिखित प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षकों व प्रशिक्षण क्षमताओं के विकास गतिविधियों का प्रबन्ध करता है :–
    - भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का सेवाकालीन प्रशिक्षण।
    - भारतीय प्रशासनिक सेवा का करियर मध्य प्रशिक्षण।
    - विदेशी प्रशिक्षण का घरेलू वित्त पोषण।
    - लोक नीति में स्नातकोत्तर कार्यक्रम।
    - प्रशिक्षण सहायता।
    - गहन प्रशिक्षण कार्यक्रम।
    - प्रशिक्षण संस्थानों की क्षमतावर्धन।
    - गरीबी उन्मूलन के लिए क्षमता निर्माण।
    - दूरस्थ तथा ई–गवर्नेंस कार्य।
    - ई–शासन सम्बन्धी कार्य।

यह विभाग लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी–मसूरी उत्तराखण्ड एवं सचिवालय प्रशिक्षण एवं प्रबंधन संस्थान–नई दिल्ली तथा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान–नई दिल्ली के माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है।

- प्रशासनिक सतर्कता व केन्द्रीय अन्वेषण प्रबंधन (Administrative vigilance and Control Investigation Management) : इस विभाग के माध्यम से सरकार की सतर्कता व भ्रष्टाचार विरोधी नीतियों का निर्माण व क्रियान्वयन के लिए नोडल अभिकरण के रूप में कार्य करता है। लोक सेवाओं से भ्रष्टाचार उन्मूलन के बारे में केन्द्रीय सतर्कता आयोग (Central Vigilance Comission) की सहायता व सलाह से निर्णय लेता है। यह विभाग केन्द्रीय वित्तीय कानूनों के उल्लंघन, घोटालों, लोक संयुक्त स्टाक कम्पनियों, पासपोर्ट घोटालों

तथा पेशेवर अपराधियों द्वारा गम्भीर अपराधों की जांच के लिए केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के सहयोग से निर्णय निर्माण के फैसले लेता है।

- अन्य विविध कार्य (Other Different Functions) : इस विभाग के विविध कार्य इस प्रकार है :–
  - ➢ केन्द्र सरकार तथा कर्मचारियों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देने के लिए संयुक्त परामर्श तन्त्र का गठन व समन्वय स्थापित करना।
  - ➢ सरकार के निर्णयों से व्यथित कर्मचारियों को शीघ्र व सस्ता न्याय दिलवाने के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण (Central Administrative Tribunals) का प्रबंधन करना।
  - ➢ नियोक्ता के रूप में कर्मचारियों के कल्याणकारी उपायों का प्रबंधन करना।
  - ➢ केन्द्रीय सूचना आयोग के माध्यम से नागरिकों को समयबद्ध, आसान और किफायती सूचनाऐं प्रदान का प्रबंधन।
  - ➢ सरकारी कामकाज में राजभाषा हिन्दी के उपयोग, प्रोत्साहन व क्रियान्वयन को सुनिश्चित करना।
  - ➢ विभागीय शिकायत निवारण तन्त्र, नागरिक चार्टर निर्माण तथा बजट प्रबंधन कार्यों की देखरेख करना।

(ब) प्रशासनिक सुधार व जन शिकायत विभाग (Administrative Reforms and Public Grievances Department): इस विभाग का विजन है सभी नागरिकों के हित के लिए शासन में उत्कृष्टता लाना। इस विजन की पूर्ति के लिए सरकारी नीतियों, ढांचें तथा प्रक्रिया में सुधार; शिकायत निवारण पर बल सहित नागरिक– केन्द्रित शासन को बढ़ावा देना, ई–शासन में नवाचार के साथ–साथ सर्वश्रेष्ठ कार्य–पद्धतियों का प्रचार व प्रसार के माध्यम से प्रशासनिक तथा शासन सुधारों को बढ़ावा देना इस विभाग का उद्देश्य है। यह विभाग प्रशासनिक सुधार के साथ–साथ राज्यों व केन्द्र सरकारों से संबंधित शिकायत निवारण का नोडल विभाग है। अतः इस विभाग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैः–

- प्रशासनिक सुधार कार्य (Administrative Reforms Functions) : यह विभाग प्रशासनिक प्रक्रिया व कार्यप्रणाली में आवश्यकता अनुसार समय–समय पर सुधार करने के साथ–साथ प्रशासन तन्त्र को प्रोत्साहित भी करता है। वर्ष 2006 से प्रत्येक वर्ष 21 अप्रैल को सिविल सेवा दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस अवसर पर केन्द्र व राज्यों में कार्यरत प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किए गए असाधारण और नवीन कार्यों को अभिस्वीकृत्ति देने, मान्यता प्रदान करने तथा पुरस्कृत करने हेतु लोक प्रशासन में उत्कृष्टता के लिए प्रधानमन्त्री पुरस्कार दिया जाता है। यह विभाग राज्य सहयोग पहल स्कीम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को निधियां उपलब्ध करवाता है। इस विभाग द्वारा सुशासन सूचकांक का निर्माण किया गया है जिसके मध्यम से राज्य वार सेवा प्रदायगी के कमजोर और मजबूत क्षेत्रों की स्थिति का तुलनात्मक चित्रण कर कार्य–निष्पादन सुधार तन्त्र तैयार कर राज्य स्तरीय परामर्श के माध्यम से सुशासन के लक्ष्यों को प्राप्त करना है।
- लोक शिकायत निवारण (Redressal of Public Grievances) : यह विभाग लोक शिकायतों तथा केन्द्र सरकार के कर्मचारियों की शिकायतों के निवारण सम्बन्धी मुद्दों पर नीतिगत दिशा–निर्देश जारी करने एवं समन्वय तथा मानीटरिंग करने के लिए उत्तरदायी है। शासन के संघीय सिद्धान्त के अनुसार राज्यों से संबंधित शिकायतों को उपयुक्त कारवाई के लिए सम्बन्धित राज्य सरकार को भेजना भी इसी विभाग के कार्यकलाप का भाग है। यह विभाग अधिक अनुक्रियाशील और नागरिक–केन्द्रित शासक प्रदान करने के

अपने प्रयासों में विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, संगठनों के साथ–साथ राज्य सरकारों में नागरिक चार्टर बनाने और लागू करने के प्रयासों का समन्वय करता है। वर्ष 2007 से शिकायत निवारण हेतु केन्द्रीकृत लोक शिकायत निवारण और मानीटरिंग प्रणाली (Centralized Public Grievances Redressal and Monitoring System) नामक ऑनलाइन प्रणाली का विकास किया गया जिसमें 24×7 प्रणाली के अन्तर्गत कहीं से भी शिकायत पंजीकृत की जा सकती है जो http://pgportal.gov.in और www.darpg.gov.in के माध्यम से संचालित है।

- संगठन एवं पद्धति कार्य (Organization and Method Functions) : इस शीर्षक के माध्यम से यह विभाग कार्यालय प्रक्रिया तैयार कर उसे और सरल बनाने का कार्य करता है। संगठन एवं पद्धति पहलुओं पर केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों तथा राज्यों/संघ राज्य सरकारों की सहायता व सलाह देना भी इस विभाग के कार्यों में शामिल है। यह विभाग केन्द्रीय सचिवालय कार्यालय पद्धति नियम पुस्तिका, केन्द्रीय सचिवालय ई–कार्यालय पद्धति नियम पुस्तिका तथा अभिलेख प्रतिधारण समय–सूची का प्रकाशन इसके कार्यों में शुमार है। यह विभाग दिल्ली और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र स्थित केन्द्रीय सरकारी कार्यालयों के आधुनिकीकरण की योजनागत स्कीम का क्रियान्वयन करता है। यह स्कीम वर्ष 1987–88 से इसी विभाग द्वारा क्रियान्वित की जाती है और इस परियोजना की कुल लागत का 75 प्रतिशत वित्तीय सहायता यह विभाग वहन करता है।

- ई–शासन प्रोत्साहन (E-Governance Promotion) : प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा वर्ष 1997 से सूचना प्रौद्योगिकी विभाग एवं राज्य सरकारों के सहयोग से वार्षिक राष्ट्रीय ई–शासन सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। इस सम्मेलन के माध्यम से यह विभाग सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों के साथ राज्य सरकारों के सूचना प्रौद्योगिकी सचिवों, केन्द्र सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी प्रबंधकों, विशेषज्ञों, उद्योग और शैक्षणिक संस्थानों के विद्वानों को ई–शासन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा, विचारों तथा अनुभवों के आदान–प्रदान के लिए एक मंच प्रदान करने का कार्य करता है। यह विभाग राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस पुरस्कार निम्नलिखित छः श्रेणियों के अन्तर्गत प्रदान करता है:–

    - डिजिटल रूपांतरण के लिए सरकारी प्रक्रिया पुनः अभियात्रिकी में उत्कृष्टता।
    - नागरिक–केन्द्रीत प्रदायणी उपलब्धता में उत्कृष्टता
    - ई–गवर्नेंस जिला स्तरीय पहल में उत्कृष्टता
    - शैक्षणिक व अनुसंधान संस्थानों द्वारा नागरिक–केन्द्रीत सेवाओं पर उत्कृष्ट शोध
    - स्टार्टअप द्वारा ई–गवर्नेंस समाधान में सूचना प्रौद्योगिकी के नवाचारी उपयोग।
    - उभरती प्रौद्योगिकियों को अपनाने में उत्कृष्टता।

यह विभाग केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों में ई–ऑफिस के कार्यान्वयन हेतु नोडल विभाग का कार्य करता है।

- अंतर्राष्ट्रीय विनिमय और सहयोग (International Exchange and Cooperation) : यह विभाग लोक प्रशासन और शासन के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से संबंधित कार्यक्रमों का आयोजन, विदेशी शिष्टमण्डलों के भारत दौरों तथा भारतीय शिष्टमण्डलों के विदेशी दौरों का आयोजन करता है। अंतर्राष्ट्रीय विनिमय और सहयोग का उद्देश्य राष्ट्रीय सरकारों के बीच सूचना, श्रेष्ठ कार्य–पद्धतियों और कार्मिकों को साझा करना है। इस समय फ्रांस, मलेशिया, सिंगापुर, यूनाइटेड किंग्डम, पुर्तगाल व चीन के साथ लोक प्रशासन और गवर्नेंस के क्षेत्र में द्विपक्षीय समझौता ज्ञापन तथा ब्राजील और दक्षिण अफ्रिका के साथ त्रिपक्षीय समझौता

ज्ञापन हस्ताक्षरित किए हुए है। यह विभाग 1998 से अंतर्राष्ट्रीय प्रशासनिक विज्ञान संस्थान (International Institute of Administrative Science) का संस्थागत सदस्य है। यह संस्थान प्रशासनिक विज्ञान के विकास को प्रोत्साहन, लोक प्रशासनिक एजेंसियों के बेहतर संगठन व संचालन, प्रशासनिक मामलों और तकनीकों के सुधार तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन की प्रगति के प्रयोजन और प्रबंधन संघ (Commonwealth Assoviation for Public Administration and Management CAPAM) का संस्थागत सदस्य है।

- यह विभाग मूलतः केन्द्र, राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेश प्रशासनों से संबंधित सुशासन कार्य–पद्धतियों के प्रलेखीकरण (Publication) और प्रचार का कार्य भी करता है। इस कार्य के लिए उपरोक्त प्रशासनों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है। यह क्षेत्रीय सम्मेलनों का आयोजन का भाग बनता है जो सुशासन प्रक्रियाओं को तैयार करने व क्रियान्वित करने के अनुभव साझा करते हैं।

- पेंशन एवं पेंशनभोगी कल्याण विभाग कार्य (Functions of Pension and Pensioner's Welfare Department) : इस विभाग का विजन है पेंशनरों के लिए सक्रिय और गरिमापूर्ण जीवन इस विजन को कार्यरूप देने के लिए यह विभाग पेंशन नीति का गठन करता है, पेंशन का समय और सुचारू भुगतान, केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के सेवानिवृत्ति लाभ प्रदान करना तथा पेंशनरों के कल्याण को बढ़ावा देना आदि को मिशन के रूप में धारण किए हुए है। इस विभाग के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :–

    - इस विभाग के द्वारा केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन) नियमावली, 1972; केन्द्रीय सिविल सेवा (पेंशन का संराशीकरण) नियमावली, 1981; केन्द्रीय सिविल सेवा (असाधारण पेंशन) नियमावली, 1939; सामान्य भविष्य निधि (सिविल सेवा) नियमावली, 1960; अंशदायी भविष्य निधि (इंडिया) नियमावली, 1962; पेंशन के बकाए का भुगतान (नामांकन) नियमावली, 1983 आदि विभिन्न नियमावलियों को प्रकासित किया जाता है।

    - पेंशनभोगियों की सुगमता के लिए सरकार ने इस विभाग के माध्यम से पेंशनर्स पोर्टल की स्थापना की है जिससे पेंशन से संबंधित सूचना उपलब्ध करवाने और शिकायतों के आनलाईन निवारण, पेंशन रोड मैप, पेंशन नियमावली के प्रावधानों आदि को पेंशनभोगी को अवगत किया जा सके।

    - इस विभाग के माध्यम से पेंशन अदालत के आयोजन का कार्य किया जाता है जो हितधारकों, वेतन, लेखा कार्यालय, संबंधित बैंक तथा पेंशनभोगी व उसके प्रतिनिधि के एक ही मेज पर आंमत्रित कर समस्या का समाधान करना इसका उद्देश्य है।

    - यह विभाग पेंशनभोगियों की पात्रताओं तथा नियमों के संबंध में जागरूकता फैलाने के लिए देश के भिन्न–भिन्न भागों में जागरूकता कार्यक्रमों/कार्यशालाओं का आयोजन करता है। इस संदर्भ में सेवानिवृत्त कर्मचारियों, पेंशनभोगियों तथा डीलिंग स्टाफ के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना भी इस विभाग का दायित्व है।

    - विभाग द्वारा शिकायतों को दर्ज करवाने तथा अधिकारियों के साथ पेंशन संबंधित मुद्दों पर चर्चा के लिए आने वाले पेंशनभोगियों के लिए सुविधा केन्द्र का निर्माण करवाया गया। इस विभाग द्वारा कागजरहित कार्यालय बनाने के लिए ई–ऑफिस को क्रियान्वित किया जिससे की पर्यावरण संरक्षण व नवीन तकनीकी का भरपूर फायदा उठाया जा सके और पेंशन तथा पेंशनभोगी कल्याण की कार्यप्रणाली को सुचारू, सुव्यवस्थित, पारदर्शी व तीव्र बनाया जा सके।

3.6 सारांश (Summary) :

संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम (Structural-functional approach) के अनुसार शासन व्यवस्था के कुशल व सुचारू संचालन के लिए सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित संरचना की आवश्यकता है और इसके पश्चात् संरचना के अनुरूप कार्यात्मक प्रविधियों का महत्व होता है। इसलिए इस उपागम को केन्द्र में रखते हुए प्राचीनकाल से ही शासन संचालन की व्यवस्था को देखा जा सकता है और प्रमाण के रूप में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित उल्लेख से संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम का हष्टान्त उद्धर्व होता है। वर्तमान भारत की शासन प्रणाली की नींव ब्रिटिश शासन व्यवस्था का प्रतिरूप है। संरचना व कार्यों में जनकल्याण नीतियों तथा शासन व्यवस्था के बदलते स्वरूप के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समय सामयिक परिवर्तन होता रहता है। यदि वित्त मंत्रालय की चर्चा करते हैं तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गठित मंत्रीपरिषद् में इस मंत्रालय के संगठन में तीन विभाग (आर्थिक मामले, राजस्व तथा व्यय विभाग) थे, परन्तु समय के अनुसार इसके कार्यों में वृद्धि हुई तो निवेश एवं सार्वजनिक सम्पति प्रबंधन विभाग तथा वित्तीय सेवाऐं विभाग इस मंत्रालय की संरचना का भाग बने। इसी प्रकार गृह मंत्रालय में प्रारंभ में चार विभाग थे। पांचवा विभाग 1994 में जम्मू–कश्मीर विभाग तथा छठा सीमा प्रबंधन विभाग 2004 में स्थापित किया गया। रक्षा मंत्रालय में भी 1980 में रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग तथा 2004 में सेवानिवृत सैनिक कल्याण विभाग का गठन किया गया। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि भारत की कल्याणकारी राज्य अवधारणा में निरन्तर कार्यात्मक व संरचनात्मक परिवर्तन से शासन व्यवस्था को सामाजिक–आर्थिक विकास व सुधारों के उद्देश्यों को प्राप्त करना होता है। इन सामाजिक–आर्थिक विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं, उदारीकरण, नीजिकरण व वैश्वीकरण अवधारणाओं को ध्यान में रखना होता है। वर्तमान शासन प्रणाली को विश्व स्तरीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, वैश्विक व्यापार संघ, विश्व स्वास्थ्य संगठन आदि अन्य व्यवस्थाओं के दिशा निर्देशों को भी अपनी योजनाओं व नीतियों का भाग बनाना होता है। ये सभी कार्य तभी सम्भव हैं जब हमारे पास नवीन अद्योसंरचना व कार्यात्मक कुशलता उपलब्ध हो। सार रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय संरचनात्मक–कार्यात्मक व्यवस्थाऐं राष्ट्र संघ द्वारा उद्धर्त सतत् विकास उद्देश्यों को आत्मसात करने तथा क्रियान्वित करने में सक्षम हैं।

3.7 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

- आन्तरिक सुरक्षा : गृह मंत्रालय की जिम्मेदारी भारतीय आन्तरिक सुरक्षा करना है जो यह मंत्रालय विभिन्न पुलिस व सुरक्षा बलों के माध्यम से निभाता है।
- राजभाषा : भारतीय राजभाषा अधिनियम्, 1963 के अनुसार हिन्दी के प्रसार तथा मान्यता हेतु गृह मंत्रालय का राजभाषा विभाग केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो और केन्द्रीय हिन्दी समिति के माध्यम से इसका क्रियान्वयन सुनिश्चित करता है।
- पुलिस बल : गृह मंत्रालय के आन्तरिक सुरक्षा विभाग के अन्तर्गत पुलिस बल में सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, भारत–तिब्बत सीमा पुलिस, असम राइफल्स, राष्ट्रीय सुरक्षा गार्डर, स्वयंसेवी बल आदि का अभिप्राय पुलिस बल से है।
- आपात्काल : राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण व आंशिक आपदा जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 353 तथा 356 के अनुसार राष्ट्रपति शासन के संबंध में निर्णय लेने का कार्य गृह विभाग के क्षेत्राधिकार का भाग है।
- आर्थिक कार्य : आर्थिक कार्य से अभिप्राय भारत सरकार की आर्थिक नीतियों का निर्माण, क्रियान्वयन, मूल्यांकन, समीक्षा; बैंकिंग व बीमा व्यवस्थापन; बजट प्रबंधन; पूंजी निवेश, भारतीय मुद्रा नियोजन आदि से है।

- राजस्व : भारत सरकार को कर तथा गैर कर आय से प्राप्त धनराशि जो भारतीय संचित निधि का भाग बनती है उसे राजस्व कहते हैं।

- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर : प्रत्यक्ष कर वह कर है जो सीधा किसी व्यक्ति विशेष पर उसके नाम लगाया जाता है जैसे आयकर, सम्पत्तिकर, निगमकर। अप्रत्यक्ष कर वह कर है जो सरकार द्वारा वस्तुओं व सेवाओं पर लगाया जाता है और उपयोग करने वाले व्यक्ति द्वारा उसे चुकाया जाता है जैसे वर्तमान में वस्तु एवं सेवा कर (जी॰एस॰टी॰)

- वित्तीय नियोजन : व्यय विभाग में योजना वित्त तथा वित्त आयोग प्रभाग के माध्यम से केन्द्र व राज्यों की वार्षिक योजनाओं को वित्त आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर वित्तीय प्रबंधन की कार्ययोजना को वित्तीय नियोजन कहते हैं।

- प्रवर्तन निदेशालय : ऐसी संगठनात्मक संरचना जो देश में विदेशी मुद्रा विनिमय अधिनियम् के प्रावधानों को क्रियान्वित तथा विदेशी मुद्रा कारोबार व नियंत्रण के लिए व्यापक प्रबंधन करती है उसे प्रवर्तन निदेशालय का नाम दिया गया है।

- रक्षा व्यय : विश्व स्तर पर हुए परिवर्तनों का संज्ञान लेते हुए रक्षा सेनाओं की न्यूनतम अनुरक्षण आवश्यकताओं व उनके आधुनिकीकरण कार्यों में संतुलन करते हुए केन्द्र सरकार के कुल व्यय का सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत् के अनुसार रक्षा व्यवस्था पर किए गए खर्च को रक्षा व्यय कहा जाता है।

- रक्षा उत्पाद : रक्षा मंत्रालय के निर्णरू अनुरूप आयुध सामग्री, रक्षा उपकरणों के निर्माण को रक्षा उत्पाद कहा जाता है।

- सशस्त्र सेनाऐं : देश की कानून व्यवस्था तथा आवश्यक सेवाऐं बनाए रखने और प्राकृतिक आपदा से प्रभावित क्षेत्रों को राहत पहुंचानें के लिए उपयोग में ली जाने वाली पैरा मिलिट्री फोर्सेस को सशस्त्र सेनाओं का नाम दिया जाता है।

- सैन्य मामले विभाग : दिसम्बर 2019 में एक सैन्य मामले विभाग का गठन किया गया है जिसमें चीफ ऑफ डिफेंस स्टाफ का पद तीनों सेनाओं के समन्वय व सहयोग को सुदृढ़ करने के लिए सृजित किया गया। इस विभाग व पद का कार्य तीनों सेनाओं की कार्य व्यवस्था जो सैन्य मामलों से संबंधित है को प्रबंधित व व्यवस्थित करना है।

- कार्मिक संवर्ग प्रबंधन : अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं, केन्द्रीय सचिवालय लिपिक तथा आशुलिपिक सेवाओं के संवर्गों (Cadre) व्यवस्थाओं को सुचारू करने को कार्मिक संवर्ग प्रबंधन कहते है।

- प्रशिक्षण नीति : विभिन्न भारतीय सेवाओं के कर्मचारियों व अधिकारियों को अनेक प्रशिक्षण संस्थाओं में कार्य अनुसार प्रशिक्षण दिया जाता है। सभी प्रशिक्षण संस्थानों की आवश्यकता अनुसार कार्य व्यवस्था के नियमों व उपनियमों को नीतिगत निर्णयों के माध्यम से निर्देशन को प्रशिक्षण नीति का भाग बनाया जाता है।

- अखिल भारतीय सेवाऐं : मुख्य रूप से भारतीय प्रशासनिक सेवाऐं, भारतीय पुलिस सेवाऐं तथा भारतीय वनकीय सेवाओं को अखिल भारतीय सेवाओं में शामिल किया जाता है।

- प्रशासनिक सुधार : समयानुसार प्रशासनिक व्यवस्था में कार्यात्मक–संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रशासनिक सुधार का नाम दिया जाता है। इसमें अनेक प्रक्रिया व प्रणालियां शामिल होती है।

3.8 अपनी प्रगति जांचिए (Check your Progress)

- 1. गृह मंत्रालय में कितने विभाग हैं और अंतिम विभाग कब बना ?
  2. राज्य विभाग का मुख्य कार्य बताईये।
  3. सरदार वल्लबभाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी किस विभाग का भाग है ?
  4. जम्मू कश्मीर विभाग के गठन का क्या कारण रहा ?
  5. आपातकाल में गृह मंत्रालय की भूमिका क्या होती है ?
  6. गृह विभाग की क्या मुख्य चुनौतियां है ?
- 1. वित्त मंत्रालय के कुल कितने विभाग हैं ?
  2. बजट कार्य किस विभाग में शामिल हैं ?
  3. राजस्व से आपका क्या अभिप्राय है ?
  4. वित्त आयोग कार्य किस विभाग में प्रबंधित होता है ?
  5. केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड का क्या कार्य है ?
  6. निवेश एवं सार्वजनिक सम्पत्ति प्रबंधक विभाग वित्त मंत्रालय का भाग कब बना ?
- 1. सैन्य मामले विभाग का गठन कब किया गया ?
  2. रक्षा मंत्रालय सचिवालय का कार्य क्या है ?
  3. रक्षा उत्पादन विभाग क्या करता है ?
  4. राष्ट्रीय कैडिट कोर किस विभाग के अधीन कार्य करता है ?
  5. रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन का कार्य क्या है ?
  6. आतंकवाद के विरूद्ध रक्षा मंत्रालय कैसे निपटता है ?
- 1. कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय का संगठन बताईये।
  2. कार्मिक नीति निमार्ण किस विभाग का कार्य है ?
  3. संगठन एवं पद्धति कार्य किस विभाग का हिस्सा है ?
  4. लोक शिकायत निवारण किस प्रणाली के माध्यम से प्रबंधित है ?
  5. यह मंत्रालय ई–शासन प्रोत्साहन कैसे करता है ?
  6. पेंशन एवं पेंशनभोगी कल्याण विभाग के क्या कार्य है ?

3.9 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

1. भारतीय आंतरिक सुरक्षा में गृह मंत्रालय की भूमिका का विवेचन कीजिए।
2. गृह मंत्रालय के विभागवार कार्यों का उल्लेख कीजिए।
3. आपातकाल में गृह मंत्रालय के योगदान का वर्णन कीजिए।
4. आतंकवाद गृह मंत्रालय के लिए एक मुख्य चुनौती है, व्याख्या कीजिए।

5. वित्त मंत्रालय के संगठन व कार्यों का वर्णन कीजिए।
6. आर्थिक मामले विभाग वित्त मंत्रालय का सबसे महत्वपूर्ण विभाग है, स्पष्ट कीजिए।
7. केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड की कर संग्रहण व नियोजन में क्या भूमिका है ?
8. वित्त मंत्रालय के व्यय विभाग का सार्वजनिक व्यय नियोजन व प्रबंधन में क्या योगदान है ?
9. निवेश एवं सार्वजनिक सम्पत्ति प्रबंधन तथा वित्तीय सेवाऐं विभागों के कार्यों का वर्णन कीजिए।
10. रक्षा मंत्रालय की कार्य योजनाओं व समितियों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
11. रक्षा मंत्रालय के सचिवालय के संगठन व कार्यों का विवरण दीजिए।
12. रक्षा मंत्रालय के विभिन्न विभागों की कार्य व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
13. आतंकवाद तथा राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को नियंत्रित करने में रक्षा मंत्रालय की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
14. प्रशासनिक सुधार में कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय की भूमिका का विवेचन कीजिए।
15. पेंशनभोगी कल्याण विभाग के कार्यों का वर्णन कीजिए।
16. कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के संगठन व कार्यों का विवरण दीजिए।
17. जन शिकायत निवारण में कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
18. कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के संगठन व कार्यों का विवेचन कीजिए।

3.10 पठन सामग्री सूचि

- B.L. Fadia and Kuldeep Fadia (2017), Indian Administration, Agra: Sahtya Bhawan.
- R. Abrar (2016), Indian Public Administration, New Delhi: Lisdern Press.
- Nazim Uddin Ahmed (2013), Indian Administration: Evolution and Development, New Delhi: Wizdam Press.
- R.K. Arora (2012), Indian Public Administration: Institutions and Issues, New Delhi: New Age International.
- P.D. Sharma (2009), Indian Administration: Retrospect and Pnspects, Jaipur: Rawat.
- अमरेश्वर अवस्थी एंव आनन्द प्राकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल : आगरा, 1995
- होशियार सिंह, भारतीय प्रशासन किताब महल : इलाहाबाद
- बी.एल.फड़िया, भारतीय प्रशासन, साहित्य भवन : आगरा
- श्री राम माहेश्वरी, भारतीय प्रशासन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन : हैदराबाद
- मधुसदून त्रिपाठी, भारतीय प्रशासन, ओमेगा मब्लिकेशन्स : नई दिल्ली, 2012

ईकाई–4

लोक सेवाऐं

(Civil Services)

4.0 परिचय (Introduction)

संसदीय शासन प्रणाली में राजनीतिक कार्यपालिका जन कल्याण नीतियों व कार्यक्रमों को निर्धारित करती है। इन नीतियों व कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा प्रशासन की जिम्मेदारी नागरिक सेवकों (Civil Services) के बहुत बड़े निकाय पर होती है। जो अपने प्रशिक्षण और कार्य अनुभव के कारण सरकार के वास्तविक कार्यकरण से भलीभाँति सुपरिचित होते हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं ने ब्रिटेन सिविल सेवा मॉडल पर आधारित एकीकृत प्रशासनिक प्रणाली को अपनाने का निर्णय लिया। भारतीय नागरिक सेवाओं को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में समूहबद्ध किया गया। पहली सेवाऐं वो हैं जो संघ सरकार तथा राज्य सरकारों को सेवाऐं प्रदान करती हैं जिन्हें अखिल भारतीय सेवाऐं (All India Services) कहते हैं। दूसरी वो सेवाऐं हैं जो केवल संघ सरकार के लिए कार्यरत हैं जिन्हें केन्द्रीय सिविल सेवाऐं कहते हैं। तीसरी वो नागरिक सेवाऐं हैं जो राज्य सरकारों को अपनी सेवाऐं प्रदान करती हैं जिन्हें राज्य सिविल सेवाऐं कहते हैं। सिविल सेवा ने हमारे जीवंत लोकतन्त्र के कार्यकरण में अनेक विविधताओं वाले समाज, शासनतंत्र और हमारी विकासशील अर्थव्यवस्था में सकारात्मक रूप से योगदान दिया है। जनवरी, 1966 में स्थापित प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी विस्तृत रूप से सिविल सेवाओं में सुधार हेतु अनेक सिफारिशें की थी, जिनमें मुख्य रूप से विशेषज्ञता की आवश्यकता, एकीकृत दिशानिर्देशक ढाँचा, भर्ती अभिकरण, प्रशिक्षण, पदोन्नतियाँ, आचार और अनुशासन सहित सेवा की शर्तें आदि हैं। द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना लोक प्रशासन प्रणाली को पुनः संरचित करने के लिए ब्लूप्रिंट बनाने और सरकार के सभी स्तरों पर एक स्वतः सक्रिय, संवेदनशील, उत्तरदायी, संधारणीय और कार्यकुशल प्रशासन स्थापित करने के लिए उपायों पर सुझाव देने के लिए व्यापक आदेश के साथ की गई थी। इस आयोग का सिविल सेवाओं के संदर्भ में मुख्य रूप से भारतीय सिविल सेवाओं में प्रणालीगत कठोरता, अनावश्यक जटिलता और अतिकेन्द्रीकरण लोक सेवकों को सकारात्मक परिणाम प्राप्त करने में अप्रभावी व असहायता को दूर करने के लिए शक्तियों की असममिति (Asymmetry) को सही करना; सिविल सेवकों को अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप से पृथक रखना; कार्यकाल की स्थिरता और प्रतियोगी व्यवसायीकरण सेवा, नागरिक केन्द्रीत प्रशासन, जवाबदेही, परिणामों के प्रति उन्मुखीकरण व लोक सेवा मूल्यों और नैतिकता को बढ़ावा देना आदि में संसोधन को केन्द्र माना है। अतः यह इकाई सिविल सेवाओं के इतिहास, कार्यप्रकृति, समस्याओं व अपेक्षित सुधारों पर विस्तार से ज्ञान प्रदान करती है।

4.1 इकाई के उद्देश्य (Objectives of the Unit)

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :–

- सिविल सेवाओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना।
- भारतीय प्रशासन में लोक सेवकों की भूमिका का विवरण देना।

- भारतीय प्रशासन में सुधारों व सुझावों का विश्लेषण करना।
- अखिल भारतीय सेवाओं के संगठन व कार्यों का वर्णन करना।
- केन्द्रीय सेवाओं का विस्तृत वर्णन करना।
- सामान्ज्ञ तथा विशेषज्ञों के द्वन्द्व पर प्रकाश डालना।

4.2 लोक सेवाऐं एवं भूमिका (Civil Services and Role)

यद्यपि हमें प्राचीन काल में सिविल सेवा का स्पष्ट उदाहरण नहीं मिलता है। चीन में जहां सिविल सेवा कम से कम 200 बी.सी. पूर्व कायम रही, जहां सिविल सेवकों को योग्यता के आधार पर भर्ती किया जाता था। मध्यकाल में व्यापक आधुनिक राज्यों का आधार अफसरशाही प्रणालियों के साथ–साथ सहवर्ती रूप से विकसित हुआ। मौर्य प्रशासन में सिविल सेवकों को अध्यक्ष व 'राजुक' के नाम से नियुक्त किया गया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी सिविल सेवकों की निष्ठा एवं ईमानदारी के गुणों को दर्शाया गया है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान लार्ड कार्नवालिस ने सिविल सेवा की शुरूआत की। सन् 1801 में युवा सिविल सेवकों को प्रशिक्षण देने के लिए कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई थी। मैकाले समिति ने वर्ष 1854 में भारत को पहली आधुनिक सिविल सेवा प्रदान की। 1855 के बाद इंडियन सिविल सर्विस (आई.सी.एस.) में भर्ती पूरी तरह से योग्यता पर आधारित हो गई। प्रारम्भ में केवल लंदन से ही इस सेवा हेतु उम्मीद्वारों की भर्ती की जाती थी, 1922 के बाद भारत में भी इस परीक्षा का आयोजन किया जाने लगा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय सिविल सेवाओं को भारतीय लोकतांत्रिक एवं कल्याणकारी राज्य के आदर्शों को लागू करने का साधन बनाया गया। भारत के संविधान का अनुच्छेद 312 संसद को कतिपय शर्तों के पूरा होने पर अखिल भारतीय सेवाएं बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

सिविल सेवाओं का वर्गीकरण (Classification of Civil Services)

भारत ने पदक्रम वर्गीकरण प्रणाली को अपनाया है। हमारे देश में सेवाओं का वर्गीकरण 1930 के लोकसेवा नियम द्वारा नियंत्रित है जिसमें समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं।

संविधान के अनुसार हम सेवाओं को अनुगामी श्रेणियों में विभाजित करते हैं :–

- अखिल भारतीय सेवाएं :– इसमें निम्नलिखित समूह हैं
    - भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS)
    - भारतीय पुलिस सेवा (IPS)
    - भारतीय वन सेवा (IFS)
- केन्द्रीय सेवाएं :– जिसके चार समूह हैं :–
    - केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग I (समूह–ए)
    - केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग II (समूह–बी)
    - केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग III (समूह–सी)
    - केन्द्रीय सेवाएं, वर्ग IV (समूह–डी)
- केन्द्रीय सचिवालय सेवाएं, वर्ग I, II, III, IV और (समूह ए, बी, सी, डी)

- विशेषज्ञ सेवाएं
- राज्य सेवाएं वर्ग I, II, III, IV

भारत में लोकसेवाओं को राजपत्रित और अराजपत्रित वर्ग में भी वर्गीकृत किया गया है। आमतौर पर वर्ग III (समूह–सी) और वर्ग IV (समूह–डी) सेवाएं राजपत्रित वर्ग की नहीं है।

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों का सारांश :–

क) विशेषज्ञता की आवश्यकता :– पहले प्रशासनिक सुधार आयोग ने विशेषज्ञता की आवश्यकता को स्वीकार किया, क्योंकि सरकार के कार्यों का विविधिकरण हो गया था।

ख) एकीकृत मार्गनिर्देशक ढांचा :– योग्यताओं और कार्यों तथा जिम्मेदारियों के स्वरूप के आधार पर एक एकीकृत मार्गनिर्देशक ढांचे का सुझाव दिया गया था।

ग) भर्ती :– निम्नलिखित सिफारिश :–

- 26 वर्ष तक बढ़ाई गई आयु–सीमा के साथ, श्रेणी I की सेवाओं के लिए एकल प्रतियोगी परीक्षा।
- वरिष्ठ स्तरों पर तकनीकी पदों पर पार्श्विक प्रवेश।
- श्रेणी II की सेवाओं के लिए सीधी भर्ती करना बंद किया जाए।
- लिपिकीय कर्मचारियों के लिए एक सरल विषयनिष्ट किस्म की परीक्षा आयोजित की जाए।
- कतिपय क्षेत्रकों में केन्द्रीय सरकारी पदों पर भर्ती राज्य सरकारी कर्मचारियों में से की जाए।

घ) भर्ती अभिकरण :–

1. संघ लोक सेवा आयोग और राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक नई प्रक्रिया का सुझाव दिया।
2. लिपिकीय कर्मचारियों के चयन के लिए भर्ती बोर्ड स्थापित करने की सिफारिश दी गई।

ड़) प्रशिक्षण :– सिविल सेवा के प्रशिक्षण के लिए एक राष्ट्रीय नीति तैयार की जाए।

च) पदोन्नतियां :– पदोन्नतियों के लिए विस्तृत मार्गनिर्देश तैयार किए गए।

छ) सेवा की शर्तें :– आयोग ने समयोपरि भत्तों, स्वैच्छिक सेवा–निवृत्ति, निर्गम की प्रक्रिया, पेंशन की प्रमात्रा, सरकारी छुट्टियों, विभिन्न पदों के लिए कार्य के मानदंड निर्धारित करना।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों का सारांश :–

क) सिविल सेवाओं की परीक्षा में बैठने की अनुज्ञेय आयु सामान्य उम्मीद्वारों के लिए 21 से 25 वर्ष, अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीद्वारों के लिए 21 से 28 वर्ष और शारीरिक रूप से विकलांग उम्मीद्वारों के लिए 21 से 29 वर्ष होनी चाहिए।

ख) राष्ट्रीय प्रशिक्षण नीति (1996) के कार्यान्वयन पर नजर रखने के लिए एक निगरानी पद्धति कायम की जानी चाहिए।

ग) सिविल सेवाओं में राजनीतिक तटस्थता और निष्पक्षता सुरक्षित रखने की जरूरत है। इसकी जिम्मेदारी राजनीतिक कार्यपालिका और सिविल सेवाओं पर समान रूप से निर्भर करती है। इस पहलू को मंत्रियों के लिए नैतिक संहिता और सरकारी सेवकों के लिए आचरण संहिता में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

घ) सिविल सेवा मूल्यों और नैतिक संहिता को प्रस्तावित सिविल सेवा विधेयक में शामिल किया जाना चाहिए।

ड़) नैतिकता संहिता में सत्यनिष्ठा, निष्पक्षता, सार्वजनिक सेवा के प्रति प्रतिबद्धता, मुक्त जवाबदेही, ड्यूटी के प्रति निष्ठा व उत्कृष्ट व्यवहार को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

भारतीय प्रशासन में सिविल सेवाओं की भूमिका (Role of Civil Services in Indian Administration)

- सरकार का प्रमुख अंग :– प्रशासनिक मशीनरी सिविल सेवाओं द्वारा संचालित की जाती है साथ ही सरकार को समन्वय एवं सेवा वितरण के माध्यम से कार्यक्रमों को निष्पादित करने में सहायता प्रदान करती है।
- विचारधारा और नीति निर्माण :– सिविल सेवक राजनीतिक कार्यपालिका को नीति निर्माण में विशेषज्ञ परामर्श और तकनीकी सहायता प्रदान करता है। ये प्रत्यायोजित विधायन के लिए भी उत्तरदायी है।
- सामाजिक–आर्थिक विकास :– सार्वजनिक संसाधनों के संरक्षक होने के कारण सिविल सेवक प्रशासन के लगभग सभी क्षेत्रों में नेतृत्वकर्त्ता और निर्णयकर्त्ता के रूप में कार्य करते हैं।
- सुशासन की निरंतरता :– ये राजनीतिक संक्रमण के दौरान प्रशासन में निरंतरता प्रदान करती है।
  - ❖ भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में एकसमान प्रशासन और अभिशासन के मानकों को बढ़ावा देना।
  - ❖ शासन में नैतिकता और पारदर्शिता को बनाए रखती है।
- संकट प्रबंधकर्त्ता :– ये आपदाओं की स्थिति में प्रथम अनुक्रिया प्रदान करती हैं :– चाहे प्राकृतिक आपदाएं (भूकंप, चक्रवात, सुखा, सुनामी, बाढ़) हो या मानव निर्मित (कानून और व्यवस्था)।

सरकार द्वारा उठाए गए तमाम कदमों के बावजूद कुशल, पारदर्शी और जवाबदेह सिविल सेवा आज भी पूरी तरीके से एक हकीकत नहीं बन पा रही हैं जिसके प्रमुख कारण है लोक सेवकों के पदों और उनके कौशल के बीच तालमेल की कमी, सिविल सेवाओं में विशेषज्ञों की जरूरत के बावजूद पार्श्व प्रवेश का बढ़ता विरोध और लंबे समय तक रिक्त पदों पर भर्ती न करना आदि। इन सभी पहलूओं को ध्यान में रखते हुए जरूरत है कि द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशों को पूरी तरह से लागू किया जाए, सिविल सेवाओं की अधिकतम आयु सीमा को कम किया जाए। मोटे तौर पर भर्ती प्रशिक्षण, मूल्यांकन और शासन के सभी स्तरों पर बारीकि से सुधार करके लोक सेवाओं की भूमिका को बेहतर बनाया जा सकता है।

4.3 भारत में प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms in India)

प्रशासनिक सुधारों का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसमें प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यकुशलता एवं गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिए सुनियोजित ढंग से अर्थात् जानबूझकर परिवर्तन किए जाते हैं। सामान्यतः प्रशासनिक सुधारों का तात्पर्य सरकारी विभागों के ढांचें में फेरबदल से संबंधित माना जाता है किन्तु यह कार्य बहुत व्यापक तथा गंभीर प्रकृत्ति का है। प्रशासनिक सुधारों का कार्यक्षेत्र या संबंध निम्नांकित पक्षों से है :–

- प्रशासनिक संरचना में परिवर्तन
- प्रशासनिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन

- प्रशासनिक नियमों या कानूनों में परिवर्तन
- प्रशासनिक व्यवहार में सुधार
- संगठन के लक्ष्यों या उद्देश्यों में परिवर्तन
- कार्यकुशलता, विश्वसनीयता तथा उपादेयता में वृद्धि हेतु नवीन प्रयोग।

प्रशासनिक सुधारों का क्षेत्र सम्पूर्ण प्रशासन तंत्र तथा उसकी कार्यप्रणाली से संबंधित होता है जो नवीन परिस्थितियों के अनुकूल किया जाता है। यद्यपि प्रशासनिक सुधार निजी एवं सरकारी दोनों प्रकार के संगठनों में किए जाते हैं किंतु इस अध्याय में प्रशासनिक सुधारों का आशय सरकारी तंत्र में किए जाने वाले संगठनात्मक, संरचनात्मक, कार्यात्मक, प्रक्रियात्मक, व्यावहारिक तथा वैधानिक सुधारों से है।

प्रशासनिक सुधारों के उद्देश्य (Objectives of Administrative Reforms)

इन सुधारों के निम्नांकित उद्देश्य होते हैं :–

- प्रशासनिक कार्यों तथा प्रक्रियाओं में समयानुकूल व्यावहारिक परिवर्तन करना;
- प्रशासनिक तंत्र को स्थिर होने से बचाने के प्रयास करना;
- परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, तकनीकी एवं राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रशासन तंत्र को ढ़ालना;
- जनसाधारण की समस्याओं, जनाकांक्षाओं तथा भावनाओं से कार्मिकों को अवगत कराना;
- प्रशासनिक कुशलता एवं कार्य निष्पादन के उच्च स्तर को प्राप्त करना;
- अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा स्थानीय संदर्भों में प्रशासन की व्यवहारिकता बनाए रखना;
- शासन की नीतियों, योजनाओं, व्यूहरचनाओं तथा नवकार्यक्रमों के अनुरूप प्रशासन को संचालित करना;
- प्रशासन में शिथिलता, अकर्मण्यता एवं भ्रष्टाचार पर अंकुश लगना;
- नियंत्रण, पर्यवेक्षण तथा जवाबदयेता को सुनिर्धारित करना;
- सार्वजनिक वित्त के सदुपयोग को सुनिश्चित करना;
- जन परिवेदनाओं तथा कर्मचारी शिकायतों में कमी लाने के प्रयास करना।

प्रशासनिक सुधारों के उद्देश्य बहुआयामी होते हैं क्योंकि प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त व्याधियाँ न केवल आम व्यक्ति के हितों पर कुठाराघात करती हैं बल्कि स्वयं लोक सेवक भी उनसे पीड़ित रहते हैं।

प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता (Requirement of Administrative Reform)

सतत् एवं व्यवस्थित परिवर्तन को संभालने की योग्यता आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का विशिष्ट लक्षण है। प्रशासनिक सुधार इस परिवर्तन की सार्व–भौमिकता का ही एक भाग है क्योंकि प्रशासन विस्तृत समाज के मूल्यों को प्रतिबिम्बित करने वाली एक उपव्यवस्था, एक उपसंस्कृति ही तो है। अतएव, स्वयं को परम्परावाद की बेड़ियों से मुक्त करने, वातावरण के साथ संबंधों में परिवर्तन लाने, नया ज्ञान तथा तकनीक अपनाने और पुराने दोषों की

समाप्ति व तुलनात्मक व्यवस्था मूल्यों के मूल्यांकन द्वारा नयी व्यवस्था की लालसा हेतु समाज को परिवर्तित होना ही पड़ता है।

प्रशासनिक सुधार के प्रकार (Types of Administrative Reforms)

गरलिल ई॰ लेटिन के अनुसार प्रशासनिक सुधार चार प्रकार के हो सकते हैं :–

- राजनीतिक क्रांति द्वारा आरोपित सुधार
- संगठानात्मक कठोरता को ठीक करने के लिए प्रारम्भ किये गये सुधार
- कानूनी पद्धति के माध्यम द्वारा सुधार तथा
- मनोवृत्ति परिवर्तन के माध्यम से सुधार।

राजनीतिक परिवर्तन संबंधित सुधार (Political Change Related Reforms)

प्रशासन राजनैतिक शक्तियों से साकार और प्रभावित होता है। राजनैतिक परिदृश्य में परिवर्तन भी प्रशासन को प्रभावित करते हैं। प्रशासन की संरचना और कार्यशैली शान्तिपूर्ण तथा क्रांतिकारी दोनों प्रकार के राजनैतिक परिवर्तनों से प्रभावित होती है। सामान्यतः प्रशासनिक सुधार राजनीतिक सुधारों के पीछे–पीछे चलते हैं।

संगठनात्मक कठोरता संबंधित सुधार (Organizational Rigidity Related Reforms)

जब कभी कार्य संचालन में तनाव और बाधाएँ उपस्थित होती हैं, तब प्रशासनिक ढांचे की कठोरता दुर करने, उसमें चलीलापन लाने के लिये प्रशासनिक परिवर्तन आवश्यक होते हैं। प्रशासन के ढांचे में परिवर्तन कई प्रकार के हो सकते हैं, जैसे कि कर्मचारियों का स्थान–परिवर्तन, दोबारा छानबीन, पदोन्नत्ति, तथा विनियमों और संरचना में परिवर्तन, नीवनता और नई पहल–शक्ति तथा अच्छे जन–सम्पर्क को प्रोत्साहन।

कानूनी पद्धति संबंधित सुधार (Legal Method Related Reforms)

प्रशासनिक सुधार से संबंधित कोई भी नया कानून प्रशासन में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकता है। सामान्यतः इस प्रकार के विधि–निर्माण के पूर्व कई मंचों जैसे समितियों, आयोग, प्रेस आदि में विचार विमर्श तथा परामर्श किया जाता है।

मनोवृत्ति परिवर्तन संबंधित सुधार (Changed Psychology Related Reforms)

मानव समुदाय किसी भी संगठन का महत्वपूर्ण अंग होता है। कोई भी कानूनी संगठनात्मक तथा राजनैतिक परिवर्तन तब तक वांछित सुधार नहीं ला सकता जब तक कि संगठन में कार्यरत व्यक्ति इन वांछित सुधारों का महत्व नहीं समझ लें और इन्हें अंगीकार न कर लें।

स्वतंत्रता से पूर्व प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms before Independence)

प्राचीनकाल से ही शासन व्यवस्थाएँ निरन्तर परिवर्तन एवं संवर्धन के दौर से गुजरती रही हैं। सत्तारूढ़ शासकों ने अपनी नीतियों तथा जन भावनाओं के अनुरूप न्यूनाधिक मात्रा में प्रशासनिक सुधार किए हैं। प्राचीन भारत की शासन व्यवस्था की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों यथा–अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार, महाभारत तथा कुराल (तिरूवल्ल्वर द्वारा रचित) इत्यादि में राजा के कर्त्तव्यों, राज्य की स्थिति, वित्तीय संसाधनों तथा प्रशासनिक संगठनों का विशद् वर्णन मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, हर्षवर्धन, समुद्रगुप्त, कनिष्क, शेरशाह सूरी, अकबर, शिवाजी एवं कृष्णदेव राय के समय लिखे गए ग्रन्थों में इन शासकों द्वारा किए गए प्रशासनिक सुधारों की भी व्याख्या उपलब्ध है।

मुगलकाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत आगमन हुआ तथा कम्पनी ने राजनीतिक रूप से अस्थिर एवं छिन्न–भिन्न देश पर शासन करना शुरू किया। ब्रिटिश शासकों ने मुगलकालीन शासन व्यवस्था में सन् 1961 से 1946 तक शनैः–शनैः परिवर्तन किए। इन दो शताब्दियों के पश्चात् भारतीय प्रशासन का जो स्वरूप उभर कर सामने आया वह हमने स्वतंत्रता के समय ब्रिटिश विरासत के रूप में स्वीकार किया। ऐसा नहीं है कि आज का भारतीय प्रशासन केवल ब्रिटिश शासन का ही अवशेष है बल्कि राज्य प्रशासन, जिला प्रशासन, तहसील एवं राजस्व प्रशासन तथा न्याय पंचायतें मुगलकालीन प्रशासन की देन हैं। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में केन्द्रीय सचिवालय, केन्द्र–राज्य सम्बन्ध, कार्यकारी संस्थाओं (निदेशालय), नगरीय स्थानीय संस्थाओं, योग्यता आधारित भर्ती एवं प्रशिक्षण, अखिल भारतीय सेवाओं, राजपत्रित एवं अराजपत्रित कार्मिकों का भेद, विधि का शासन, समिति व्यवस्था, पुलिस एवं न्याय प्रणाली, सेना एवं पुलिस का पृथक्करण तथा नौकरशाही की आधुनिक अवधारणाओं का प्रसार हुआ। भारतीय प्रशासन में सुधार के लिए ब्रिटिश शासकों ने अनेक आयोग एवं सीमितियों जैसे :– कमेटी ऑन इण्डियन सिविल सर्विस (1854), रॉयल कमीशन ऑन डिसेन्ट्रेलाइजेशन (1909), कमेटी ऑन सक्रेटेरिएट रिऑर्गेनाइजेशन (1930), कमेटी ऑन ऑर्गेनाइजेशन एण्ड प्रोसीजर (1936) इत्यादि गठित की थी जिनका वर्णन सम्बन्धित अध्यायों में यथास्थान किया जा चुका है। स्वतंत्रता के संक्रमण काल में सचिवालय एवं लोक सेवा सुधार के लिए टोटनहेम समिति (1945–46) तथा नियोजन के लिए के॰सी॰ नियोगी समिति ने रिपोर्ट प्रदान की।

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms after Independence)

भारत और ब्रिटेन सहित अधिकांश संसदीय प्रणाली वाले देशों में प्रशासनिक सुधारों का मुख्य दायित्व मंत्रिपरिषद् द्वारा निर्वाहित किया जाता है जबकि अमेरिका जैसे अध्यक्षीय शासन प्रणाली वाले देशों में अधिकांश सुधारों की वैधानिक शक्तियाँ विधानमंडल में निहित होने के कारण एक कठोर तथा अल्प परिवर्तित प्रशासनिक तंत्र कार्यरत है। लेकिन समयानुकूल प्रशासनिक सुधार प्रत्येक देश तथा शासन व्यवस्था में होते रहते हैं। हाँ, उनकी मात्रा तथा अंतराल में अंतर हो सकता है।

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही भारतीय प्रशासनिक तंत्र को पुनर्गठित करने के प्रयास शुरू हो चुके थे क्योंकि देश–विभाजन के कारण कुछ अधिकारी पाकिस्तान चले गए जबकि कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने अपने वतन वापिस जाना उचित समझा। इसी प्रकार भौगोलिक आधार पर भी प्रशासनिक संगठनों का बँटवारा हो गया। ऐसी परिस्थिति में गिरिजाशंकर वाजपेयी की अध्यक्षता में बनी 'सचिवालय पुनर्गठन समिति' ने 10 अगस्त, 1947 को रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट की अनुशंसा के अनुरूप केन्द्रीय सचिवालयी विभागों का पुनर्गठन तथा प्रक्रियात्मक सुधार किए गए।

सन् 1948 में प्रमुख उद्योगपति कस्तूरभाई की अध्यक्षता में मितव्ययता समिति गठित की गई जिसने वर्ष 1938 से वर्ष 1948 तक के दशक में हुए लोक सेवा विस्तार एवं व्यय का विश्लेषण किया व अनावश्यक खर्चों पर नियंत्रण के सुझाव दिए। सन् 1949 में केन्द्रीय मंत्री गोपालास्वामी आंयगर ने 'शासकीय मशीनरी के पुनर्गठन' पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में ओ. एण्ड एम. इकाई की स्थापना के साथ केन्द्रीय मंत्रालयों को चार ब्यूरो यथा :–

- प्राकृतिक संसाधन एवं कृषि ब्यूरो
- उद्योग एवं व्यापार ब्यूरो
- यातायात एवं संचार ब्यूरो तथा
- श्रम एवं सामाजिक सेवा ब्यूरो

में पुनर्गठित करने के सुझाव वर्णित थे। ये सिफारिशें नहीं की जा सकी।

वर्ष 1951 में योजना आयोग को ए.डी. गोरवाला समिति ने दो रिपोर्ट प्रस्तुत की। एक आई.सी.एस. अधिकारी के रूप में गोरवाला ने 'भारत में लोक प्रशासन' तथा 'लोक उपक्रमों के कुशल संचालन' नामक रिपोर्ट में ओ. एण्ड एम. इकाई की शीघ्र स्थापना, लोक सेवाओं में अनुशासन, राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों में सामंजस्यता, कार्यकारी संस्थाओं को स्वतंत्रता, व्हिटले परिषदों की स्थापना तथा आई.एस.एस. प्रशिक्षण में सुधार के सुझाव दिए।

वर्ष 1953 में अमेरिका के फोर्ड फाउन्डेशन के परामर्शदाता पॉल एच. एपलबी को भारत सरकार ने आमंत्रित किया। एपलबी ने समस्त लोक सेवाओं का एकीकरण कर सएक सामान्य सेवा बनाने, कार्मिकों को प्रशिक्षण देने, योजना आयोग द्वारा केवल योजना बनाने (क्रियान्वयन नहीं), लोक नियमों पर कठोर नियंत्रण रखने, ओ. एण्ड एम. की स्थापना करने, वित्तीय कार्यों में अन्य मंत्रालयों को वित्त मंत्रालयों से मुक्त करने, मंत्रालयों में समन्वय स्थापित करने, सामुदायिक विकास परियोजनाओं में जिम्मेदारी निश्चित् करने तथा भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना करने संबंधित 12 अनुशंसाएँ की थी। एपलबी की रिपोर्ट को महत्व प्रदान करते हुए भारत सरकार ने वर्ष 1954 में मंत्रिमंडल सचिवालय के अधीन ओ. एण्ड एम. (संगठन एवं प्रक्रिया) संभाग स्थापित कर दिया तथा इसी वर्ष भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की नई दिल्ली में स्थापना की गई।

वर्ष 1956 में पुनः पॉल एच. एपलबी भारत आए तथा 'भारतीय प्रशासन के पुनर्परीक्षण' (राज्य औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उपक्रमों के विशेष संदर्भ में) पर अपनी रिपोर्ट प्रदान की। इस बार उन्होंने पूर्व की अनुशंसा को पलटते हुए लोक निगमों को अधिक स्वतंत्रता की सिफारिश की। उनके अनुसार लोक उपक्रमों को अधिक शक्तियाँ देने से उच्चश्रृंखला नहीं बल्कि अधिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होती है। इस रिपोर्ट में उन्होंने नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षण की आलोचना करते हुए उसे दमनकारी संस्था करार दिया गया, योजना तंत्र में स्वतंत्रता की सिफारिश की। इसी वर्ष 'लोक सेवा (भर्ती की योग्यताएँ) समिति' की रिपोर्ट आई। समिति के अध्यक्ष ए.आर. मुदलियार ने लोक सेवाओं में कार्यकुशलता तथा गुणवत्ता वृद्धि के लिए भर्ती व्यवस्था में सुधार के सुझाव दिए।

भारत में वर्ष 1956 में राज्यों का पुनर्गठन किया गया, जो न्यायमूर्ति सैयद फजल अली की अध्यक्षता में बने 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की सिफारिशों का परिणाम था। भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होने से राज्य सचिवालयों तथा राज्य प्रशासन में व्यापक परिवर्तन आए। वर्ष 1957 में 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं के अध्ययन दल' की रिपोर्ट आयी। बलवंत राय मेहता इस समिति के अध्यक्ष थे। रिपोर्ट में विकास कार्यक्रमों में जनसहभागिता बढ़ाने तथा लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को मूर्त रूप में देने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना का सुझाव दिया गया। गाँधी जयंती पर 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान राज्य के नागौर जिले में पंडित नेहरू ने पंचायती राज का शुभारम्भ किया। सन् 1962 में वी.टी. कृष्णामाचारी समिति ने 'भारतीय एवं राज्य प्रशासनिक सेवा तथा जिला प्रशासन की समस्याएँ' विषय पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें आई॰ए॰एस॰ की सीधी भर्ती की संख्या बढ़ाने, आई.ए.एस. का राज्य प्रशिक्षण गहन बनाने तथा आई.ए.एस. के लिए पुनश्चर्या (रिफ्रेशन) पाठ्यक्रम की आवश्यकता पर बल दिया। सन् 1964 में 'भ्रष्टाचार निरोधक समिति' की रिपोर्ट सामने आयी। के. संस्थानम की अध्यक्षता में बनी इस समिति ने केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त की स्थापना तथा लोक सेवकों के लिए आचार संहिता का सुझाव दिया जो क्रियान्वित भी हुए।

भारत में प्रशासनिक सुधारों के क्रम में सबसे बड़ा प्रयत्न प्रशासनिक सुधार आयोग (A.R.C.) के रूप में रहा है। इस आयोग की स्थापना का सुझाव अशोक चन्दा तथा मोरारजी देसाई सहित अनेक प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा बार–बार दिया जा रहा था। संथानम समिति की रिपोर्ट के पश्चात् यह माँग बहुत अधिक बलवती हुई कि सम्पूर्ण भारतीय प्रशासन के विशद् अध्ययन एवं सुधार हेतु एक जाँच समिति आवश्यक है। इसी क्रम में दिनांक 5 जनवरी, 1966 को मोरारजी देसाई की अध्यक्षता तथा के॰ हनुमन्तैया, हरिश्चन्द्र माथुर, जी॰एस॰ पाठक एवं एच॰वी॰ कामथ की सदस्यता में प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया। वी॰ शंकर इस आयोग के सदस्य–सचिव बनाए गए। वी॰

शंकर के अतिरिक्त सभी सदस्य सांसद थे। मार्च, 1967 में मोरारजी देसाई द्वारा उपप्रधानमंत्री पदधारण करने के पश्चात् के॰ हनुमन्तैया को आयोग का नवीन/नया अध्यक्ष बनाया गया। अगले वर्ष जी॰एस॰ पाठक तथा हरिश्चन्द्र माथुर के स्थान पर देवव्रत मुखर्जी तथा टी॰एन॰ सिंह नए सदस्य बनाए गए। सन् 1969 में वी॰वी॰ चारी तत्पश्चात् एन॰एस॰ पांडे आयोग के सदस्य सचिव नियुक्त किए गए। प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना से पूर्व अनेक राज्यों में प्रशासनिक सुधार समितियाँ रिपोर्ट दे चुकी थी। आयोग ने उनका अध्ययन किया तथा राज्यों एवं केन्द्र के मंत्रालयों, मंत्रियों, प्रशासकों, अर्थशास्त्रीयों तथा बुद्धिजीवियों से सम्पर्क किया। आयोग ने 33 अध्ययन दल तथा कार्यदल गठित किए जो विषय विशेषज्ञता एवं कार्यक्षेत्र के अनुरूप विभक्त थे।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने लगभग 580 अनुशंसाएँ भारत सरकार को प्रस्तुत की। आयोग की अनुशंसाओं में 51 सिफारिशें पूर्णतः तथा 8 अंशतः राज्य सरकारों से संबंधित थी। भारत सरकार ने 500 से अधिक सिफारिशों पर निर्णय लिया लेकिन सभी सिफारिशों स्वीकार नहीं की जा सकी।

प्रशासनिक सुधार आयोग की प्रमुख अनुशंसाएँ इस प्रकार हैं :–

1. भारत सरकार के प्रशासन तंत्र के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग का मानना था कि :–
    - केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् में 45 तक सदस्य हों जिनमें प्रधानमंत्री सहित 16 केबिनेट स्तरीय मंत्री हों।
    - मंत्रिपरिषद् का निम्नतम मंत्री पद 'संसदीय सचिव' समाप्त किया जाए।
    - उपप्रधानमंत्री पद औपचारिक रूप से स्वीकार किया जाए।
    - प्रधानमंत्री स्वयं के पास कोई मंत्रालय या विभाग न रखें बल्कि वे केवल निर्देशन, समन्वय एवं पर्यवेक्षण कार्य करें।
    - सरकार के सभी महत्वपूर्ण निर्णय लिखित में रखे जाएँ।
    - यदि कोई लो सेवक (सचिव) मंत्री के आदेशों के विरूद्ध कार्य करे तो उसके कृत्य के लिए मंत्री को उत्तरदायी न माना जाए।
    - राज्य सूची विषयों पर केन्द्रीय मंत्रालय आवश्यक नेतृत्व एवं सहायता प्रदान करें।
    - भारत सरकार में पृथक् से कार्मिक विभाग स्थापित किया जाए।
2. नियोजन तंत्र के सम्बन्ध में सुझाव दिए कि :–
    - प्रधानमंत्री को योजना आयोग का अध्यक्ष नहीं बनाना चाहिए बल्कि प्रधानमंत्री, आयोग के कार्यों से निकट सम्पर्क रखे तथा आवश्यक समझे तभी आयोग की बैठकों में जाए एवं अध्यक्षता करें।
    - वित्त मंत्री योजना आयोग का सदस्य न हो लेकिन घनिष्ठ सम्बन्ध रखे।
    - कोई भी मंत्री योजना आयोग का सदस्य न बनाया जाए।
    - योजना आयोग के सभी सदस्य पूर्णकालिक तथा विशेषज्ञता प्राप्त हों जिन्हें 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाए।
    - उच्च योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही आयोग का सचिव बने तथा अधीनस्थ कार्मिक भी तकनीकी क्षमता प्राप्त हों।

- योजना आयोग को तीन शाखाओं क्रमशः योजना बनाने, मूल्यांकन करने तथा संस्थापन कार्य करने में विभक्त किया जाए।
- राज्यों में भी योजना बनाने एवं उनका मूल्यांकन करने हेतु 'योजना बोर्ड' बनें।
- योजना आयोग में वरिष्ठ पदों पर चयन के लिए विशेष समिति बने जिसमें योजना आयोग के अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, योजना आयोग के उपाध्यक्ष को सम्मिलित कर फिक्की (फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इन्डस्ट्री) इत्यादि का भी सहयोग लें।
- आयोग प्रतिवर्ष कार्य निष्पत्ति एवं प्रगति का प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।
- 25 सदस्यों की विशेष संसदीय समिति इस प्रतिवेदन की जाँच करे।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् में प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, केन्द्रीय वित्त, खाद्य एवं कृषि, उद्योग, वाणिज्य, श्रम एवं रोजगार, गृह, ऊर्जा तथा सिंचाई मंत्रियों सहित योजना आयोग के सभी सदस्य एवं राज्यों के मुख्यमंत्री सम्मिलित किए जाएँ।

3. लोक उपक्रमों के संबंध में सिफारिशें :–

- औद्योगिक तथा उत्पादन कार्यों में लोक निगम तथा विकास संबंधित कार्यों में विभागीय या निगम प्रणाली एवं व्यापारिक प्रकृत्ति के कार्यों में कम्पनी प्रारूप उपयुक्त रहेगा।
- यातायात, पर्यटन, होटल, विद्युत, जहाजरानी, तेल तथा उद्योग इत्यादि के क्षेत्रों में 'क्षेत्रीय निगम' स्थापित किए जाएँ।
- मंत्रालयों का कोई भी अधिकारी लोक उपक्रमों का अध्यक्ष न बने।
- लोक उपक्रमों के अध्यक्ष एवं उच्च स्तरीय प्रबंधकीय पद प्रतिनियुक्ति से भरे जाएँ।
- प्रबंध मंडलों के सरकारी सदस्य, वरिष्ठ हों जिनका स्तर संयुक्त सचिव स्तर से कम न हो।
- बड़े लोक उपक्रमों के प्रबंध मंडलों को पूँजी स्वीकृत्ति की अधिक शक्तियाँ दी जाएँ।
- लोक उपक्रमों को सरकार द्वारा दिए जाने वाले निर्देश लिखित में हों जिनका वर्णन वार्षिक प्रतिवेदन में भी हो।
- संसद में लोक उपक्रमों के बहस के दिन निश्चित् कर देने चाहिए तथा संसद को बता देना चाहिए कि किन विषयों पर प्रश्न न पूछे जाएँ।
- निजी क्षेत्र के प्रबंधकों को लोक उपक्रमों की ओर आकर्षित किया जाए।
- श्रमिक संगठनों को निरूत्सहित किया जाए तथा लोकतांत्रिक तरीके अपनाएँ जाएँ।
- लोक उपक्रम ब्यूरो का स्तर ऊँचा उठाया जाए।
- लोक उपक्रम के कार्मिकों के प्रशिक्षण विशेषतः विदेश प्रशिक्षण का प्रबंध किया जाए।

- अंकेक्षण के लिए 'अंकेक्षण मंडल' स्थापित हों तथा आयात के प्रबंध पर नियंत्रण किया जाए। बजट का मासिक पुर्नावलोकन किया जाए तथा विनियोग एवं विनिवेश नीति पर ध्यान दिया जाए।

4. वित्त एवं लेखा प्रशासन के संबंध में सिफारिशें :–

- केन्द्र एवं राज्य स्तर पर विकास कार्यक्रमों से सम्बद्ध विभागों में 'निष्पादन बजट' प्रणाली अपनाई जाए।
- वित्तीय वर्ष एक अप्रैल के बजाए एक नवम्बर से शुरू हो।
- प्रत्येक मंत्रालय में वित्तीय सलाहकार का पद हो।
- विकासात्मक कार्यों वाले विभागों में 'निष्पादन अंकेक्षण' भी होना चाहिए।

5. कार्मिक प्रशासन से संबंधित सिफारिशें :–

- केन्द्रीय सचिवालय के कार्यों को प्रकृत्ति एवं क्षेत्र अनुसार वर्गीकृत एवं संगठित कर एकीकृत किया जाना चाहिए।
- प्रशासनिक सुधार की सिफारिशों की क्रियान्विति के लिए कार्मिक विभाग (गृह मंत्रालय के अधीन था) उत्तरदायी होगा।
- आई.ए.एस. भर्ती की आयु सीमा 28 वर्ष हो तथा दो अवसर प्रदान किए जाएँ।
- तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के कर्मियों की भर्ती एक ही अभिकरण के द्वारा हो तथा तकनीकी सेवाओं के पदो ंके लिए एक बोर्ड बने।
- प्रथम श्रेणी के पद तथा आई.ए.एस. प्रतियोगी परीक्षा द्वारा ही चुने जाएँ।
- राज्य के लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष एवं सदस्यों का चयन राज्यपाल के परामर्श से हो। राज्य के आयोग में एक सदस्य राज्य से बाहर का हो। संघ लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष, राज्यों के लोक सेवा आयोग से लिया जाए।
- वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन को 'निष्पादन मूल्यांकन' कहा जाए तथा इसे अधिक सारगर्भित एवं उपयोगी बनाया जाए।
- कार्मिकों के प्रशिक्षण पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाए।
- 15 वर्ष की सेवा के पश्चात् सेवानिवृत्ति का विकल्प किया जाए।
- नौकरी में प्रवेश के समय प्रत्येक कार्मिक से 'हड़ताल पर न जाने' का शपथ पत्र लिया जाए।
- किसी भी कार्मिक को तीन माह से अधिक निलम्बित न किया जाए। केवल अदालती मामलों में अवधि अधिक हो सकती है।

6. कार्मिक प्रशासन से संबंधित सिफारिशें :–

- केन्द्र में लोकपाल तथा राज्यों में लोकायुक्त संस्था की स्थापना की जाए। सचिव के नीचे के स्तर के अधिकारियों की यह जाँच करे तथा स्वतंत्र संस्था हो। लोकपाल का स्तर भारत के मुख्य न्यायाधीश

तथा लोकायुक्त का स्तर राज्य के मुख्य न्यायाधीश के समकक्ष हो। राष्ट्रपति द्वारा लोकपाल की नियुक्ति पांच वर्ष के लिए की जाए तथा प्रधानमंत्री, मुख्य न्यायाधीश एवं सदन में विपक्ष का नेता इससे सहमत हों। विधायिका में लोकपाल एवं लोकायुक्तों की रिपोर्ट पर विचार हो तथा सरकार द्वारा की गई कार्यवाही का तीन माह में विवरण प्रस्तुत किया जाए।

आर्थिक प्रशासन के संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग ने 'कीमत लागत तथा शुल्क आयोग' की स्थापना का सुझाव दिया था जो औद्योगिक उत्पादन की कीमतों, लागत एवं शुल्क के क्रम में सरकार को परामर्श प्रदान करे इस सिफारिश को स्वीकार करते हुए 14 जनवरी, 1970 को औद्योगिक लागत एवं मूल्य ब्यूरो स्थापित किया जा चुका है।

प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसा के आधार पर ही योजना आयोग में अधिक विशेषज्ञों की नियुक्ति, केन्द्रीय मंत्रालयों में वित्तीय सलाहकार, राज्यों में योजना मंडलों की स्थापना, लोक उपक्रमों के लिए अंकेक्षण मंडल का गठन, लोकायुक्त की स्थापना, निष्पादन बजट की शुरूआत, निष्पादन मूल्यांकन का नवीन रूप तथा पृथक् से प्रशासनिक सुधार विभाग का गठन किया गया है। प्रशासनिक सुधार आयोग को बीच में ही (1970) समाप्त कर दिया गया था अन्यथा आयोग द्वारा अन्य विषयों पर भी अनुशंसाएँ दी जाती।

वर्ष 1976 में डी॰एस॰ कोठारी की अध्यक्षता में बनी 'भर्ती नीति तथा चयन पद्धति समिति' ने सिविल सेवा परीक्षा प्रणाली में व्यापक संशोधन सुझाए थे। अखिल भारतीय सेवाओं के लिए एक ही प्रतियोगी परीक्षा तथा दो चरणों में आयोजन की शुरूआत हुई। सन् 1978 में पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकरण से संबंधित अशोक मेहता समिति ने मंडल पंचायतें बनाने, पंचायती राज को द्विस्तरीय बनाने तथा अन्य सुझाव दिए जो अस्वीकार किए गए। वर्ष 1980 में एल॰के॰ झा की अध्यक्षता वाले आर्थिक सुधार आयोग ने नई अर्थव्यवस्था अपनाने तथा आधुनिकीकरण के प्रयास शुरू करने के सुझाव दिए।

युवा प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने प्रशासनिक सुधारों में रूचि लेते हुए सितम्बर, 1985 में केन्द्रीय सचिवालय का नए शिरे से पुनर्गठन किया तथा स्वतंत्र 'कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय' की स्थापना कर प्रशासनिक सुधार विभाग एवं जन शिकायत निदेशालय इसके अधीन रखे। इससे पूर्व प्रशासनिक सुधार, ओ॰ एण्ड एम॰ तथा प्रशिक्षण सम्बन्धित कार्य गृह मंत्रालय सम्पादित करता था। राजीव गाँधी ने सत्ता ग्रहण करते ही 5 जनवरी, 1985 को प्रशासनिक सुधारों हेतु एक पैकेज घोषित किया था जिसमें निम्नांकित बिन्दु समाहित थे :–

- निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण
- जवाबदेयता को सुनिश्चित करना
- नियमों और प्रक्रियाओं का सरलीकरण
- नागरिकों को त्वरित और शालीन सेवाओं की उपलब्धता
- लोक शिकायतों के निवारण हेतु एक उपयुक्त व्यवस्था की स्थापना।

सरकारिया आयोग (Sarkaria Commission)

केन्द्र–राज्य संबंधों के गहन अध्ययन तथा उनमें सुधार हेतु सुझाव देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायधीश आर॰एस॰ सरकारिया की अध्यक्षता में एक आयोग के गठन की घोषणा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा 24 मार्च, 1983 को की गई। आयोग का औपचारिक गठन 9 जून, 1983 को हुआ तथा जुलाई, 1983 में श्री वी॰ शिवरमन तथा डॉ॰ एस॰आर॰रो॰ की नियुक्तियाँ सदस्यों के रूप में की गई। केन्द्र–राज्य की शक्तियों, कार्यों तथा उत्तरदायित्वों के अध्ययन व उनमें यथोचित सुधार के लिए आयोग ने 109 प्रश्नों की विस्तृत

प्रश्नावली तैयार की जिसमें केन्द्र–राज्य विधायी संबंध, राज्यपाल की शक्तियाँ, योग्यता एवं भूमिका, वित्तीय संबंध, सामाजिक आर्थिक विकास, सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था, प्रशासनिक नियंत्रण तथा राजनीतिक संबंधों इत्यादि विषयों पर प्रश्न संरचित किए गए थे। प्रश्नावली की 6800 प्रतियाँ सांसदों, विधायकों, शिक्षा शास्त्रियों, संस्थाओं, पत्रकारों, विचारकों, राजनेताओं, विधिवेत्ताओं, अर्थशास्त्रियों तथा संविधान एवं शासन से सम्बंद्ध रहे अनुभवी व्यक्तियों इत्यादि को सौंपी गई। आयोग ने केन्द्र एवं राज्यों का दौरा किया तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप से विचार–विमर्श कर अपने निष्कर्ष एक रिपोर्ट के रूप में तैयार किए। सरकारिया आयोग ने अपना 1600 पृष्ठीय प्रतिवेदन 2 नवम्बर, 1987 को भारत सरकार को सौंप दिया।

सरकारिया आयोग ने केन्द्र–राज्य संबंधों के प्रत्येक पहलू पर गहनता से अध्ययन तथा विश्लेषण किया था। आयोग द्वारा प्रस्तुत अनुशंसाओं में से कुछ अनुशंसाएँ केन्द्र सरकार ने स्वीकार कर ली गई, जबकि अन्य पर विचार–विमर्श चल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना और तत्पश्चात् इसकी स्थायी समिति की बैठकों में सरकारिया आयोग की सिफारिशों पर बहस अभी जारी है।

केन्द्र–राज्य संबंधों के क्रम में सरकारिया आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए थे :–

- अनुच्छेद 246 और 254 यथावत् रहने चाहिए नहीं तो हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था को हानि उठानी पड़ सकती है।
- अनुच्छेद 248 के अन्तर्गत अवशिष्ट विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र के पास ही रहना चाहिए।
- संघीय, राज्य तथा समवर्ती सूची में परिवर्तन न किया जाए, क्योंकि ऐसा करना अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संविधान की मौलिक बनावट के विरूद्ध होगा।
- समवर्ती सूची से संबंधित विधान बनाते समय संघ–राज्य परामर्श को संवैधानिक बाध्यता नहीं बनाया जाए।
- संघ सरकार को समवर्ती सूची से संबंधित उसी क्षेत्र पर हस्तक्षेप करना चाहिए जो राष्ट्र के व्यापक हित में हो।
- अनुच्छेद 249 नहीं हटाया जाए, क्योंकि इसका प्रयोग संघ सरकार ने बहुत कम किया है। पहली बार सन् 1950 में काला बाजार नियंत्रण हेतु तथा वर्ष 1986 में दूसरी बार।
- अनुच्छेद 256 तथा 357 आवश्यक उपबंध है, अतः ये यथावत् रहें।
- किसी राज्य में सशस्त्र बलों की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाएं बनानी चाहिए ताकि केन्द्र पर निर्भरता कम हो सके।
- केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल तथा संघ के अन्य सशस्त्र बलों के साथ राज्यों के सशस्त्र बलों के अधिकारियों की अदला–बदली होनी चाहिए एवं इन सभी बलों के प्रशिक्षण केन्द्र एक ही जगह क्षेत्रीय आधार पर होने चाहिए।
- पड़ोसी राज्यों को परस्पर मिलकर शस्त्र पुलिस बलों के उपयोग की व्यवस्था करनी चाहिए। इसके लिए क्षेत्रीय परिषद् की व्यवस्था हो।
- अखिल भारतीय सेवाओं की उपादेयता आज भी उतनी है जितनी कि संविधान के निर्माण के समय थी अतः केन्द्र–राज्य इस संबंध में समन्वय स्थापित करें।
- इन सेवाओं के अधिकारियों के प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य सेवा शर्तों में सुधार होते रहना चाहिए।

- प्रत्येक अधिकारी चाहे वह सीधी भर्ती से आया हो या पदोन्नति से, उसे एक न्यूनतम अवधि के लिए संघ में कार्य करने हेतु भेजा जाए।
- राज्य से संघ में प्रतिनियुक्ति पर भेजे जाने वाले अधिकारियों तथा राज्य में कार्यरत अधिकारियों में 'अतरंगी' एवं 'बहिरंगी' अधिकारियों की संख्या समान होनी चाहिए।
- अवधि प्रधाली की पूर्ण अनुपालना कर यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अखिल भारतीय सेवाओं के श्रेष्ठ अधिकारियों की आवश्यकता संघ तथा राज्य दोनों को ही है।
- संघ द्वारा राज्यों की अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों के अनुशासन एवं नियंत्रण के लिए स्थानान्तरण, पदोन्नति, पदस्थापन तथा निलम्बन का प्रयोग रोका जाना चाहिए।
- इन सेवाओं के अधिकारियों की समस्याओं पर विचार करने तथा अन्य विवादित मुद्दे सुलझाने के लिए 'अखिल भारतीय सेवाओं के सेवीवर्ग प्रशासन' के लिए एक सलाहकार परिषद्, मंत्रिमंडल सचिव की अध्यक्षता तथा संघीय सचिवों एवं राज्यों के मुख्य सचिवों की सदस्यता में बनाई जानी चाहिए।
- संघीय 'कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग' की सहायता से इस परिषद् की बैठक एवं कार्यप्रणाली सुनिश्चित होनी चाहिए।
- इस सलाहकार परिषद् से जो मामला न सुलझे वह उच्च स्तर की परिषद् में भेजा जाना चाहिए।
- योजना आयोग का उपाध्यक्ष ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ हो जो राज्य सरकारों को भी विश्वास में ले सके। राज्य स्तर पर योजना बोर्ड गठित होने चाहिएं।
- योजना आयोग में प्रस्तावित 'वित्त आयोग प्रकोष्ठ' को राज्यों की वित्तीय व्यवस्था को भी नियंत्रित करना चाहिए। यदि वित्त आयोग प्रकोष्ठ, योजना आयोग के वित्तीय संसाधन प्रभारी के अधीन कार्य करेगा तो योजना आयोग तथा वित्त आयोग के मध्य समन्वय बढ़ेगा।
- वित्त आयोग को अपने कार्य के लिए देश के विभिन्न भागों में विशेषज्ञ नियुक्त करने चाहिए।
- राज्य सरकारों के प्रतिनिधि भी वित्त आयोग में सम्मिलित हों।
- राष्ट्रीय विकास परिषद् को अनुच्छेद 263 के उपबन्धों के तहत् राष्ट्रपति द्वारा आदेश जारी करके 'राष्ट्रीय आर्थिक और विकास परिषद्' नाम दे देना चाहिए।
- निगम कर के उचित बंटवारों के लिए संविधान में संशोधन किया जाए।
- उत्पादन के बदले राज्यों की बिक्री कर में अधिक हिस्सा देना उचित नहीं होगा।
- सिवाय किसी विशेष प्रयोजन के (वह भी समिति अवधि के लिए) संघ को आयकर पर अधिभार नहीं लगाना चाहिए।
- राज्यों को ऋण देने की नीति तथा पद्धति पर पुनर्विचार होना चाहिए।
- केन्द्र द्वारा प्रायोजित परियोजनाएँ कम की जानी चाहिएं तथा किसी योजना अवधि के मध्य में नई परियोजनाएँ नहीं चलानी चाहिए।
- कृषि आय पर कराधान एक नाजुक मसला है अतः राजनीतिक मतैक्य स्थापित करके आगे बढ़ा जाए।

- अनुच्छेद 293(4) के अंतर्गत संघ सरकार को चाहिए कि वह राज्यों का बैंकों और वित्तीय संस्थाओं से एक वर्ष से कम अवधि के उधार लेने के लिए सहज ही सहमति दे।
- खनिज, पेट्रोल तथा प्राकृतिक गैस पर दिया जाने वाला पारिश्रमिक प्रति दो वर्ष पर संशोधित होना चाहिए।
- कर मुक्त 'नगर परिषद् बाण्ड' पद्धति देश में लागू की जाए।
- उद्योगों पर केन्द्रीय नियंत्रण व्यवस्था पर प्रति तीन वर्ष पश्चात् पुनर्विचार हो।
- उद्योगों की स्वीकृति में अनावश्यक देरी को दूर करने के लिए एक समिति बनाई जाए।
- उद्योगों को लाइसेंस देने वाले कार्यालय सभी राज्यों की राजधानियों में भी खोले जाएँ।
- राज्यों में चलने वाली केन्द्रीय योजनाओं के निर्माण के समय राज्यों से परामर्श किया जाए।
- वन संरक्षण अधिनियम, 1960 के अन्तर्गत संघ सरकार वनों को संरक्षण प्रदान करती है तथा राज्य सरकारें पौधे बांटना व वनों के विकास संबंधी कार्य करती है, अतः दोनों के मध्य समन्वय हो।
- अन्तर्राष्ट्रीय जल–विवाद अधिनियम खण्ड–3 के अंतर्गत संघ सरकार के पास जल–विवाद का प्रार्थना–पत्र प्रस्तुत होने के एक वर्ष के भीतर न्यायाधिकरण स्थापित हो जाना चाहिए।
- आवश्यक वस्तु अधिनियम की कार्यप्रणाली पर गहन अध्ययन किया जाए।
- अनुच्छेद 307 के अंतर्गत संघ द्वारा राज्यों के बीच अंतर्राष्ट्रीय सीमा विवादों के लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए।
- संघ एवं राज्य सरकारों के कार्य जिनका संबंध स्थानीय जनता से हो, वे स्थानीय भाषा में किए जाएं तथा त्रि–भाषा सूत्र का क्रियान्वयन हो।

क. राज्यपाल के चयन से संबंधित (Related to Selection of Governor)

- जिस व्यक्ति को राज्यपाल बनाया जाए वह किसी न किसी क्षेत्र में प्रतिष्ठित होना चाहिए।
- वह राज्य से बाहर का रहने वाला हो।
- राजनीतिक रूप से तटस्थ व्यक्ति हो तथा स्थानीय (राज्य) गुटबाजी में रूचि न लेता हो।
- सामान्यतः राजनीतिक प्रकरणों में कम रूचि लेने वाला रहा हो, विशेषतः हाल ही के दिनों में सक्रिय राजनीतिज्ञ नहीं हो।
- अल्पसंख्यक वर्गों से सम्बद्ध व्यक्तियों को पर्याप्त अवसर दिया जाए।
- यह वांछनीय होगा कि ऐसे किसी व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में नियुक्त न किया जाए जो केन्द्र में सत्तारूढ़ पार्टी का राजनीतिज्ञ हो तथा राज्य में अन्य पार्टी शासन कर रही हों।
- अनुच्छेद 153 में समुचित संशोधन करके राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व मुख्यमंत्री के परामर्श करने का प्रावधान किया जाए।
- प्रधानमंत्री को चाहिए कि वह उपराष्ट्रपति तथा लोकसभा के अध्यक्ष से राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व परामर्श कर ले। यह परामर्श गुप्त तथा औपचारिक हो किन्तु इसे संवैधानिक दायित्व नहीं माना जाए।

- पांच वर्ष की पदावधि से पूर्व राज्यपाल को नहीं हटाया जाना चाहिए जब तक कि विशेष परिस्थिति न हो।
- राज्यपाल को हटाने से पूर्व उसे सूचित किया जाए तथा स्पष्टीकरण का अवसर दिया जाए। यदि राज्यपाल इस क्रम में आपत्ति प्रस्तुत करे तो उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष तथा सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश की एक समिति प्रकरण की जांच करे तत्पश्चात् राष्ट्रपति कोई आदेश प्रदान करें।
- पांच वर्ष से पूर्व किसी राज्यपाल को हटाने, दूसरे राज्य में भेजने या स्वयं त्यागपत्र देने के प्रकरणों को संसद के दोनों सदनों में रखा जाए। यदि किसी राज्यपाल ने हटाने के विरूद्ध स्पष्टीकरण दिया हो तो वह भी सदन में प्रस्तुत किया जाए।
- परम्परागत रूप में राज्यपाल पद त्यागने के पश्चात् पुनः राज्यपाल, उपराष्ट्रपति या राष्ट्रपति पद के अलावा कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करते हैं। यदि कोई राज्यपाल त्यागपत्र देकर पुनः सक्रिय राजनीति में सम्मिलित होता है तो इसे भी नियंत्रित किया जाए।
- बिना यह विचार किए कि किसी राज्यपाल ने कितनी अवधि तक कार्य किया, उसे एवं उसकी जीवित पत्नी को उचित पेंशन लाभ प्रदान किए जाएं।

ख. मुख्यमंत्री के चयन से संबंधित (Related to Selection of Chief Minister)

- मुख्यमंत्री का चयन करते समय राज्यपाल को निम्नलिखित तथ्य ध्यान में रखने चाहिएः–
    - विधानसभा में अधिकतम सीटें रखने वाली पार्टी अथवा पार्टियों के गठबंधन को बुलाया जाए।
    - राज्यपाल यह देखे कि सरकार बन गई है, न कि ऐसी सरकार बनाने का प्रयास करे जो उसकी नीतियों को आगे बढ़ाएँ;
- यदि एक ही पार्टी पूर्ण बहुमत में है तो उसके नेता को मुख्यमंत्री बना दिया जाएगा, और यदि कोई भी दल पूर्ण बहुमत में नहीं है तो सरकार बनाने के क्रम (मुख्यमंत्री का चयन) में निम्नलिखित बातें क्रमशः ध्यान में रखी जाएँ :–
    - चुनाव से पूर्व बने गठबंधन को अवसर दें।
    - ऐसी सबसे बड़ी पार्टी जो अन्य पार्टियों के समर्थन, जिसमें निर्दलीय भी सम्मिलित हैं, के साथ सरकार बनाने का दावा करती हो।
    - मिली जुली संयुक्त सरकार में सम्मिलित सभी पार्टियों का एक पश्च निर्वाचकीय सम्मिलन (चुनाव पश्चात् बना संगठन)।
    - चुनाव पश्चात् बना गठबंधन जिसमें सरकार बनाने के लिए आपस में गठबंधन किए हुए कुछ दलों सहित अन्य दल, निर्दलियों को सम्मिलित करते हुए सरकार से बाहर रहते हुए सरकार का समर्थन करने की स्थिति।

ऊपर बताई गई प्रक्रिया के अनुसार राज्यपाल यह निश्चित करे कि कौन मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत पर अधिक प्रभाव डाल सकता है।

कोई भी मुख्यमंत्री तब तक विधानसभा में बहुमत दल का नेता नहीं माना जा सकता जब तक कि वह कार्यग्रहण करने से 30 दिन के अंदर विधानसभा में विश्वास मत प्राप्त न कर ले। यह कार्य धार्मिक अनुष्ठान की तरह पूर्ण निष्ठा से किया जाना चाहिए।

ग. मंत्रिमडल की बर्खास्तगी तथा सदन का सत्र बुलाना (Cabinet Dissolution and Convencing Session of the House)

- राज्यपाल को विधानसभा के बाहर स्वयं के कंधों पर किसी मंत्रिमण्डल के बहुमत में होने का जोखिम नहीं लेना चाहिए बल्कि यह विधानसभा में सिद्ध करवाया जाए।
- बहुमत में होने तक किसी मंत्रिमण्डल को बर्खास्त नहीं किया जाना चाहिए। यदि कोई मुख्यमंत्री (मंत्रिमण्डल) बहुमत खो देने के पश्चात् भी त्यागपत्र न देता हो तो राज्यपाल उस मंत्रिमण्डल को बर्खास्त करने को बाध्य होगा।
- जब विधानसभा का सत्र चल रहा हो तो बहुमत का निर्णय सदन में होना चाहिए।
- यदि सदन का सत्र न चल रहा हो तथा मंत्रिमण्डल ने बहुमत खो दिया हो तो इसका निर्णय विधानसभा में ही करवाया जाए।
- सामान्य रूप से यही उचित होगा कि मुख्यमंत्री को सदन का सत्र बुलाने के लिए 30 दिन की अवधि दी जाए। यदि कोई तात्कालिक काम न आ जाए जैसे :– बजट पास करना (ऐसे में अवधि घटाई जा सकती है), विशेष परिस्थितियों में अवधि 60 दिन तक बढ़ाई जा सकती है।
- बहुमत तथा सदन का विश्वास प्राप्त मंत्रिमण्डल द्वारा सदन का सत्र बुलाना, स्थगित करना या भंग करने का सलाह यदि वह असंवैधानिक नहीं है तो राज्यपाल को मानने के लिए बाध्य हो।
- राज्यपाल कुछ आपातकालीन परिस्थितियों में सदन का सत्र बुलाने का निर्णय कर सकता है बशर्ते कि यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो कि उतरदायी सरकार की व्यवस्था संविधान के निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप चलाई जा रही हो।
- अनुच्छेद 174 (1) के अनुसरण में राज्यपाल छः माह के अन्तराल पर सदन का सत्र बुला सकता है चाहे मुख्यमंत्री निर्धारित अवधि (6 माह में कम से कम एक सत्र) के बाद सत्र बुलाने की सिफारिश करता हो।
- जब कोई मुख्यमंत्री (जो उस पार्टी का नेता नहीं है जिसे सदन में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है) कार्य ग्रहण करने के 30 दिन के अन्दर विधानसभा का सत्र बुलाने को तैयार नहीं है (या 60 दिन) तथा राज्यपाल यह पता लगा लेता है कि मुख्यमंत्री को विश्वास प्राप्त नहीं है तो राज्यपाल अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए सदन का सत्र बुला सकता है ताकि विश्वास का निर्णय हो जाए।
- यदि किसी मंत्रिमण्डल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस सदन में निलम्बित पड़ा है तो यह प्रस्ताव विरोधी दल की वैध चुनौती का प्रतीक है। ऐसे में सत्रावसान करने की सलाह यदि कोई मुख्यमंत्री दे तो राज्यपाल को चाहिए कि वह मुख्यमंत्री को अविश्वास प्रस्ताव का सामना करने ही कहे।
- बहुमत खो चुके या खोने की संभावना वाला मंत्रिमण्डल, राज्यपाल को विधानसभा भंग करने की सलाह दे तो राज्यपाल को सदन में इसका निर्णय करवाना चाहिए।
- यदि कोई मंत्रिमण्डल सदन में शक्ति परीक्षण नहीं करवाना चाहता तो राज्यपाल को विधानसभा भंग करने की सोचते हुए संबंधित राजनीतिक दलों एवं मुख्य चुनाव आयुक्त से परामर्श कर नए चुनावों की व्यवस्था करवानी चाहिए।

- यदि विधानसभा भंग की जानी है तथा शीघ्र नए चुनाव करवाने हैं तो प्रवर्तित मंत्रिमण्डल से काम चलाऊ सरकार के रूप में बने रहने की कही जाए। यदि यह मंत्रिमण्डल गंभीर कुशासन या भ्रष्टाचार का उत्तरदायी न हो तो।
- यह परम्परा विकसित की जानी चाहिए कि कोई भी काम चलाऊ सरकार प्रमुख नीतिगत निर्णय न ले।
- यदि कोई पराजित मंत्रिमण्डल काम चलाऊ सरकार के रूप में कार्य नहीं करना चाहता तो राज्यपाल को विधानसभा भंग किए बिना राज्य में राष्ट्रगत शासन की सिफारिश करनी चाहिए।
- किसी राष्ट्रीय संकट या राज्य भर में उपद्रवों की स्थिति में शीघ्र चुनाव कराना संभव न हो तो लम्बी अवधि के लिए भी काम चलाऊ सरकार बनाई जा सकती है जो अगले चुनाव तक कार्य करती रहे।
- यदि विधानसभा के पांच वर्ष पूरे नहीं हुए हैं तथा नए चुनाव कराने आवश्यक जान पड़ते हों तो राज्यपाल विधानसभा को भंग किए बिना अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करें।
- विधानसभा तथा विधान परिषद् में नामांकन करने के क्रम में राज्यपाल के पास कोई स्वविवेकाधीन शक्ति नहीं है। यदि नामांकन के समय न तो कोई मंत्रिमण्डल गठित किया गया हो, न ही उसने त्यागपत्र दिया हो और न ही उसने विधानसभा में बहुमत खोया हो तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल को नया मंत्रिमण्डल गठित होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।
- जहां राज्य विश्वविद्यालय अनियमों के अंतर्गत राज्यपाल को कुलाधिपति बनाया हुआ है तथा उसे ऐसे कर्त्तव्य प्रदान किए गए हैं जो अनुच्छेद 163(1) के अंतर्गत यह आवश्यक नहीं है कि राज्यपाल हमेशा मंत्रिमण्डल की सलाह पर की कार्य करे लेकिन सामान्यतः मंत्रियों के परामर्श करके निर्णय लेना हितकर ही रहेगा।

घ. विधेयकों की स्वीकृति (Acceptance of Bills)

- अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल के पास विधेयक स्वीकृति हेतु आते हैं उन विधेयकों पर कार्यवाही करते समय राज्यपाल को मंत्रिमण्डल की सलाह को ध्यान में रखना चाहिए। केवल व्यक्तिगत रूप से नापसंदगी रखना उचित नहीं है;
- केवल कुछ विषयों जैसे अनुच्छेद 31 (क) (1) तथा 31 (ग) के अनुसार अनुच्छेद–14 एवं 19 को लागू होने से उन्मुक्ति के क्रम में, अनुच्छेद 254 (2) के क्रम में समवर्ती विषय पर केन्द्रीय कानून से असंगतता, संघीय विधि के अधीन स्थापित प्राधिकरण द्वारा एकत्रित, उत्पादित, वितरित, या विक्रित पानी या विद्युत पर कर लगाने सम्बन्धी तथा अनुच्छेद 288 (2) की वैधता सुनिश्चित करने एवं वाणिज्य तथा व्यापार पर प्रतिबंध के प्रकरण जिन पर राष्ट्रपति के पूर्वानुमति आवश्यक हो इत्यादि से संबंधित विधेयक राष्ट्रपति हेतु आरक्षित करने चाहिए।
- जब मंत्रिमण्डल स्वयं यह सिफारिश कर रहा हो कि अमुक विधेयक राष्ट्रपति के लिए आरक्षित किया जाए तो राज्यपाल को तुरंत ऐसा करना चाहिए यदि राज्यपाल समझता है कि वह स्वयं कोई कार्यवाही कर सकता है। (विशेषाधिकार) तो एक माह के भीतर ऐसा करे।
- राज्य में किसी विधेयक के बारे में भेजा जाने वाला पत्र स्वतः पूर्ण होना चाहिए जिसमें सभी वास्तविक व्ययों, मुद्दों और आधारों का संक्षिप्त उल्लेख हो। इसमें संविधान के संगत उपबंध भी वर्णित किए जाने चाहिए।

- अनुच्छेद 254 (2) के अधीन भेजे जाने वाले पत्र में स्पष्ट रूप से संघी विधि या किसी अन्य विधि (संगत) जिसमें प्रकरण असंगत या प्रतिकूल बताया गया है, वर्णित की जानी चाहिए।
- राष्ट्रपति द्वारा ऐसे विधेयकों (जो उसके पास राज्य से आएँ) पर चार माह में विचार कर निपटारा करना चाहिए।
- यदि राज्य सरकार से ऐसे विधेयक पर (अनुच्छेद–20) पुनर्विचार करवाना हो तो यह कार्यवाही संघ सरकार द्वारा 2 माह के भीतर की जानी चाहिए।
- संघ द्वारा बार–बार स्पष्टीकरण मांगने की बजाए एक ही पत्र में सम्पूर्ण तथ्य इंगित कर देने चाहिए।
- अनुच्छेद 201 के परन्तुक के अधीन राज्य से स्पीष्टीकरण प्राप्त होने या पुनर्विचारित विधेयक प्राप्त होने के 4 माह के भीतर मामला निपटाया जाए।
- यह आवश्यक नहीं है कि उपर्युक्त वर्णित समय–सीमाएं संविधान में सम्मिलित की जाएं।
- राष्ट्रपति की मंजूरी सामान्यतः इस आधार पर नहीं रोकी जानी चाहिए कि संघ सरकार उसी विषय पर भविष्य में एक व्यापक कानून बनाने का विचार कर रही है।
- मूल अधिकारों को कम करने तथा राज्य की संवैधानिक व्यवस्था को हानि पहुंचाने वाले विधेयकों को संघ सरकार अनुच्छेद 355 के अनुसरण में राष्ट्रपति को मंजूरी देने से मना कर सकती है।
- यदि संघ सरकार ऐसा समझती है कि किसी एक राज्य के विधेयक के कानून बनने से पूर्व कुछ संशोधन आवश्यक हैं तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 201 के परन्तुक (क) के अनुसार उस विधेयक को राज्यपाल के माध्यम से सुझाए गए संशोधनों का उल्लेख करते हुए एक उपयुक्त संदेश के साथ राज्य को पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है। जब संवैधानिक उपाय किए जा सकते हों तो तथाकथित 'सशर्त मंजूरी' प्राप्त करने की परम्परा का अनुसरण न किया जाए।
- संघ सरकार द्वारा किसी विधेयक को मंजूरी न देने का कारण राज्य सरकार को बताया जाना चाहिए।
- राज्य सरकारों द्वारा अध्यादेशों को विधानमंडल में प्रस्तुत करके अधिनियम पारित करना चाहिए न कि यंत्रवत बार–बार पुनर्प्रख्यापित करने की गलत परम्परा का पालन हो।
- अध्यादेशों को पुनर्प्रख्यापित करने का निर्णय आपातकालीन परिस्थितियों में मंत्रिमण्डल के द्वारा होना चाहिए।
- राष्ट्रपति का किसी अध्यादेश को प्रथम बार पुनर्प्रख्यापित करने से नहीं रोकना चाहिए यदि वह वैधानिक है किन्तु कोई राज्य सरकार यह तर्क प्रस्तुत न करे कि विधेयक के रूप में प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था। इस प्रकार की स्थिति दूसरी बार आने पर राज्य विधानमंडल द्वारा व्यवस्था (विधेयक बनाना) की जानी चाहिए।
- अनुच्छेद–213(1) के परन्तुक के अधीन अध्यादेशों का राष्ट्रपति द्वारा निपटारा 15 दिन के अन्दर कर देना चाहिए।

ड. अनुच्छेद 356 के प्रावधान (Provisions of Article 356)

- इस अनुच्छेद का प्रयोग बहुत कम तथा अंतिम विकल्प के रूप में किया जाना चाहिए जब तक कि अन्य तरीकों से संवैधानिक तंत्र को भंग होने से रोका न जा सके या स्थिति में सुधार न किया जा सके।

- राज्य स्तर पर अनुच्छेद–356 का सहारा लेने से पूर्व यथासंभव अन्य प्रयास किए जाएं।
- तत्काल कार्यवाही करने से पूर्व राज्य सरकार को स्पष्ट चेतावनी दी जानी चाहिए तथा अनुच्छेद–356 के अधीन कार्यवाही से पूर्व राज्य सरकार के स्पष्टीकरण पर विचार किया जाए।
- बाहरी आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ी के समय किसी राज्य का कार्य ठप्प होने पर अनुच्छेद–355 के अधीन केन्द्र सरकार को वैकल्पिक उपायों का प्रयोग करना चाहिए।
- राजनीतिक शासन भंग होने पर भी सभी विकल्पों पर गंभीरतापूर्वक विचार एवं सार्थक प्रयास करने के पश्चात् ही अनुच्छेद–356 का सहारा लिया जाए।
- राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाए तथा संसद में विचार किए बिना विधानसभा भंग नहीं करनी चाहिए।
- राष्ट्रपति शासन की उद्घोषणा विधानसभा भंग किए बिना ही की जा सकती है।
- राज्यपाल की रिपोर्ट, जिसके आधार पर अनुच्छेद–356 के अधीन उद्घोषणा की गई है, को पूर्ण रूप से प्रचार माध्यमों द्वारा जनसाधारण तक पंहुचाया जाए।
- सामान्यतः किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा राज्यपाल की रिपोर्ट पर ही की जानी चाहिए।

च. अन्य सुझाव (Other Suggestions)

- राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को तदर्थ या पाक्षिक रिपोर्ट भेजते समय मुख्यमंत्री को विश्वास में लेना चाहिए जब तक कि इसके विपरीत कोई विशेष कारण न हो।
- अनुच्छेद–163 में किए गए राज्यपाल की स्वविवेकाधिकार शक्तियां यथावत् रहनी चाहिए।
- जब किसी मुद्दे पर राज्यपाल को लगे कि मंत्रिमण्डल की सलाह का पालन उसके लिए संवैधानिक दृष्टि से अनुचित है तो उसे स्वविवेकाधिकार शक्तियों का प्रयोग करने से पूर्व मंत्रिमण्डल को राजी करना चाहिए।
- महाराष्ट्र, गुजरात, नागालैण्ड, मणिपुर, सिक्किम तथा अरूणाचल प्रदेश के राज्यपालों को सौंपे गए विशिष्ट कार्यों की सम्पूर्ति हेतु उन्हें मंत्रिमण्डल की सलाह मानने की बाध्यता नहीं है फिर भी राज्य प्रशासन से जुड़े विषयों पर मंत्री से सलाह करना हितकर है।
- यह न तो व्यावहारिक होगा और न ही वांछनीय कि राज्यपाल की स्वविवेकाधीन शक्तियों के क्रम में मार्ग निर्देशनों का निर्माण किया जाए।

दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग की सिफारिशें (Recommendations of the Second A.R.C.)

भारत सरकार के प्रशासनिक सुधार एवं लोक शिकायत विभाग द्वारा अगस्त, 2005 में कर्नाटक के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और वरिष्ठ कांग्रेसी नेता वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया। आयोग को निम्नलिखित विषय सौंपे गए :–

- भारत सरकार की संगठनात्मक संरचना
- प्रशासन में आचार नियम
- कार्मिक प्रशासन का पुनर्नवीकरण

- वित्तिय प्रबंधन प्रणालियों को मजबूत बनाना
- राज्य स्तर पर प्रभावी प्रशासन को सुनिश्चित करने के उपाय
- प्रभावी जिला प्रशासन को सुनिश्चित करने के उपाय
- स्थानीय स्वशासन
- सामाजिक पूंजी, न्यास एवं भागीदारीपूर्ण जनसेवा आपूर्ति
- नागरिक केंद्रित प्रशासन
- ई–प्रशासन को प्रोत्साहन
- संघीय राज व्यवस्था के मुद्दे
- संकट प्रबंधन
- सार्वजनिक व्यवस्था

सूचना का अधिकार के संबंध में (In Relation to Right to Information)

- राजकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923 को निरस्त कर देना चाहिए क्योंकि समाज में पारदर्शिता बनाये रखने की दृष्टि से यह बाधक है।
- आर॰टी॰आई॰ के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सार्वजनिक अभिलेखों को पूर्णतः पुनर्गठित किया जाना चाहिए। प्रत्येक राज्य में सभी अभिलेखों की निगरानी के लिए एक कार्यालय की स्थापना की जानी चाहिए। अभिलेखों एवं भवन आधार संरचना को अद्यतन बनाए रखने के लिए सभी सरकारी कार्यक्रमों के आवंटित निधियों के एक प्रतिशत को पांच वर्षों के लिए खर्च किया जाना चाहिए।
- सूचना आयोग के कम से कम आधे सदस्यों को गैर लोक सेवा पृष्ठभूमि के व्यक्तियों में से चयनित किया जाना चाहिए। इस प्रकार ये सदस्य समाज में विविधता और अनुभव का प्रतिनिधित्व करेंगे।
- सूचना आयोग को सभी सार्वजनिक प्राधिकरणों में सूचना अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन की निगरानी का दायित्व सौंपना चाहिए। इस प्रयोजन के लिए स्पष्ट दिशा–निर्देश निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि अधिनियम के अधीन आने वाली गैर–सरकारी संस्थाओं की पहचान की जा सके।
- सूचना के लिए अधिकांश आवेदन शिकायतों के निपटान हेतु किए जाते हैं। राज्यों को विलंब, हतोत्साहन और भ्रष्टाचार की शिकायतों से निबटने के लिए स्वतंत्र सार्वजनिक प्राधिकरणों की स्थापना का परामर्श दिया जा सकता है।
- सभी स्तरों पर विधायिका और न्यायपालिका में सूचना अधिकार अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु एक मार्ग निर्देशक खाका तैयार किया जा सकता है।
- फाइलें और टिप्पणियाँ गोपनीय नहीं होती हैं। इसलिए इन तक जनता की पहुँच सुनिश्चित की जानी चाहिए, जब तक कि सूचना अधिकार अधिनियम के अधीन ऐसी फाइलों या टिप्पणियों को सूचना अधिकार के दायरे से बाहर न रखा गया हो।
- मैनुअल ऑफ ऑफिस प्रोसिजर के पैरा 118(1) को समाप्त कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि सूचना अधिकार अधिनियम का पूर्णतः उल्लंघन करता है। सचिवालय में मौजूद अधिकारियों व कर्मचारियों की दृष्टि में फाइल टिप्पणियों को भी वर्तमान में नियम–पुस्तिका के आधार पर गोपनीय माना जाता है।

लोक व्यवस्था के संबंध में (In Relation to Public Order)

- आयोग द्वारा विवादास्पद सशस्त्र बल विशेष शक्ति अधिनियम, 1958 को निरस्त करने की सिफारिश की गई है क्योंकि यह अधिनियम उत्तर–पूर्व राज्यों के लोगों के बीच में भेद–भाव और अलगाव की भावना पैदा करता है। उत्तर–पूर्वी राज्यों में केन्द्र के सशस्त्र बलों की तैनाती के लिए एक समर्थ विधायन उपलब्ध कराने के लिए गैर–कानूनी गतिविधि निवारण अधिनियम, 1967 में एक नया अध्याय जोड़ा जाना चाहिए।
- आयोग द्वारा सुशासन के लिए एक समावेशी आगम में निहित नीति–निर्माण एवं आपराधिक न्याय के एक नवीन सिद्धांत का समर्थन किया गया है।
- राज्यों में केन्द्रीय बलों की तैनाती के एक अन्य मुद्दे पर अपनी सिफारिश में आयोग ने कहा है कि केन्द्र सरकार को राज्यों में अपने बलों की तैनाती के लिए एक कानून का निर्माण करना चाहिए और इसके द्वारा इन बलों की प्रमुख लोक व्यवस्था समस्याओं के संबंध में निर्देश देने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए ताकि किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र के विखण्डन की दिशा में ले जाने वाली समस्याओं से निबटा जा सके। फिर भी इस प्रकार की तैनाती उसी स्थिति में की जानी चाहिए जब कोई राज्य अनुच्छेद 256 के अधीन संघ द्वारा जारी एक निर्देश के अनुसार कार्य करने में असफल रहा हो। इस प्रकार की सभी तैनातियां अस्थायी अवधि के लिए की जानी चाहिए। संसद द्वारा मंजूरी के बाद ही इन्हें अगले तीन महीनों के लिए बढ़ाया जा सकता है।
- आपराधिक जांच को अन्य पुलिस कार्यों से पृथक करने का समर्थन करते हुए आयोग ने सिफारिश की है कि प्रत्येक राज्य में एक आपराधिक जांच एजेंसी का गठन किया जाए। पुलिस को आवश्यक स्वायत्ता उपलब्ध कराने के लिए एक राज्य स्तरीय पुलिस कार्य निष्पादन एवं जवाबदेही आयोग स्थापित किया जाना चाहिए।
- कानून एवं व्यवस्था पुलिस के मुखिया तथा आपराधिक जांच एजेन्सी के मुखिया का कार्यकाल कम से कम 3 वर्षों का होना चाहिए।
- पुलिस में महिलाओं के प्रतिनिधित्व तथा समाज के अन्य अल्पप्रतिनिधित्व प्राप्त वर्गों के संबंध में आयोग के अनुसार सकारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए और पुलिस बल में महिलाओं का 33 प्रतिशत प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- हिंसा भड़काने के लिए दोषी पाए गए संगठनों एवं व्यक्तियों को अनुकरणीय क्षतियों का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी बनाया जाना चाहिए। ऐसी क्षतिपूर्ति को इस प्रकार की हिंसा के कारण होने वाली हानि के उचित अनुपात में होना चाहिए।
- सेक्शन 153(ए) के अधीन अभियोजन के लिए केन्द्र या राज्य की मंजूरी अनिवार्य नहीं होनी चाहिए और इसी के अनुरूप आपराधिक प्रक्रिया संहिता के सेक्शन 196 को संशोधित किया जाना चाहिए।

प्रशासन में आचार नियमों के संबंध में (Regarding the Rules of Conduct in Administration)

- आयोग ने एक राष्ट्रीय लोकपाल और राष्ट्रीय लोकायुक्त के गठन की सिफारिश की है जो कि सभी संघीय मंत्रियों एवं मुख्यमंत्रियों, संसद सदस्यों एवं अन्य लोकसेवकों को अपने जांच के दायरे में ले सकेगा। प्रधानमंत्री को इसके दायरे से बाहर रखा गया है।
- निर्वाचन एवं राजनीतिक क्षेत्रों में आयोग ने चुनाव के लिए आंशिक राज्य वित्तीयन, दल–बदल कानून में

कठोरता, मुख्य चुनाव आयुक्त एवं चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति के लिए एक नियुक्ति मंडल, मंत्रियों के लिए आचार संहिता तथा लाभ के पद को परिभाषित करने के लिए एक कानून इत्यादि सुझाव दिए।

- आयोग ने स्थानीय क्षेत्र विकास के लिए सांसदों एवं विधानसभा सदस्यों के लिए आवंटित वार्षिक निधियों की योजना को समाप्त करने की सिफारिश की है।
- आयोग ने राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना का प्रस्ताव किया है जो कि एक नियुक्तिमण्डल द्वारा न्यायधीशों की नियुक्ति पर निर्णय करेगी। इस नियुक्ति मंडल में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के प्रतिनिधि शामिल होंगे।
- आयोग ने प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक नियुक्तिमंडल गठित करने का सुझाव दिया है जिसमें लोकसभा अध्यक्ष तथा विपक्ष के नेता को भी शामिल किया जाएगा। यह नियुक्तिमंडल मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति करेगा।

स्थानीय प्रशासन के संबंध में (In Relation to Local Administration)

- आयोग ने स्थानीय लोकतंत्र के संवर्द्धन की सिफारिश की है। यह लोकतंत्र विकेन्द्रीकरण से अधिक है और इसके अंतर्गत स्वशासित संस्थाओं के रूप में स्थानीय निकायों के निर्माण की अपेक्षा की गई है।
- आयोग द्वारा यह सिफारिश की गयी है कि सरकार दक्षिण अफ्रीकी अधिनियम के अनुरूप स्थानीय निकायों के लिए एक ढांचागत कानून संसद के समक्ष रखेगी ताकि स्थानीय निकायों के लिए शक्तियों के अन्तरण, उत्तरदायित्व एवं कार्यों के व्यापक सिद्धातों का खाका तैयार किया जा सके।
- जिला स्तर पर लोकतांत्रिक सरकार का एक तीसरा स्तर वर्तमान प्रणाली, जोकि एक उपनिवेशीय विरासत है, को प्रतिस्थापित करेगा। जिलों में एक जिला परिषद् का गठन किया जाएगा जिसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। जिलाधिकारी इस परिषद् के मुख्य सचिव के रूप में कार्य करेंगे और राज्य सरकार को रिपोर्ट करेंगे।
- संसद को प्रत्येक राज्य में एक विधायी परिषद् के गठन हेतु उपबंध बनाने चाहिए। इस परिषद् में स्थानीय निकायों द्वारा निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे ताकि स्थानीय निकायों की आवाज को मजबूत किया जा सके।
- निर्वाचन प्रक्रिया को सुधारने के लिए निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन एवं आरक्षण कार्य राज्य निर्वाचन आयोग को सौंपा जाना चाहिए।
- स्थानीय निकायों की वित्तीय दशा को सुधारने के लिए यह सिफारिश की गयी है कि एक राज्य वित्त आयोग का गठन इस प्रकार से किया जाए कि यह केन्द्रीय वित्त आयोग की सिफारिशों को संज्ञान में ले सके।

अन्य प्रयास (Other Efforts)

भारतीय प्रशासन में अनेक बुद्धिजीवी तथा चिन्तनशील लोक सेवकों द्वारा सरकार को प्रशासनिक सुधारों के क्रम में सुझाव दिए जाते रहे हैं। सन् 1952 में आर॰ए॰ गोपालास्वामी ने मंत्रिमण्डल सचिव को 'कार्यकुशलता वृद्धि हेतु एक मेमोरेन्डम' प्रस्तुत किया था जिसमें ओ॰ एण्ड एम॰ व्यवस्था का सुझाव था। सन् 1954 में अशोक चन्दा ने लोक सेवाओं में संवृद्धि हेतु नई अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना तथा सत्ता के प्रत्यायोजन के क्रम में एक टिप्पणी सरकार को प्रस्तुत की थी। इसी प्रकार वर्ष 1975 में एल॰पी॰ सिंह तथा एल॰के॰झा॰ ने 'प्रशासन में कार्यकुशलता वृद्धि' पर एक सुझावात्मक दस्तावेज भारत सरकार को दिया था।

गैर सरकारी तथा स्वंयसेवी संगठनों ने भी प्रशासनिक सुधारों में महती भूमिका निभाई है। राजनीति दल, दबाव समूह, मीडिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी प्रशासनिक सुधारों में सहायक रहे हैं। सन् 1974 में जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रजातंत्र के लिए नागरिक (Citizens for Democracy) आन्दोलन चलाया गया था जिसमें प्रशासन को ईमानदार तथा स्वच्छ एवं प्रजातंत्र को शक्तिशाली बनाने में जनता का सहयोग मांगा गया था। निसंदेह ऐसे आन्दोलनों से कतिपय लोक सेवक प्रेरणा पाकर निजी स्तर पर प्रयास करने के उत्सुक होते हैं। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी॰एन॰ शेषन, सामाजिक कार्यकर्त्ता अन्ना हजारे, कॉमन काज संस्था के एच॰डी॰ शौरी इत्यादि प्रेरक का कार्य करते हैं।

राज्य सरकारों द्वारा प्रशासनिक सुधार (Administrative Reforms by State Governments)

भारत में केन्द्रीय स्तर पर भारत सरकार की विभिन्न समितियों एवं आयोगों की अनुशंसाओं पर होने वाले सुधार केन्द्रीय सचिवालय एवं इसकी संस्थाओं पर लागू होते हैं। राज्य सरकारें भी अपने कार्य क्षेत्र में स्थित प्रशासनिक तंत्र में समयानुकूल परिवर्तन करती रही हैं। केरल प्रशासनिक सुधार आयोग (1958), आन्ध्रप्रदेश प्रशासनिक सुधार समिति (1960), राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (1963), राजस्थान राज्य प्रशासनिक सुधार समिति (1999–2002), पश्चिमी बंगाल प्रशासनिक सुधार समिति (1963), त्रिपुरा प्रशासनिक सुधार समिति (1998–99 तरूण दत्त कमेटी) इत्यादि कुछ उदाहरण हैं। राज्यों में भी विभिन्न विभागों की समस्याओं से संबंधित विशेषज्ञ (विभागीय), समितियाँ समय–समय पर प्रतिवेदन देती रही हैं जैसे :– उत्तर प्रदेश के राजस्व विभाग द्वारा गठित 'जिला स्तरीय प्रशासन समिति' (1985) एवं राजस्थान नर्सिंग सेवा पुनर्गठन समिति इत्यादि।

सन् 1995 में भारत सरकार द्वारा गठित वोहरा समिति की रिपोर्ट ने राजनेताओं अधिकारियों तथा अपराधियों के गठबंधन तथा भ्रष्टाचार के क्रम में अत्यंत चिंताजनक तथ्य सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार सन् 1998 में पी॰ जैन आयोग ने अव्यावहारिक तथा निर्थक प्रशासनिक कानूनों को तुरंत समाप्त करने की अनुशंसा की है। निसंदेह वर्तमान खुली अर्थव्यवस्था के दौर में भारतीय प्रशासन में तत्काल सुधार आवश्यक हैं। 'नागरिक अधिकार पत्र' तथा 'सूचना का अधिकार' की दिशा में हो रहे प्रयास शुभ लक्षण कहे जा सकते हैं।

हरियाणा प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (Haryana First Administrative Reforms Commission)

हरियाणा सरकार द्वारा हरियाणा राज्य के प्रशासनिक ढांचे और प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं की जांच करने के लिए तथा इसे अधिक प्रभावी और उत्तरदायी बनाने के लिए हरियाणा सरकार द्वारा 19 नवंबर, 2007 को एक राजपत्र अधिसूचना के माध्यम से हरियाणा सरकार द्वारा प्रथम हरियाणा प्रशासनिक सुधार आयोग का गठन किया गया था।

आयोग की संरचना (Organization of Commission)

हरियाणा प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग में एक अध्यक्ष और दो अन्य सदस्य (सेवानिवृत्त IAS) व एक सदस्य सचिव होता है जो विशेष सचिव स्तर के अधिकारी होता है। अध्यक्ष का दर्जा सभी अधिकारों के लिए राज्य सरकार में एक कैबिनेट रैंक मंत्री के बराबर का होता है। आयोग का अपना सचिवालय होता है जिसमें एक सदस्य सचिव, अवर सचिव, अधीक्षक और अन्य सहायक होते हैं। एक सेवानिवृत्त आईएएस आयोग की सहायता में पूर्णकालिक विशेषज्ञ के रूप में कार्य करता है। आयोग का मुख्यालय चंडीगढ़ और दिल्ली में शिविर कार्यालय है। आयोग अपनी पहली बैठक के दो साल की अवधि के भीतर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। आयोग ने पदाधिकारियों का विश्लेषण करने और सुधारों के तरीकों में आवश्यक परिवर्तनों के बारे में अपना आंकलन करने के लिए जिला प्रशासन के स्तर पर एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की।

अनुशंसाएँ (Recommendations)

आयोग ने अपने विचारार्थ विषय के अंतर्गत उठाये गए मुद्दों की गहराई से जांच व् समीक्षा करने के उपरांत जो सिफारिश की उस में से कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं:–

जिला प्रशासन के संरचनात्मक और संस्थागत पहलुओं में सुधार से संबंधित सिफारिशें।

- राजस्व प्रशासन सहित जिला स्तर तक प्रशासनिक इकाइयों का पुनर्गठन।
- विकास खंड़ों या अन्य सरकारी विभाग और एजेंसियों का पुनर्गठन करना।
- सड़क दुर्घटनाओं और उनकी मौतों को कम करने के लिए जिला पुलिस को यातायात पुलिस की स्थापना को अलग करने की आवश्यकता है। क्योंकि ट्रैफिक पुलिस कर्मियों को प्राथमिक उपचार, संचालन स्ट्रेचर, एम्बुलेंस, अग्निशमन और अग्निशमन कौशल जैसी बहु–कुशल क्षमताओं में प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है, ताकि वे आपातकालीन स्थितियों में यातायात नियंत्रण की अपनी सामान्य भूमिका के अलावा, सहायता के लिए अधिकतम भूमिका निभा सकें। प्रत्येक जिले में लगभग 200 से 250 ऐसे बहु कौशल प्रशिक्षित कांस्टेबल होने चाहिए।
- राज्य के स्तर पर एक एकीकृत आपदा प्रबंधन बल बनाया जाना चाहिए, जिसका नेतृत्व महानिदेशक/अतिरिक्त महानिदेशक रैंक के पुलिस अधिकारी करेंगे। इस एकीकृत बल को कार्य विशेष रूप से जिम्मेदारियों का पालन करने के लिए अनिवार्य किया जाना चाहिए जो इस प्रकार है;
    - यह अवस्थिति के हिसाब से व्यापक आपदा प्रबंधन योजना और तत्परता गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी को तैयार रहेगा।
    - इसे विशिष्ट पूर्व निर्धारित स्वयंसेवकों को नामांकित करना चाहिए तथा उन्हें आपातकालीन स्थितियों के लिए ठीक से प्रशिक्षित करना चाहिए।
    - इसे संसाधनों के प्रारूपण की एक संपूर्ण योजना तैयार करनी चाहिए।
- सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के लिए डीडीपीओ को छाता अधिकारी के रूप में नामित करना – डीडीपीओ के मौजूदा पद को पदेन उप निदेशक सामाजिक कल्याण या इसके अलावा किसी भी उपयुक्त पदनाम के रूप में नामित किया जाना चाहिए और उन्हें डीसी के कार्यालय के भीतर छाता संस्था के रूप में कार्य करना चाहिए और पेंशन की सभी श्रेणियों की निगरानी सहित कल्याणकारी उपायों से संबंधित सेवाओं का ध्यान रखना चाहिए।
- बेहतर समन्वय और अभिविन्यास के लिए विभाग और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का समूह बनाना – सभी विभिन्न विभागों के साथ केंद्रित समन्वय में आसानी के लिए और जिला स्तर पर संचालित सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के स्कोर, परिचालन, तालमेल के साथ विभागों के समूह का गठन किया जाना चाहिए और योजनाओं के सामंजस्यपूर्ण कार्यान्वयन के लिए एकीकृत योजना बनाई जानी चाहिए। ये सभी समूह/उप समूह समन्वयक जिला कलेक्टर की देखरेख में कार्य करेंगे।
- जिला स्तर तक के क्षेत्र में तैनात अधिकारी को एक उचित और निश्चित कार्यकाल प्रदान करना – सरकार को सभी जिला स्तर के अधिकारियों के लिए उचित कार्यकाल तय करना चाहिए। सरकार को इसे बिना किसी अस्पष्टता के प्रविष्टि आदेश में उल्लेख करके प्रदर्शित करना चाहिए। जब भी किसी अधिकारी को

उसके कार्यकाल से पहले जिले से स्थानांनतरित किया जाता है, तो फाइल पर पर्याप्त कारण दर्ज किए जाने चाहिए, जिसकी एक प्रति आरटीआई अधिनियम के तहत किसी भी सदस्य को उपलब्ध होनी चाहिए।

- जन शिकायतों के बेहतर समन्वय, निगरानी और निवारण के उद्देश्य से जिला स्तर पर प्रशासन के ढ़ांचे को मजबूत करना।
- पटवारियों पर कमान और नियंत्रण की व्यवस्था में उपयुक्त प्रतिनिधिमंडल –पटवारियों के पदस्थापन और स्थानांतरण/समायोजनकी शक्ति के साथ–साथ उनके खिलाफ कार्यवाही करने की क्षमता राज्य भर के उप–मंडल अधिकारी को सौंप दी जानी चाहिए तथा पटवारी की भर्ती व प्रशिक्षण को जिला कलेक्टर को वापस बहाल किया जाना चाहिए।
- प्रत्येक कार्यालय में मुलाकाती घंटे, सभा नहीं करने के दिन, कोई अपेक्षित दिशानिर्देश, तत्काल वरिष्ठ अधिकारी का टेलीफोन नंबर, शिकायत बॉक्स आदि के अनिवार्य प्रदर्शन का प्रावधान।
- राज्य के सभी न्यायालय परिसरों की निकटता में सभी आवश्यक आधुनिक सुविधाओं के साथ एक (कानूनी कार्यवाही की संस्था) अभियोजन ब्लॉक को तुरंत स्थापित किया जाना चाहिए और राजस्व न्यायालय का पुनर्गठन किया जाना चाहिए।

जिला प्रशासन का सुधार, परिचालन और सेवाओं के पहलुओं का वितरण सुधार से संबंधित सिफारिशें :

- जिला योजना और प्रबंधन परिषद् : वर्तमान सार्वजनिक संबंध और शिकायत समिति को बंद कर दिया जाना चाहिए और दो अलग–अलग समितियों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए, जिनमें से एक जिला योजना और प्रबंधन परिषद् है। जिले में सरकार द्वारा प्रदत सेवाओं की देखरेख सर्वोच्च कार्यकारी परिषद् करती है, जिला स्तर से संबंधित स्थानीय परियोजनाओं के लिए पूर्व निर्धारित सीमा, प्रशासनिक स्वीकृत्ति/अधिकृत पुनः विनियोजन करने की क्षमता होनी चाहिए। इस समिति की प्रत्येक बैठक में तीनों समूहों के समन्वयक अपनी प्राथमिकताओं, उपलब्धियों, भविष्य की कार्य योजना, लक्ष्य आदि की पूर्ण और व्यापक स्थिति रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे।
- शिकायत निवारण निगरानी प्रणाली : प्रत्येक विभाग/सार्वजनिक उपक्रमों को शिकायत निवारण निगरानी प्रणाली स्थापित करनी चाहिए। जिले के किसी विभाग/सार्वजनिक क्षेत्र के प्रत्येक सार्वजनिक कार्यालय में एक अलग शिकायत रजिस्टर का उल्लेख किया जाना चाहिए, यदि शिकायतकर्त्ता की संतुष्टि के हिसाब से शिकायत/कारण दर्ज नहीं किया जाता है तो वह निर्धारित समय के अंदर अपीलीय मंच से संपर्क कर सकता है।
- शिकायत निवारण अपीलीय मंच : दिल्ली सरकार ने स्थानीय निकाय, स्वायत मानदण्ड संगठन या दिल्ली सरकार द्वारा नियंत्रण जैसे पूरी तरह से स्वामित्य वाली एनसीटी दिल्ली सरकार के विभाग के खिलाफ जनता की शिकायतों के निवारण के लिए एक व्यापक तंत्र प्रदान करने के उद्देश्य से एक लोक शिकायत आयोग की स्थापना की है। समान विशेषाधिकार और जनादेश वाले एक समान निकाय को हरियाणा में कानून के माध्यम से स्थापित किया जाना चाहिए।
- भूमि अभिलेखों का कम्प्यूटरीकरण : भूमि अभिलेखों को डिजिटल और आनलाइन लागू करने की संपूर्ण प्रणाली को बनाए रखने और अद्यतन करने की एकीकृत प्रणाली को लागू करने के लिए आईटी विभाग को पूरी परियोजना के कम्प्यूटरीकरण की जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।

- जिला स्तर पर आपराधिक मामलों के अभियोजन के लिए स्थायी समन्वय और निगरानी समिति–जिला स्तर पर सुरक्षा जांच, अभियोजन, कानून व व्यवस्था की निगरानी और आपराधिक मामलों के अभियोजन को देखने के लिए एक अलग निगरानी समिति होनी चाहिए।

- कस्बों में निजी क्षेत्र में सार्वजनिक परिवहन प्रणाली 200000 से अधिक आबादी वाले कस्बों को पूर्व निर्धारित मानदण्ड़ों, प्रदूषण के मानदण्ड़ों, पूर्व निर्धारित स्टॉप, वाहन की उम्र, आने जाने वाले मार्ग व किराए के साथ एक विनियमित सार्वजनिक परिवहन सुविधा की आवश्यकता होती है।

- फोन वेबसाइट या कियोस्क के माध्यम से जनता से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी का प्रसार करना।

- प्रत्येक जिला मुख्यालय के लिए एक अच्छा मॉडल स्कूल – मॉडल स्कूल जैसी एक सभ्य शिक्षा सुविधा का प्रबंधन प्रत्येक जिला मुख्यालय में किया जाना चाहिए, जिसके प्रबंधन में डीसी की अध्यक्षता में एक निकाय निहित हो।

- सांप्रदायिक गड़बड़ी और जातियों के दंगों के मामलों में संयुक्त रूप से जिम्मेदार होने के लिए डीसी और एसपी–सांप्रदायिक गड़बड़ी या जातिगत दंगों की स्थिति में, डीसी और एसपी को संयुक्त रूप से जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए और यदि जांच में वे शिथिल पाए गए हो तो उनके खिलाफ अनिवार्य उचित कार्यवाई की जानी चाहिए।

- विभिन्न प्रमाणपत्रों के सत्यापन का प्रत्यायोजन : जिला अधिकारी को स्व–प्रमाण पत्र, सार्वजनिक नोटरी की पुष्टि, अधिवास और जाति का प्रमाण पत्र जैसे विभिन्न दस्तावेजों के सत्यापन के अनावश्यक कार्य के मुक्त कर इन्हें पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों को सौंपा जाना चाहिए।

- सरकारी कर्मचारी के अनुचित उत्पीड़न की शिकायत को संबोधित करने और मध्यस्थता करने के लिए एक स्वतंत्र मंच होना चाहिए।

- साइबर अपराध और आर्थिक अपराध के लिए :
    - इस तरह के मामलों की जांच के लिए साइबर और आर्थिक अपराध मामलों के लिए एक अलग विंग व विशेष अदालत होनी चाहिए।
    - मामले को तोड़ने और सबूत जोड़ने के लिए निजी विशेषज्ञ एजेंसियों का एक पैनल होना चाहिए।

- आदतन अपराधियों द्वारा उत्पन्न समाज के लिए खतरे को संबोधित करना–आदतन अपराधियों की समस्याओं को प्रभावी ढंग से संभालने के लिए विशेष प्रावधान की आवश्यकता है।

- सरकार में समूह 'सी' रोजगार के लिए एकीकृत प्रवेश स्तर की योग्यता–समूह सी पदों पर सरकारी एजेंसियों में सभी मंत्रिस्तरीय समावेशन के लिए एक समान बहु कुशल योग्यता को नया स्वरूप देने की आवश्यकता है। इसमें कम्प्यूटर साक्षरता में बुनियादी दक्षता शामिल होनी चाहिए।

4.5 सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ (Generalist and Specialists Controversy)

किसी भी देश में प्रशासन को अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के कार्मिकों की आवश्यकता होती है। कार्मिकों में आवश्यक ज्ञान दक्षता तथा गुण होना चाहिए जिससे वह विविध प्रशासनिक दायित्वों को पूरा कर सके। प्रशासन में क्षैतिज तथा लम्बवत् विभाजन होता है। क्षैतिज विभाजन क्षेत्रीय या प्रादेशीय स्तर पर किया

जाता है जहां पर कार्मिक अवस्थित है। दूसरी तरफ लम्बवत् विभाजन कार्य या दायित्वों के आधार पर किया जाता है जो कर्मचारियों या उनके समूहों को सौंपा गया है। लम्बवत् विभाजन सामान्यक एवं विशेषज्ञ श्रेणी के अंतर्गत आता है। यह सब श्रेणी के अंतर्गत विधिवत रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। सरकार में प्रशासनिक अधिकारियों के वर्गीकरण या प्रवर्गीकरण का मौलिक आधार केवल कार्य या दायित्व है। इस इकाई में हम सामान्यकों एवं विशेषज्ञों के कार्य, उनके संबंधों की प्रकृति एवं प्रशासन पर इसके प्रभाव की विवेचना करेंगे। इसके साथ ही इनके संबंधों में सुधार के लिये प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा दिये गये सुझावों की भी विवेचना करेंगे। इसकी शुरूआत ब्रिटिश नॉर्थकोट ट्रेवलियान समिति, 1854 की रिपोर्ट में देखने को मिलता है।

सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ–अर्थ (Meaning of Generalist and Specialist)

विशेषज्ञ वह सिविल कर्मचारी है जो अपने शिक्षा एवं अनुभव से प्रशासन के किसी विशेष विषय में दक्षता प्राप्त की हो। इसके अंतर्गत स्वास्थ्य चिकित्सक, अभियंता तथा वैज्ञानिक आदि आते हैं। प्रशासन में सामान्यकों का चयन उनके विश्वविद्यालय योग्यता के आधार पर होता है चाहे उन्होंने किसी भी विषय में शिक्षा प्राप्त की हो अर्थात् विशेषज्ञों के विपरीत सामान्यकों का चयन प्रत्यक्षतः एक निश्चित स्तर की शिक्षा प्राप्त करने पर, जिसमें आवश्यक रूप से उनके न्यूनतम स्तर के बौद्धिक एवं मानसिक विकास के स्तर का पता चलता हो, के आधार पर किया जाता है। प्रशासन में सामान्यकों का चयन इसलिए नहीं किया जाता है कि उन्होंने किसी विशेष क्षेत्र में दक्षत प्राप्त की है या किसी विशेष विषय में शिक्षा प्राप्त की है अथवा तत्संबंधी विभाग में प्रशिक्षण या अनुभव प्राप्त किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रशासन स्वतः सामान्यकों के विशेषीकरण की विषय वस्तु हो गया है।

नागरिक सेवा में प्रवेश के लिये सामान्यक को साहित्य, इतिहास या समाज शास्त्र अथवा भैतिक या जीव विज्ञान या गणित अथवा वाणिज्य या लेखा तथा प्राविधिक विषय जैसे :– अभियांत्रिकी या चिकित्सा में स्नातक (बी. ए., बी.एस.सी., बी.कॉम., बी.टेक. या एमबीबीएस उत्तीर्ण) होना चाहिए। स्नातक स्तर पर पढ़े गये विषय के आधार पर नागरिक सेवा हेतु उसे विशेषीकरण की आवश्यकता से अलग भी किया जा सकता है एवं उसे विशेष कार्य जैसे :– कृषि, स्वास्थ्य, समाज सेवा आदि किसी विशेष विभाग में पद स्थापना नहीं किया जा सकता। किसी विभाग में अथवा प्रादेशिक स्तर पर सामान्यक लोक सेवक के पदस्थापन हेतु उसके शिक्षा के विषय अथवा प्रशिक्षण या प्रशासकीय अनुभव से कोई संबंध नहीं होता है। प्रवियोगी परीक्षा द्वारा लोक सेवा में चयन हेतु सभी विषय के स्नातकों के लिये खुला है जैसे :– कला, समाज विज्ञान, वाणिज्य, अभियान्त्रिकी, तकनीकी शिक्षा आदि। किसी विभाग में या प्रादेशिक स्तर पर जैसे जिला अथवा संभाग (जिलों का समूह), या सचिवालय में पद प्राप्त करने के लिये ये योग्यताएं पर्याप्त हैं।

सामान्यज्ञ सामान्यतया पोस्डकोर्ब

POSDCORB (Planning) योजना, (Organising) संगठन (Supervising) पर्यवेक्षण, (Direction) निर्देशन, (Coordinating) समन्वय, (Reporting) प्रतिवेदन एवं (Budgeting) बजट निर्माण, का कार्य सम्पादित करता है।

किसी भी विभाग या सरकारी सचिवालय अथवा स्वायत्त संस्था में जैसे–जैसे हम उत्तरदायित्व के स्तर पर ऊपर जाते हैं, लिपिक से लेकर कार्यालय प्रभारी अधीक्षक तक एवं उससे भी ऊपर विभाग या मंत्रालय के सचिव तक, लोक सेवकों के कार्यों की प्रकृति सामान्यक प्रकार की होती चली जाती है। यहां तक कि तकनीकी अथवा कार्यात्मक विभाग में जैसे :– सिंचाई एवं उसकी क्षमता, कृषि, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग का सचिव तथा निष्पादन विभाग का अध्यक्ष नीति निर्माण, प्रशासनिक संस्था का नियंत्रण, निर्देशन, निरीक्षण, कर्मचारियों पर निंयत्रण क्षेत्र में संगठन के अंदर एवं बाहर संयोजन एवं लोक संपर्क का सामान्यक कार्य करता है। तकनीकी या कार्यात्मक विभाग में संबंधित विभाग की विषय वस्तु निर्विवाद रूप से पर्याप्त रूप में रहती है।

आधुनिक युग में प्रशासन का कार्य बहुआयामी एवं जटिल हो गया है। राज्य कानून एवं व्यवस्था कायम रखने तथा नियामकीय कार्यों में लगा हुआ है। आधारभूत उद्योगों की स्थापना एवं उनका संचालन जैसे :– इस्पात खान एवं हैवी इलेक्ट्रिकल इन दिनों राज्य के कार्य क्षेत्र में है। राज्य विकलांगों का कल्याण तथा निर्बल वृद्धों एवं बच्चों के स्वास्थ्य की भी देखभाल करता है। केवल इतना ही नहीं आणविक शक्ति का उत्पादन, वैज्ञानिक परीक्षण एवं उनका संचालन तथा तकनीक में नए अनुसंधानों को समाहित करना आधुनिक राज्य के लिये अनिवार्य है। भारत जैसे देश में, जहां जनसंख्या में किसानों की बहुलता है। ऊपर वर्णित कार्यों के अतिरिक्त राज्य उसे वित्तीय सहायता, तकनीकी एवं पूंजी का सहयोग भी दे रहा है। हमारे देश में साक्षरता का प्रतिशत काफी कम है। अतः ये सभी कार्य सरकार पर अत्याधिक उत्तरदायित्व बढ़ाते हैं। एक तरह से प्रशासन का कार्य बहुआयामी एवं जटिल हो चुका है। इस प्रकार की प्रवृत्ति पश्चिमी देशों में विशेषकर प्रथम विश्वयुद्ध के बाद दृष्टिगोचर हुई है एवं भारत में स्वतंत्रता के पश्चात्। लोक कल्याणकारी राज्यों में विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिये प्रशासन में विशेषज्ञों की नियुक्ति व्यापक पैमाने पर विभिन्न स्तरों पर अनेक विभाग एवं मंत्रालयों में हो रही है।

विशेषज्ञ वह व्यक्ति है जिसे किसी विशेष क्षेत्र में विशेष ज्ञान हो। प्रशासन में विशेषज्ञों के कार्यों को क्रमबद्ध करने के लिये उनकी नियुक्ति संवर्ग में होती है। जैसे :– लोक सेवाओं के समय यथा अभियांत्रिकी, चिकित्सा, सांख्यिकीय, कृषीय वैज्ञानिक, कम्प्यूटर वैज्ञानिक, इत्यादि। निरीक्षण अथवा निर्देशन स्तर पर समान्य प्रशासकों की संख्या में उतनी वृद्धि नहीं हुई है जितनी संख्या में उत्तरदायित्व के साथ विशेषज्ञों में हुई है। प्रत्येक लिपिक, टंकण, आशुलिपिक, लेखा लिपिक, आदि प्रत्येक सभी विभागों में प्रादेशिक स्तर पर नियुक्त किये जाते हैं। लेकिन वे एक प्रशासक का कार्य निरीक्षण, नियंत्रण, समन्वय एवं जन–सम्पर्क का कार्य नहीं करते हैं। अतः ये कर्मचारी या अधिकारी जो सामान्य रूप से दैनिक कार्यों में लगा हुआ है, उसे यहां पर सामान्यक एवं विशेषज्ञ की भूमिका से अलग रखा गया है।

विशेषज्ञों की पदस्थापना प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री अथवा नगर महापौर जैसे कि मुख्य कार्यपालक अधिकारी के रूप में भी विशेष प्रशासकीय सहायता एवं अनुसंधान के लिये होती है। स्टाफ अभिकरण में भी जैसे :– विभाग अथवा लोक उद्यम में विशेषज्ञ–यथा विधिवेत्ता अथवा सांख्यिकीय प्रशासक को सहयोग देता है।

सामान्यज्ञ एवं विशेषज्ञ के मध्य संबंध (Relationship between Generalist and Specialist)

कई कारणों से सामान्यकों एवं विशेषज्ञों के बीच का विवाद सामने आया है। प्रथम वे अलग–अलग पदसोपानों के अंतर्गत संगठित हैं जैसे विभिन्न स्तरों के बीच अधीक्षक अधीनता के संबंधों का समूह। अतः सामान्यक एवं विशेषज्ञ के बीच का सम्पर्क कट जाता है तथा वे एक दूसरे को ईर्ष्या एवं संकीर्ण भावना से देखते हैं। दूसरे, कुछ अपवादों को छोड़कर नीति निर्माण का दायित्व एवं प्रशासनिक संस्थाओं के प्रबंध का नियंत्रण उच्च स्तरों पर विशेषज्ञों के स्थान पर सामान्यकों को सौंपा गया है। तीसरे सामान्यक एक विभाग से दूसरे विभाग में एक ही प्रकार के कार्यों के लिए यथा लोक उद्यम में अथवा स्थानीय प्रशासन में बिना रोक–टोक के आता–जाता रहता है, जबकि दूसरी तरफ विशेषज्ञों का स्थानांतरण अथवा पदोन्नति उसके सम्बद्ध विभाग में ही होती है। इस प्रकार के विरोधाभास की स्थिति ने प्रत्यक्षः सामान्यकों में एक सर्वश्रेष्ठ प्रशासक होने का भाव पैदा कर दिया है जबकि दूसरी तरफ विशेषज्ञों में हीनता एवं उपेक्षा का भाव पैदा किया है। सरकारी विभागों में सचिव का पद, यहां तक कि अधिकांश निष्पादन विभाग में विभागाध्यक्ष का पद सामान्यकों के लिए आरक्षित रहता है। वेतन भी विशेषज्ञों की तुलना में सामान्यक अधिक पाता है। सामान्यकों के विशेषाधिकार की यह स्थिति विशेषज्ञों के आत्मसम्मान को ठेस पंहुचाती है जिसके परिणामस्वरूप उनमें नैतिकता एवं विश्वास की कमी हो जाती है।

सामान्यक एवं विशेषज्ञ निजी उद्योग–धंधों एवं व्यापार में भी कार्य करते हैं लेकिन लोक प्रशासन की भांति उनके संबंध कटुता एवं ईर्ष्या से भरे नहीं होते हैं क्योंकि निजी प्रशासन में सामान्यकों की तरह ही विशेषज्ञ भी जैसे :–

अभियान्त्रिकी, लेखाकार आदि प्रबंधक एवं प्रशासन के उच्च स्तर के अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं।

हाल ही में भारत में लोक सेवा में प्रवेश के लिये कला (सामाजिक विज्ञान सहित) एवं विज्ञान में विश्वविद्यालीय शिक्षा के आधार को व्यापक बनाकर अभियांत्रिकी, चिकित्सा एवं तकनीकी के स्नातकों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। अतः मैकाले की पुरानी संस्कार शिक्षा विश्वविद्यालय स्नातक "पृथ्वी" का फूल" जो लोकसेवा में चयन हेतु सर्वोत्तम माना जाता था, यह वर्तमान भारत में अब अपनी प्रासंगिकता को खो चुका है। अब भारतीय प्रशासनिक सेवा में आने वाले (भारतीय नागरिक सेवा का उत्तराधिकारी) पदाधिकारी जो तीन अखिल भारतीय सेवाओं में से एक है :– तीनों अखिल भारतीय सेवा, केन्द्रीय सेवाओं (अर्थात् विदेश सेवा, लेखा एवं अंकेक्षण, आयकर, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क आदि) में से अधिक विशेषाधिकृत है। अति तकनीकी पद जैसे विशेषज्ञ, जो केन्द्रीय सेवा के सदस्यों द्वारा भरा जाता है, को छोड़कर भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य क्षेत्र एवं सचिवालय दोनों स्तरों के विभागों में उच्च पदों पर नियुक्त किये जाते हैं। केन्द्रीय सेवाओं जिसमें विशेषज्ञ सेवाओं को भी शामिल किया गया है के अतिरिक्त वैज्ञानिक, विधिवत्ता, अभियांत्रिकी, अर्थशास्त्री एवं अन्य संवर्ग भी विशेषज्ञों की श्रेणी में आते हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों को भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा के समान ही राज्य प्रशासन एवं केन्द्रीय प्रशासन में पदस्थापित किया जाता है, लेकिन वास्तव में भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा के सदस्य सामान्यक नहीं हैं। केवल भारतीय प्रशासनिक सेवा ही भारत में वास्तविक सामान्यक लोक सेवा है। भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य राज्य प्रशासन में सहायता कलेक्टर, आयुक्त के पद से अपनी सेवा को प्रारम्भ कर निष्पादन विभाग जैसे–कृषि, समाज कल्याण, बिक्रीकर आदि का विभागाध्यक्ष एवं राज्य सचिवालय के किसी विभाग में सचिव तक बन जाता है। राज्य प्रशासन में दस वर्ष या इसके आस–पास व्यतीत करने पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के कुछ सदस्यों को केन्द्रीय सचिवालय में स्थानांतरित कर दिया जाता है एवं कुछ क्षेत्रों में उसे किसी विभाग। मंत्रालय में सचिव बना दिया जाता है। इनमें से कुछ को पुनः केन्द्रीय लोक उद्यम में प्रबंध निदेशक या अध्यक्ष के पद पर प्रतिनियुक्त कर दिया जाता है।

सामान्यज्ञों के पक्ष में तर्क (Arguments in favor of Generalists)

पारंपरिक रूप से भारतीय लोक सेवाओं को उच्च प्रशासनिक वर्ग एवं अन्य कनिष्ठ तकनीकी सेवा के आधार पर विभाजित कर संगठित किया गया है। स्थायी लोक सेवा के संगठन पर प्रसिद्ध "नार्थ कोट ट्रैवेलयान प्रतिवेदन 1854" में इस द्वैधता को देखा जा सकता है। प्रतिवेदन में यह सुझाव दिया गया कि प्रतियोगी परीक्षा के आधार पर शिक्षित एवं उद्यमी युवकों द्वारा प्रशासन के उच्च पदों को भरा जाना चाहिए। वर्तमान समय में शैक्षणिक आधार पर भर्ती किये जाने वाले इस प्रशासनिक संवर्ग को सामान्यक कहा जाने लगा है। 1854 में मैकाले प्रतिवेदन में विशेषज्ञों पर सामान्यकों की महत्ता प्रतिपादित की गयी थी। स्वतंत्रता के समय तक भारतीय लोक सेवा के संगठन का यही आधार एवं दर्शन रहा है परंतु सरकार के कल्याणकारी कार्यों में वृद्धि के साथ ट्रैवेलयान एवं मैकाले दर्शन पर प्रश्नचिन्ह् लगा तथा उसे गम्भीर चुनौती मिली।

पारंपरिक रूप से सामान्यक लोक सेवाओं का चयन एवं उनको सचिवालय सहित किसी भी विभाग में उच्च पदों पर पदस्थापित करने के पीछे प्रमुख विचार यह रहा है कि विधिवत् सेवा–कालीन प्रशिक्षण के बिना ही बुद्धिमान युवक जो विश्वविद्यालय स्नातक हो, यह पद प्राप्त करेगा। सामान्यक लोक सेवा के पक्ष में दूसरा विचार यह था कि प्रशासन के आवश्यकतानुसार इसमें आने वाले ये युवा प्रशासक नीति–निर्माण में सरकार को सलाह देने का कार्य करेंगे एवं सरकारी आदेशों को लागू करने के लिये निर्णय लेंगे। तकनीकी विशेषज्ञ इन दायित्वों को पूरा करने के लिये तत्संबंधी विषय में सहायता देंगे।

सामान्यकों के पक्ष में कई तर्क दिये गये हैं। उनमें व्यापक दृष्टि एवं विचारों में लचीलापन होता है। अपने आपको किसी भी विभाग में एवं किसी भी स्तर पर समायोजित कर सकते हैं तथा प्रशासन में किसी भी विषय को

समझकर निर्णय कर सकते हैं। जैसा कि ये सामान्य सेवा प्रारम्भ कर कार्यात्मक, सार्वजनिक एवं राजनीतिक अनुभव प्राप्त कर किसी भी विभाग में उच्च पद प्राप्त करने के लिये अपनी क्षमता में वृद्धि करते हैं एवं उस पद को शक्तिशाली बनाते हैं।

प्रशासन के सभी स्तरों पर प्रबंधकीय कार्य करने के लिए सामान्य लोक सेवक का होना आवश्यक है, क्योंकि प्रशासन ऐतिहासिक तौर पर 'क्षेत्र प्रशासन' अर्थात् ताल्लुक, जिला, संभाग आदि के सिद्धांत पर आधारित है।

इसके अतिरिक्त यह तर्क दिया जाता है कि सामान्यक मध्यस्थ का कार्य करता है। विशेषज्ञ एवं राजनीतिज्ञ के बीच, आम जनता एवं सरकार के बीच, दबाव समूह एवं लोकहित के प्रतिनिधि, संसद, विधायिका यथा राजनीतिक कार्यपालिका के बीच एवं साथ ही विरोधाभासी विचारों एवं पक्षों के बीच पंच का कार्य करता है। ऐसा माना जाता है कि विशेषज्ञों की अपेक्षा सामान्यक "मंत्री के विचारों" को अच्छे तरीके से समझ सकता है। तकनीशियनों या विशेषज्ञों द्वारा अपनाये गए अति एवं उग्र नीतियों को वे संयमित करते हैं। विशेषज्ञ खर्चीले प्रस्ताव का समर्थक होता है जबकि सामान्यक व्यावहारिक प्रस्ताव का समर्थन करता है।

विशेषज्ञों के पक्ष में तर्क (Arguments in favor of Specialists)

दूसरी तरफ, विशेषज्ञों के समर्थकों ने सामान्यकों के कमजोर बिंदुओं पर जोर दिया है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य जब ब्रिटेन एवं भारत में सामान्यक लोक सेवा की स्थापना की गयी थी उस समय प्रशासन में अत्याधिक विशेषीकृत ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि तब इसका कार्य केवल शांति व्यवस्था बनाए रखना एवं नियमांकीय कार्यों को पूरा करना था। सामान्यक के संबंध में यह आलोचना है कि विशेषीकृति शिक्षा के अभाव में अथवा संबंधित विभाग में सेवा कालीन प्रशिक्षण के बिना ही उसने आवश्यक व्यावसायिकता या किसी विभाग के कार्य के ज्ञान का गहराई से विकास नहीं किया है। इसके फलस्वरूप गलत नीति–निर्माण होता है एवं नीति की मौलिक समीक्षा को कठिन बना देता है। नीति के कार्यान्वयन के लिए अपनाए गये तरीके भी अप्रभावी हैं। प्रशासन के अंदर एवं बाहर विशेषज्ञों से परामर्श के लिए प्रभावी संचार व्यवस्था स्थापित नहीं की गयी है क्योंकि अधिकतर नीतियां एवं निर्णय सामान्यकों से आकर विशेषज्ञों या उसके अधीन कर्मचारियों द्वारा लागू किये जाते हैं। सामान्यकों को नीति एवं निर्णय को प्रभावी ढंग से लागू करने एवं उसके कारणों की जानकारी नहीं होती है। सामान्यक तकनीकी सलाह को गलत ढंग से समझ लेता है या उसे समझ ही नहीं पाता है। सामान्यक भविष्य की योजना नहीं बना पाता क्योंकि किसी विशेष विषय जैसेः– अभियांत्रिकी, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के विकास के लिए उसका पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है क्योंकि वह एक विभाग से दूसरे विभाग में घूमता रहता है एवं यहां तक कि वे विभाग से भी बाहर लोक उद्यम में या विश्वविद्यालय अथवा सहायक संस्था जैसे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास या राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान में स्थानांतरित होता रहता है। इसके अतिरिक्त सामान्यक लोक सेवा का बुद्धिमान अव्यवसायिक सिद्धांत वर्तमान समय में लागू नहीं हो सकता क्योंकि प्रशासन का कार्य जटिल, अधिक तकनीकी, विज्ञानोन्मुख एवं विषयीकृत हो चुका है।

विभिन्न आधारों पर विशेषज्ञ अपने आपको सामान्यकों के बराबर स्तर पर रखने की वकालत करता है। सामान्यकों द्वारा प्रशासन के अक्षमता को वे अपने पक्ष में बताते हैं। निष्पादन विभाग का विभागाध्यक्ष एवं सचिवालय में सचिव के उच्च पद प्राप्त करने के लिए विशेषज्ञों की योग्यता संबंधित विषय में उनका ज्ञान एवं अनुभव है, ऐसा विशेषज्ञों द्वारा दावा किया जाता है। विशेषज्ञों द्वारा सक्रिय रूप से यह भी प्रचार किया जाता है कि एक तरफ, विभिन्न विभाग में उच्च पद प्राप्त करने के लिए सामान्यक अधिक शिक्षित है क्योंकि उन लोगों ने व्यवस्था को अपने पक्ष में बना लिया है और दूसरी तरफ यहां तक कि अधिक ज्ञान होते हुए भी विशेषज्ञ उच्च पद से वंचित रहता है। वैज्ञानिक प्रशिक्षण विशेषज्ञों पर यह व्यक्तिगत आरोप लगाया जाता है कि उनका परिव्यय जागरूक नहीं होता एवं

अपने आप में इतना केन्द्रित रहता है कि लोक संपर्क के विभाग का संचालन नहीं कर पाता ऐसा सामान्यकों के तर्क का उत्तर है।

सामान्यकों एवं विशेषज्ञों के संवर्ग के मध्य दोहरी पदसोपान व्यवस्था न केवल प्रशासनिक क्षमता को कम करती है बल्कि विशेषज्ञों में असंतोष भी पैदा करती है। इस दोहरी व्यवस्था को हटाने से विशेषज्ञों में निराशा समाप्त होगी। दोनों के मध्य सरल एवं सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित होंगे। विशेषज्ञों द्वारा अधिक निपुण मंत्रणा दी जा सकेगी।

प्रशासनिक व्यवस्था की दक्षता एवं प्रभाविता में विकास के लिए सामान्यकों एवं विशेषज्ञों दोनों के लिए पद योजना आवश्यक है। प्रबंधकीय कार्य और प्रविधि का प्रशिक्षण दोनों को प्राप्त होने चाहिये। सेवा कालीन प्रशिक्षण में समान ढंग के ज्ञान की पढ़ाई दोनों को लाभदायक होगी। प्रशासनिक व्यवस्था के इन दोनों अंगों के मध्य अच्छे संबंध एवं सहयोग को बढ़ावा मिलेगा।

प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव (Administrative Reforms Commission Suggestions)

भारतीय प्रशासनिक सेवा के कार्मिकों का विशेषज्ञ सेवा के साथ संबंधों का विवाद केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर उभर कर सामने आया है। भारतीय प्रशासनिक सेवा इस अर्थ में अखिल भारतीय सेवा है कि इसके कार्मिकों की भर्ती एवं नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है लेकिन वे राज्य एवं केन्द्र सरकार दोनों ही जगह कार्य करते हैं। राज्य के प्रशासन क्षेत्र में मानवशक्ति की व्यवस्था के अंतर्गत जिलाधीश और मजिस्ट्रेट एवं जिला परिषद् में विकास अधिकारी (मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला विकास अधिकारी) के रूप में भारतीय प्रशासनिक सेवा की भूमिका अनन्य है। राज्य सरकार में उपसचिव या सचिव के रूप में पर्याप्त सेवा के पश्चात् भारत सरकार में भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों को विभिन्न विभागों में सचिव, संयुक्त सचिव और उपसचिव के रूप में नियुक्त किया जाता है। वे भारत सरकार की सेवाओं में पांच वर्ष की पदावधि तक कार्य करता है और यदि उसकी पदावधि में वृद्धि नहीं की गई तो पुनः उसे संबंधित राज्य में वापस भेज दिया जाता है। कार्मिक प्रशासन पर भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग के प्रतिवेदन (अप्रैल 1969) से पहले, केन्द्रीय अथवा राज्य प्रशासन में विशेषज्ञों की सचिव स्तर पर पदोन्नति नगण्य रूप में होती थी। पुलिस और अभियांत्रिकी को छोड़कर राज्य सरकार में भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति तकनीकी विभाग जैसे कृषि, पशुपालन, बिक्रीकर आदि में विभागाध्यक्ष के रूप में भी की जाती थी। भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं अन्य दूसरी सेवाओं के वेतनक्रम में विद्यमान विभिन्नता भी जैसे केन्द्रीय स्तर पर लेखा एवं अंकेक्षण, रेल, आदि सेवा एवं राज्य स्तर पर कृषि, अभियांत्रिकी एवं अन्य जैसे विशेषज्ञ सेवा में असंतोष को बढ़ाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के अध्ययन दल के अनुसार "भारतीय प्रशासनिक सेवा" के निर्माण के लिए मुख्य विचारों में दो राय नहीं हो सकते हैं जो निम्न हैं :–

- केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के लिए उच्च प्रशासनिक अधिकारी की व्यवस्था करना।
- वास्तविकता से निरंतर जुड़े रहने के लिए एवं आम लोगों से संबंध बनाए रखने के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक तंत्र को अवसर प्रदान करना।
- व्यापक दृष्टिकोण ग्रहण करने के लिए राज्य प्रशासनिक तंत्र को अवसर प्रदान करना।
- केन्द्र एवं राज्यों के बीच सम्पर्क की व्यवस्था।
- प्रशासन के मानक में एकरूपता लाना।
- यह सुनिश्चित करना कि जातीय अथवा दलीय पक्षपात से प्रशासनिक सेवा अलग हो।

- सेवा में संतोष और सुरक्षा की भावना को सुनिश्चित करना।

आजकल सरकारी कार्य में जटिलता के संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग का मानना है कि विभिन्न विकासात्मक योजनाओं के लिए कई तरह की निपुणता की आवश्यकता है, जबकि बहुत सी निपुणता उपलब्ध नहीं है। सरकार के कर्मचारी योजना पर उक्त सुझावों का व्यापक प्रभाव पड़ेगा।

प्रशासनिक सुधार आयोग का एक महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि वे सभी पद जिसमें विषय वस्तु जैसे कार्य के साथ अत्यधिक केन्द्रित और अत्याधिक निकटता की आवश्यकता है, उसे अलग श्रेणी (जैसे सेवा) के अंतर्गत संगठित करना चाहिये। ये पद कार्यात्मक सेवा में संगठित होने चाहिये और इसलिये इन सेवा के पदाधिकारियों के लिए यह पद सुरक्षित होने चाहिये। फिर भी कार्यात्मक सेवा के विभिन्न स्तरों पर कर्मचारियों का स्थानान्तरण स्वतः नहीं होना चाहिये बल्कि प्रत्येक स्तर पर सावधानी पूर्वक चयन किया जाना चाहिए। प्रत्येक स्तर पर एकरूप संवर्ग संरचना एवं, पुनर्चयन की व्यवस्था रहनी चाहिए। प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा एकरूप संवर्ग संरचना का सुझाव चयन प्रक्रिया में सहायता के लिए दिया गया है।

तथापि प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह स्वीकार किया है कि बहुत से ऐसे पद हैं जिसमें विषय वस्तु (कार्यात्मक) के विशेषीकरण की आवश्यकता नहीं है बल्कि व्यापक वैचारिक एवं प्रबंधकीय निपुणता की आवश्यकता है ये सभी सचिवालय में नीति निर्माण स्तर के पद हैं। इन पदो ंके लिए एक भी कार्यात्मक सेवा योग्य नहीं है। ये सभी पद अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। अतः प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह सुझाव दिया कि इन पदों को तुरन्त नहीं भर कर अन्य विधियों से भरना चाहिए। सरकार में आठ से 12 वर्ष के अनुभव वाले उच्च सेवा के सभी अधिकारियों की परीक्षा लेनी चाहिए एवं उच्च स्तर पर नीति निर्माण में उसकी उपयुक्तता की जांच होनी चाहिये। यह परीक्षा इस ढंग से व्यवस्थित करनी चाहिए जिससे उम्मीद्वारों के मध्य संचार, विचार की स्पष्टता, सम्पूर्ण प्रबंधकीय क्षमता, विश्लेषण शक्ति एवं ज्वलंत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर व्यापक ज्ञान की क्षमता का मूल्यांकन हो सके। प्रशासनिक सुधार आयोग ने सुझाव दिया कि इस परीक्षा के आधार पर अधिकारियों के चयन के पश्चात् आयोग द्वारा बताये गये आठ विशेषीकरण में से किसी एक में उनके सुझाव एवं पृष्ठभूमि के आधार पर नियुक्त करना चाहिए।

उक्त विशेषीकरण निम्न हैं :–

1. कार्मिक और मानवशक्ति, 2. आर्थिक प्रशासन (योजना सहित), 3. वित्तीय प्रशासन, 4. कृषीय प्रशासन, 5. औद्योगिक प्रशासन, 6. सामाजिक एवं शैक्षणिक प्रशासन, 7. आंतरिक सुरक्षा एवं संरक्षा 8. सामान्य प्रशासन में इस ढंग से चयन के पश्चात् इन पदाधिकारियों की सेवा संबंधित विशेषीकरण के अंतर्गत ही रहेगी, लेकिन संबंधित क्षेत्र में इन पदाधिकारियों का स्थानांतरण न्यायपूर्ण होगा।

उच्च नीति निर्माण स्तर के भारतीय लोक सेवा के इस कार्यात्मक व्यवसायीकरण संवर्गों की आलोचना की जा सकती है। आलोचना इस स्तर पर चयन के लिए लोक सेवक के मध्यावधि सेवा काल में परीक्षा लेने के तरीके पर भी की जा सकती है। लेकिन इस संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव ने भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) की महत्ता को सुदृढ़ किया है एवं नीति निर्माण के उच्च स्तरीय पद का दावा करने वाले अधिक शिक्षित और अनुभवी विशेषज्ञों के साथ न्याय किया है।

राज्य स्तर पर भी इसके व्यवसायीकरण एवं चयन के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग ने इसी प्रकार का सुझाव दिया है।

फुल्टन कमेटी की सिफारिशें (Fulton Committee Recommendations)

ब्रिटेन में लोक सेवा पर गठित फुल्टन समिति (1966–68) ने लोक सेवा के व्यावसायीकरण और तर्कसंगतिकरण की सिफारिश की थी। इसने प्रशासकों को सामान्यज्ञ के रूप में संबोधित किया तथा कुछ निम्न सुझाव दिए :–

- आज के लोकसेवकों को राजनीतिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक और तकनीकि समस्याओं से निबटने के लिए सुसज्जित होना चाहिए। उन्हें नए ज्ञान की तीव्र वृद्धि के साथ कदम मिलाकर चलना चाहिए और नई तकनीकें अर्जित करके उनका प्रयोग करना चाहिए। संक्षेप में लोक सेवा में गैर–पेशेवर लोगों के लिए कोई स्थान नहीं है। इस सेवा में अनिवार्य रूप से पेशेवर महिलाओं और पुरूषों को शामिल किया जाना चाहिए।
- हमारा लक्ष्य प्रशासकों द्वारा विशेषज्ञों को या विशेषज्ञों द्वारा प्रशासकों को प्रतिस्थापित करना नहीं है। उन्हें एक–दूसरे का अनुपूरक होना चाहिए। अपनी विषय सामग्री में प्रशिक्षित और अनुभवी प्रशासक एक विशेषज्ञ के साथ अधिक सार्थक संबंधों की स्थापना करेगा और इस प्रकार सेवा में विशेषज्ञ तथा प्रशासक दोनों का सर्वोत्तम योगदान प्राप्त होगा।

सामान्यज्ञों तथा विशेषज्ञों के विवाद को निपटाने के लिए अब तक उठाए गए कदम :–

- भारत सरकार ने 1948 में केन्द्रीय सचिवालय सेवा का गठन किया। इसके फलस्वरूप स्थायी सचिवालय अधिकारियों के एक पृथक् संवर्ग का उद्य हुआ।
- सरकार ने 1957 में केन्द्रीय प्रशासनिक पूल की स्थापना की ताकि केन्द्रीय सचिवालय में उच्चतर पदों पर नियुक्तियां की जा सकें।
- 1961 में भारतीय आर्थिक सेवा और भारतीय सांख्यिकी सेवा का गठन हुआ और ये दोनों सेवाएं भी विशेषज्ञ केन्द्रीय सेवाएं थी।
- 1966 में भारतीय वन सेवा का गठन किया गया जो कि एक विशेषज्ञ अखिल भारतीय सेवा है।
- सरकार द्वारा सचिव, अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव जैसे वरिष्ठ प्रशासनिक पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति की गई है।
- केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के निदेशक मंडलों में विशेषज्ञों को प्रवेश दिया गया है।
- नीति आयोग के अधिकांश पदों पर विशेषज्ञों की नियुक्ति की गई है।

सुझावों को लागू करने एवं दोनों के मध्य सेतु की स्थापना :–

हाल ही में केन्द्र एवं राज्यों में विशेषज्ञ प्रशासनिक पद अधिस्थापन के लिए कुछ उपाय किये गये हैं। उदाहरणार्थ आणविक शक्ति विभाग का विभागाध्यक्ष नाभिकीय है एवं विधि मंत्रालय का विधि व्यवसाय या सेवा का सदस्य है। इसी प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग में वैज्ञानिक विभागाध्यक्ष है। नीति आयोग केवल विशेषज्ञों एवं व्यवसायिकों द्वारा भरा गया है।

विभागाध्यक्ष बनाने के लिए विशेषज्ञों को सरकार में संयुक्त, अपर सचिव का पद स्तर प्रदान करने के लिए एक अन्य विधि भी प्रचलित है, रेलवे बोर्ड इसका उदाहरण है। जो सदस्य इस संचालन विभाग का विभागाध्यक्ष है वह रेल मंत्रालय में पदेन सचिव भी है। राज्य स्तर पर भी खाद्य, लोक निर्माण आदि जैसे विभागों में विशेषज्ञों को सचिव–पदेन या उसी पद स्तर के रूप में नियुक्त किया जाता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग के दूसरे सुझाव के आधार पर केन्द्र स्तर पर एक स्वतंत्र कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग की स्थापना की गयी है। इसी प्रकार प्रशासन में प्रबंधकीय प्रविधि एवं समसामयिक विकास के लिए प्रशिक्षण जैसा कि आयोग ने सुझाव दिया, कार्यरत है परंतु सम्पूर्ण पद योजना एवं विकास की विचारधारा रूकी सी प्रतीत होती है।

लोक उद्यमों में, लोक उद्यम पर प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव के पहले अधिकतर शासकीय सचिव जो सामान्यक थे, नियमित रूप से या तो अल्पकालीन अध्यक्ष प्रबंध निदेश्ज्ञक के रूप में अथवा निदेशक या पूर्णकालिक आधार पर नियुक्त किये जाते थे। इस प्रचलन को रोकने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव को सरकार ने स्वीकार कर लागू कर दिया है। सामान्य एवं विशेषज्ञों के मध्य विद्यमान खाई को कम करने के लिए दूसरा तरीका यह हो सकता है कि निम्नलिखित पद सोपान में से किसी एक को स्वीकार किया जाये :–

- पृथक पद सोपान :– यह व्यवस्था आस्ट्रेलिया, स्वीडन में प्रचलित है जहां विशेषज्ञों को एक समान वेतन एवं अधिक महत्ता प्राप्त है।
- सामान्तर पद सोपान :– यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें विशेषज्ञ सामान्यक के साथ ही कार्य करेगा। उदाहरण के लिए महानिदेशक (विशेषज्ञ), उपसचिव (सामान्यक) के साथ कार्य करेगा।
- संयुक्त पद सोपान :– यहां सामान्यक एवं विशेषज्ञ दोनों मिलकर स्थायी सचिव, जो सामान्यक है, के अधीन कार्य करेंगे।
- एकरूप पद सोपान :– इसका अर्थ केन्द्रीय एवं अखिल भारतीय सेवाओं को संयुक्त कर एकरूप सेवा बनाने से है। इसके लिए एक ही प्रकार की परीक्षा एवं एकरूप वेतन और सेवा शर्त की आवश्यकता है, जबकि भारत में इस प्रकार की सेवा गठित करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है। लेकिन पाकिस्तान में 1973 में, एकरूप नागरिक सेवा गठित की गई है जहां लोक सेवा के सभी संवर्गों को एक ही सेवा में मिला दिया गया है।

अपनी सभी कमजोरियों के बावजूद भी सामान्यक भारतीय प्रशासनिक सेवा राष्ट्रीय एवं राज्य लोक सेवा में अपनी महत्ता सिद्ध किये हुए हैं। कहा जाता है कि विशेषज्ञों के मुकाबले यह अधिक जानकारी रखता है एवं दृढ़ विचारों का होता है। प्रशासन के वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में यह अपर्याप्त व्यवसायवादी एवं अप्रसांगिक ज्ञान रखता है। इन मुद्दों पर विद्धवतापूर्ण कार्यों, जर्नल, पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में परिचर्चा दृष्टि सहायक सिद्ध हुई है। दीर्घकालीन आर्थिक व्यय एवं विकास की आवश्यकता के लिए इसके संगठित दृष्टिकोण ने राष्ट्रीय प्रशासन को जीवित रखा है और प्रशासन के विभिन्न अंगों के बीच, केन्द्र और राज्यों एवं राज्यों और राज्यों के बीच सह–सबंध बनाये रखा है।

इसके साथ ही केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तर पर प्रशासन में विशेषज्ञों का योगदान एवं भूमिका का अपना महत्व है। वैज्ञानिक, औद्योगिक, यातायात, संचार, कृषि, शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में भारत ने आश्चर्यजनक रूप से प्रगति की है। इस बहुआयामी राष्ट्रीय निकाय एवं इसके लिये प्रशासनिक ढांचा और प्रक्रिया में विशेषज्ञों की भूमिका सराहनीय है। प्रगति हो रही है एवं यह ध्यान में रखना होगा कि प्रशासन में सामान्यक एवं विशेषज्ञ दोनों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है तथा उनके योगदान को स्वीकार करना होगा।

4.6 सारांश (Summary)

शासन संचालन में सिविल सेवा की जड़ें मानव इतिहास से परस्पर जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। प्राचीनकाल से ही प्रशासन के वजूद के उदाहरण मिलते रहे हैं। आर्यकाल, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, दिल्ली सल्तनत प्रशासन से लेकर

मुगल व ब्रिटिश कालीन नौकरशाही की लोक सेवाओं के प्रमाण हमारे पास हैं। भारतीय सिविल सेवा का इतना पुराना इतिहास होते हुए भी यह इतनी कार्य–स्पष्टता नहीं दिखा पाई जितनी होनी चाहिए। ब्रिटिशकाल से अब तक भारत में लोक प्रशासन/सिविल सेवा सुधारों व जांच के लिए 100 से भी अधिक समितियों तथा आयोगों का गठन किया जा चुका है, किन्तु सिविल सेवा की पुनर्संरचना करने की दिशा में कोई ईमानदारी पूर्वक प्रयास नहीं किया गया। यद्यपि सिविल सेवा भर्ती और प्रशिक्षण प्रक्रियाओं में कुछ सुधार किए गए। यह विचारणीय विषय है कि भारतीय सिविल सेवा सुधारों से न तो कार्यकुशलता में वृद्धि हुई है और न ही किसी सार्थक ढंग से सिविल सेवा की जवाबदेही में परिवर्तन हुआ। वर्तमान में राजनीतिक, आर्थिक और प्रोद्योगिकी के क्षेत्रों में आधारभूत परिवर्तन हो रहे हैं। इनकी वजह से सिविल सेवाओं में भी भौतिक संरचनाओं में परिवर्तन की जरूरत है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण एक सक्षम और सुचारू रूप से काम करने वाली सिविल सेवा का गठन जरूरी हो गया है। वैश्वीकरण द्वारा प्रेरित परिवर्तनों से देश न केवल बाजारों में बल्कि अपने प्रशासनिक ढांचों की गुणवत्ता के संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय रूप से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। सैधान्तिक रूप से नवीन लोक प्रबंध, नवीन लोक सेवा, सुशासन, पारदर्शिता, जवाबदेही, गैर सरकारी संस्थाओं के राज्यकार्य में समायोजन अर्थव्यवस्था के निजीकरण क्षेत्रों में व्यवस्थापन आदि के बारे में हम बहुत बातें करते हैं और सतत् विकास के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विश्व स्तरीय संस्थानों के अग्रणी होने का दावा करते हैं। परन्तु व्यवहारिक रूप से जब क्रियान्वयन को जांचते है, तो सिविल सेवकों की प्रवृति में कोई बदलाव नहीं मिलता क्योंकि आज भी लोक सेवक हिग्ल द्वारा प्रति पादित सिद्धान्त पर विश्वास करते मिलते हैं। अतः भारतीय लोक सेवाओं को आधुनिक विश्व स्तरीय प्रशासनिक प्रणालियों के अनुरूप अपने व्यवहारिक तथा मानसिक प्रवृति में अमूलचूल परिवर्तन लाना होगा, यदि हम वास्तव में विकास चाहते हैं।

4.7 मुख्य अवधारणाऐं (Key Concepts)

- कार्य निष्पादन रिपोर्ट :– प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा गोपनीय रिपोर्ट के स्थान पर उसे कार्य निष्पादन रिपोर्ट कहने की अनुशंसा की थी। कार्य निष्पादन प्रतिवेदन का अभिप्राय है कि निर्धारित समय में कार्य मापदण्ड़ों के अनुसार लोक सेवकों ने किस स्तर तक कार्य निष्पादित किया है।

- लोक सेवाऐं :– नौकरशाही का वह भाग जो सार्वजनिक सेवाओं के अधिकार क्षेत्र में कार्यरत है अर्थात् रक्षा सेवाओं के अतिरिक्त सभी सेवाऐं लोक सेवाओं में शामिल हैं।

- सिविल सेवा मूल्य :– सिविल सेवा के व्यवहार को मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए कानूनी रूप से आचार संहिता व नैतिकता के पथ–प्रदर्शक सिद्धान्तों को सिविल सेवा मूल्य कहते हैं।

- सिविल सेवा सुधार :– लोक सेवा के सैद्धान्तिक व व्यवहारिक पक्षों में संशोधन को ही सिविल सेवा सुधार कहते हैं।

- आचार संहिता :– सिविल सेवाओं में कार्यरत अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए मूल्यों के नियमों, जो अवांछनीय आचरण व व्यवहार को निषेध करें और दायित्वों का मार्गदर्शन करें, उन्हें आचार संहिता कहते हैं।

- पार्श्विक प्रवेश :– सिविल सेवा के वरिष्ठ पदों का कुछ प्रतिशत् प्रत्यक्ष भर्ती की बजाय सरकार के बाहर के वरिष्ठ प्रबंधकों जो अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट दक्षता और प्रतिभा को सिद्ध कर चुके हैं उनकी नियुक्ति लोक सेवा में किए जाने की प्रक्रिया ही पार्श्विक प्रवेश है।

4.8 अपनी प्रगति जाँचिए (Check Your Progress)

- भारत की आधुनिक सिविल सेवा किस ब्रिटिश समिति की देन है ?
- प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग का अध्यक्ष कौन था ?
- सतीशचन्द्र समिति का गठन कब किया गया ?
- सिविल सेवा सुधार समिति 2004 किसकी अध्यक्षता में गठित हुई ?
- भर्ती नीति व चयन के तरीकों से संबंध समिति का अध्यक्ष कौन था ?
- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की किस रिपोर्ट में लोक सेवा संबंधित सुधारों को प्रस्तुत किया गया ?
- किसी एक सामान्यज्ञ पद का उदाहरण दीजिए।
- विशेषज्ञ पद उदाहरण क्या हो सकता है ?
- प्रशासनिक सुधारों का प्रबंधन किस मंत्रालय का भाग है ?
- संविधान के अनुच्छेद 312 में किन दो सिविल सेवाओं का उल्लेख है ?
- केन्द्रीय सेवा का उदाहरण दीजिए ?
- भारतीय सिविल सेवाओं की भर्ती किस आयोग द्वारा आयोजित की जाती है ?
- भारतीय पुलिस सेवा प्रशिक्षण संस्थान कहां स्थित है और क्या नाम है ?
- भारतीय रेलवे सेवा के अधिकारियों की प्रशिक्षण व्यवस्था कहां होती है ?

4.9 अभ्यास प्रश्न (Exercise Questions)

- भारतीय सिविल सेवाओं के विकासक्रम का उल्लेख कीजिए।
- भारतीय प्रशासन में लोक सेवाओं की भूमिका का वर्णन कीजिए।
- भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोगों की तर्कसंगतता का विश्लेषण कीजिए।
- प्रशासनिक सुधार आयोग (प्रथम) के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की सिविल सेवा से संबंधित सिफारिशों का विवेचन कीजिए।
- अखिल भारतीय सेवाओं के महत्व व समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
- केन्द्रीय सेवाऐं कैसे केन्द्र सरकार शासन व्यवस्था को नियोजित करती हैं।
- सामान्ज्ञ–विशेषज्ञ द्वन्द्व क्या है और इसके उभरने के क्या कारण हैं ?

4.10 पठन सामग्री सूचि (Further Readings List)

➢ भारत सरकार (2009), द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग दंसवा प्रतिवेदन

- एस॰आर॰ माहेश्वरी (1977), प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग प्रतिवेदन समीक्षा, ओरिएंट लोंग मेन
- Vinod Mehta (2000), Reforming Administration in India, New Delhi: Har-Anand.
- B.L. Fadia and Kuldeep Fadia (2017), Indian Administration, Agra: Sahtya Bhawan.
- R. Abrar (2016), Indian Public Administration, New Delhi: Lisdern Press.
- Nazim Uddin Ahmed (2013), Indian Administration: Evolution and Development, New Delhi: Wizdam Press.
- R.K. Arora (2012), Indian Public Administration: Institutions and Issues, New Delhi: New Age International.
- P.D. Sharma (2009), Indian Administration: Retrospect and Pnspects, Jaipur: Rawat.
- अमरेश्वर अवस्थी एंव आनन्द प्राकाश अवस्थी, भारतीय प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल : आगरा, 1995
- होशियार सिंह, भारतीय प्रशासन किताब महल : इलाहाबाद
- बी.एल.फड़िया, भारतीय प्रशासन, साहित्य भवन : आगरा
- श्री राम माहेश्वरी, भारतीय प्रशासन, ओरियंट ब्लैकस्वॉन : हैदराबाद
- मधुसदून त्रिपाठी, भारतीय प्रशासन, ओमेगा मब्लिकेशन्स : नई दिल्ली, 2012